VED JYOTI

VOL.14 1998

G. K. V. HARDWAR

ओ३म्

वेद-ज्योति

वर्ष १४ अंक ५, जनवरी ९०

शुल्क वा. ३०) ... ५ पौंड, ५० डालर

महर्षि याज्ञवल्क्य ...

शतपथ ब्राह्मण (काण्ड ५-६)

वाजपेय, राजसूय याग । यजुर्वेद अध्याय ९-१२

अनुवादक और सम्पादक आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री एम. ए. काव्यतीर्थ,

उपाध्यक्ष विश्व वेदपरिषद्, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष [illegible]

आचार्य सुधीन्द्र शास्त्री मन्त्री
?३-११-८९ को दिवंगत, १२-१२-८९
[illegible] कर्मनयेमन्त्री का निर्वाचन हुआ।

शतपथ के सच्चे व्याख्याता
महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

वैदिक दैनन्दिनी पौष २०४६ विक्रम

ग१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १४ ३०शुक्ल१ २ ३ ४ ५ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५पु

र बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु

६ त्र मृ आ पु पुष्य श्ले म पूफा उफा ह चि स्वा वि अनु ज्ये मू पूअ उअ श्र घ श पूभा उभा रे भ कृ रो मृ आ

१४ १ ३ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ज१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११

शतपथ सवनाम काण्ड ५ और 'उखासम्भरण' काण्ड ६ की सूची

* छठे काण्ड की सूची समाप्त *

सूक्त ७। हिरन के सींग आदि से क्षेत्रिय रोग का नाश

४६६-६७।

इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय, यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ॥३॥इमामग्ने शरणिं मीमृषो नो यमध्वानमगाम दूरम्, शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु;इदं हव्यं संविदानौ जुषेथां शुनं नोअस्तु चरितमुत्थितं च॥४

४६६. हे अग्रणी! दुःख से तरने और बल के लिए इच्छुक मैं समिधा-घी के साथ हव्य की आहुति देता हूं जिससे वेद से वन्दना करता हुआ सैकड़ों उद्यमों के लिए इस दैवी बुद्धि का ईश होऊँ। ३(ऋ३.१८.३)

हे अग्रणी! तू हमारी इस पीडा को सहन कर जिससे हम (व्यापार-)मार्ग पर दूर तक जायँ। हमारा क्रय-विक्रय सुखसे हो; फुटकर व्यापार सफल हो, इस वस्तु को समझते हुए हम दोनों लें, दें, हमारा चरित (चालान, आयात) और उत्थित (उठान, निर्यात) सुखपूर्वक हुआ करें। ८

४६८-६९।

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः। तन्मो भूयो भवतु मा कनीयोऽग्ने सातघ्नो देवान्हविषा निषेध ॥ ५ ॥ येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः। तस्मिन् म इन्द्रो रुचिमा दधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः ॥६

हे देव व्यवहारी व्यापारियो ! जिस मूलधन से अधिक धनका इच्छुक मैं क्रय करूँ वह मेरा अधिक हो, कम नहीं, हे अग्रणी ! तू लाभ-नाशक व्यापारियों को अपनी हवि (लेन-देन) के द्वारा रोक दे। ५

हे देवो! धनेच्छु मैं जिस धनसे लेन-देन करता हूँ उसमें इन्द्र-प्रजापति-सविता-सोम-अग्नि रुचि लें। ६

४७०।

उप त्वा नमसा वयं होतर्वैश्वानर स्तुमः। स नः प्रजास्वात्मसु गोषु प्राणेषु जागृहि ॥ ७

हे दानी विश्व-नेता ! हम नमः के साथ तेरे गुण कहते हैं, तू हमारी आत्मा प्रजा-गौ-प्राणों में जाग ७

४७१

विश्वाहा ते सदमिद् भरेमाश्वायेव तिष्ठते जातवेदः।

रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥ ८

हे उत्तम धनी अग्रणी ! खड़े घोड़े के समान तेरे समाज को हम सब दिन भरते रहें, धन-पोषण और अच्छे प्रकार आनन्द करते हुए हम तेरे साथी और पड़ोसी दुःखी न हों। ८ ॐप्रपाठक५, अनुवाक२ समाप्तॐ

प्रपाठक६ अनुवाक४ (सूक्त१६ से२०तक)

महर्षि दयानन्द के अनुसार विषय— ईश्वर-प्रार्थनाद्यनेक वस्तु प्राप्त्यर्थ पदार्थ विद्या

सूक्त १६ । प्रातः काल में ईश्वर की प्रार्थना

[इस सूक्त के मन्त्र ऋ. ७.४१ और य. ३४.३४-५० में भी हैं, वहाँ मन्त्र २ में हवामहे के स्थानमें हुवेम और ४ में उदितौ के स्थान में उदिता पाठ है, महर्षि ने वे पहले ५ मन्त्र संस्कार-विधि के गृहाश्रम प्रकरण में उषाकालीन दैनिक प्रार्थना में विनियुक्त किये हैं, इनका पाठ प्रचारार्थ ध्वनि-विस्तारक यन्त्र से प्रत्येक घर और मन्दिरमें होना चाहिए जिससे वेद-ध्वनि सर्वत्र पहुँचे, अरबी की अजान इसका विकृत रूप है।]

४७२-७३

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना । प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥१॥ प्रातर्जितं भगमुग्रं हवामहे वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता । आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह ॥ २

हम प्रातःकाल १. अग्नि (ईश्वर, अग्रणी नेता, पाक-यज्ञाग्नि) २. इन्द्र (ईश्वर, बिजली, राजा-सेनापति) ३-४. मित्र-वरुण (ईश्वर, सभा-न्यायाधीश, प्राण-उदान, आक्सीजन-हाइड्रोजन) ५. अश्विनौ (ईश्वर, माता-पिता, अध्यापक-उपदेशक, सूर्य-चन्द्र, दिन-रात), ६. भग (भजनीय परमात्मा, अन्नादि. उदय का सूर्य) ७. पूषा(पोषक परमात्मा, अन्नदाता स्वामी, पृथ्वी) ८. ब्रह्मणस्पति(वेद-ब्रह्माण्ड-पालक परमात्मा, वायु, गुरु)९.सोम(उत्पादक परमात्मा,औषधि-दूध,चुम्बक)१०.रुद्र(प्रलयकर्ता,रोग-नाशक वैद्य) को याद करें। १

हम प्रातः विजेता तेजस्वी भग को स्मरण करें जो नरक-दुःख से त्राता और द्यौ-अन्तरिक्ष-पृथ्वी का विशेष धारक है जिसे मानताहुआ निर्धन-निर्बल, शीघ्रकारी-बली, राजा भी कहे कि मैं इसे सेवन करूँ।२

४७३-७५

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः । भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३॥ उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् । उतोदितौ मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥ ४

हे भग! बड़ा नेता सत्यधन तू यह बुद्धि देकर हमें उत्तम रख, गौ-अश्वोंसे बढ़ा, नरोंसे नर वाले बनें।३
हे धनी,भग! हम अब सायं दिनोंके मध्यमें तथा सूर्योदय में ऐश्वर्यशाली हों और देवोंकी सुमतिमें हों।४

४७६

भगएवभगवाँअस्तुदेवस्तेनावयंभगवन्तःस्याम,तंत्वाभगसर्वइज्जोहवीमि सनोभगपुरएताभवेह ॥

भग ही देव भगवान् हो उससे हम ऐश्वर्यवान् हों, हे भग! उस तुझे सभी पुकारतेहैं तू यहाँ हमारा नेता हो।

४७७-७८ । समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय । अर्वाचीनं वसुविदं भगं मे रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥६॥ अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्त भद्राः । घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७

उषाएँ हमें यज्ञ के लिए वैसे ही झुकाती हैं जैसे अश्व पवित्र स्थान को जाते हैं, रथ को बली अश्वों के समान, मुझे वे उषायेँ नये नये धन को देने वाले ऐश्वर्य और ईश्वर तक ले जायेँ । ६

अश्व-गौ देनेवाली, वीरों से युक्त, कल्याणकारिणी उषाएँ हमारे सदन, समाज को चमकाए । हे उषाओ घी (स्नेह, तेज, वीर्य) से सींचती हुई, सब ओर से बढ़ी तुम कल्यणों से सदा हमारी रक्षा करो । ७

सूक्त १७ । कृषि

४७९ । सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् । धीरा देवेषु सुम्नयौ ॥ १

गतिशीलों में धीर, सुशब्द-भाषी किसान सुखके लिए हल जोतते और जुए अलग अलग फैलाते हैं ।१

४८०-८१ युनक्त सीरा वि युगा तनोता कृते योनौ वपतेह बीजम् । विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमा यवन् ॥२ लाङ्गलं पवीरवत् सुशीम सोमसत्सरु । उदिद्वपतु गामवि प्रस्थावद्रथवाहनं पीवरीं च प्रफर्व्यम् ॥ ३

हल जोतो, जुए फैलाओ, यहाँ तय्यार क्यारी में बीज बोओ. हमारे अन्न की बाली जब भर जाय तब हँसिए पका अन्न शीघ्र ही पूरा काट लें । २

अच्छे फालवाला, भूमि में प्रवेश-योग्य, अन्नोत्पादक हल ऐसा बोए कि अश्व-गौ-भेड़ मनुष्य जिएं ।

४८२ इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु । सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥४

सूर्य क्यारी तक किरणें पहुँचाए, उसे भूमि पुष्ट करे,, जल-सिंचित वह उत्तरोत्तर अन्न उपजाए ४

४८३
शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अनु यन्तु वाहान्।
शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै ॥ ५

अच्छे फाल वाले हल सुख से भूमि खोदें, किसान वाहकों (बैलों-घोड़ों-ट्रैक्टरों) के पीछे सुख से चलें, वायु-सूर्य हवन और जल से शक्तिशाली होकर इस के लिए अच्छे फलयुक्त औषधि-अन्न पैदा करें। ५

४८४
शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम्। शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय॥ ६

वाहक-मनुष्य-हल सुख से खेत जोतें, बन्धन-रस्सियाँ सुख से बँधें और पैने सुख से ऊपर उठें। ६

४८५
शुनासीरेह स्म मे जुषेथाम्। यद्दिवि चक्रथुः पयस्तेनेमामुप सिञ्चतम्॥ ७

यहाँ वायु सूर्य मेरे अनुकूल रहें, वे जो जल आकाश में एकत्र करें उससे इस खेती को सींचें। ७

४८६
सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव। यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः॥ ८

हम हल-रेखा की प्रशंसा करें, वह हमारे लिए सौभाग्य-दायिनी, मन प्रसन्न करनेवाली, सुफला हो। ८

४८७
घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना॥ ९

घी, मधु (शहद-मीठे जल) से संयुक्त सीता (हल-रेखा) सब विद्वानों, सैनिकों के और वायु आदि के अनुकूल बने, जल से सींची गयी ऊर्जायुक्त वह हमें घी आदि से तृप्त करे। ९

सूक्त १८ वनस्पति ब्राह्मी वाणपर्णी तथा धर्मशिक्षा

४८८
इमां खनाम्योषधिं वीरुधां बलवत्तमम्। यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम्। १

वनस्पतियों में अत्यन्त बलयुक्त इस औषधि (ब्राह्मी) को और दोष-नाशक शिक्षा ब्रह्मविद्या का मैं खोजता हूं जिससे सपत्नी और अविद्या हटे तथा एक पति ईश्वर सम्यक पाया जा सके। १

४८९
उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति। सपत्नीं मे परा णुद पतिं मे केवलं कृधि॥ २

हे विस्तृत पर्ण(पत्तों, पालनकर्मों)से युक्त, ऐश्वर्यशाली, देव-सेवित, बलयुक्त औषधि-ब्रह्मविद्या! तू मेरी सपत्नी अविद्या माया को दूर हटा और केवल एक पति परमात्मा से मिला। २

४९०
नहि ते नाम जग्राह नो अस्मिन् रमसे पतौ। परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ॥ ३

तेरा नाम न लूँगा, इस मेरे पति के मध्य बाधक न बन, हम सपत्नी माया को दूर से दूर हटा दें। ३

४९१
उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः। अधः सपत्नी या ममाधरा साधराभ्यः ॥ ४

हे उत्कृष्ट! मैं उत्कृष्ट हूं, उत्तमों में उत्तम हूं, मेरी सौत के समान नीच माया नीच से भी नीच है। ४

४९२
अहमस्मि सहमानाथो त्वमसि सासहिः। उभे सहस्वती भूत्वा सपत्नीं मे सहावहै ॥ ५

(हे ईश्वर!) मैं बलवान् हूं; तू बलवान् है, दोनों बलयुक्त होकर सपत्नी माया को वश में करें। ५

४९३
अभि तेऽधां सहमानामुप तेऽधां सहीयसीम्।

मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ॥ ६

(ईश्वर कहता है— हे जीव!) तेरे चारों ओर और पास में सहनशील बलयुक्त (ब्राह्मी औषधि ब्रह्मविद्या को रक्खा है, तेरा मन मेरे प्रति वैसे ही दौड़े जैसे गौ के पास वत्स और मार्गसे जल। ६

सूक्त १९ (राष्ट्र की शक्ति को बढ़ाना)

४९४
संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं बलम्। संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुर्येषामस्मि पुरोहितः ॥

मेरा यह वेदःज्ञान, वीर्य, बल तेजस्वी हो; उनका क्षात्रबल तीक्ष्ण हो जिनका मैं विजयी पुरोहित हूं। १

४९५
समहमेषां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं बलम्। वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम् २ ॥

मैं इनका राष्ट्र, ओज, वीर्य, बल पुष्ट करूँ, मैं इस हवि (उपाय) से शत्रुओं की बाहों को काट दूँ। २

४९६
नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान्, क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वानहम्।

जो हमारे विद्वान्, धनी शासक पर आक्रमण करें वे नीचे गिरें, अधीन हों, मैं ब्रह्मास्त्र से शत्रुओं का नाश करूँ और अपने पुरुषों को उन्नत करूँ। ३

४६७

तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेस्तीक्ष्णतरा उत । इन्द्रस्य वज्रात्तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः ॥४

मैं जिनका पुरोहित (हितैषी) हूं वे वीर फरसे, अग्नि, (आग्नेयास्त्र), बिजली के वज्रसे अधिक तेज हैं। ४

४६८-६६

एषामहमायुधा सं स्याम्येषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि । एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्णवेषां

चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः ॥५ उद्धर्षन्तां मघवन् वाजिनान्युद् वीराणां जयतामेतु

घोषः । प्रथग्घोषा उलुलयः केतुमन्त उदीरताम् । देवा इन्द्रज्येष्ठा मरुतो यन्तु सेनया ॥६

मैं इनके शस्त्र तीक्ष्ण करता हूं, वीर राष्ट्र बढ़ाता हूं, इनका क्षात्र-बल अक्षय हो, सब देव इनके चित्त की रक्षा करें। ५ हे धनी ! तेरे घोड़ें हर्षित हों, विजयी वीरों का घोष ऊँचा हो, झंडों के साथ जय-घोष अलग अलग उठे, शासक को बड़ा मानकर चलने वाले वायु-सैनिक स्थल-सेना के साथ साथ चलें। ६

५००

प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः, तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वनो हतोग्रायुधा अबलानुग्रबाहवः॥

हे नेताओ! आगे बढ़ो, जय करो, तुम्हारी बाहें उग्र हों, तेज बाण-धनुष-शस्त्र वाले होकर शत्रु मारो। ७

५०१।

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते जयामित्रान्प्रपद्यस्व जह्येषां वरंवरं मामीषां मोचि कश्चन॥

हे ज्ञान-युक्त सेना ! आगे बढ़ाई गई तू झपट, बड़े बड़े शत्रुओं को मार, इनमें से किसी को न छोड़। ८

सूक्त २०। अग्नि (अगूणी शासक और विद्वान्)

५०२

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः । तं जानन्नग्न आ रोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥१

हे अगूणी ! यह ईश्वर सब ऋतुओं में कारण है जिससे तू दीप्त है, इसे जानता बढ़, हमारा धन बढ़ा।

५०३

अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् नः सुमना भव । प्र णो यच्छ विशां पते धनदा असि नस्त्वम् ॥२

हे अगूणी ! तू यहां हमें अच्छा उपदेश कर, प्रसन्न हो, हे प्रजा-रक्षक ! धनदा तू हमें धन दे। २

५०४।

प्र णो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः । प्र देवीः प्रोत सूनृता रयिं देवी दधातु मे ॥ ३

हमें न्यायाधीश, शासक, विद्वान्, दिव्य शक्तियाँ और प्रिय सत्य वेदवाणी ऐश्वर्य धारण कराये। ३

५०५

सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे । आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ।४

हम रक्षार्थ सोम राजा, अग्नि, आदित्य ब्रह्मचारी, यज्ञ, सूर्य, ईश्वर और वेदज्ञ को वाणियों से बुलायें।

५०६
त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय । त्वं नो देव दातवे रयिं दानाय चोदय ।।५

हे अग्रणी! तू विद्वानों द्वारा वेद और यज्ञ बढ़ा, हे देव! तू हमारे धनी को दानके लिए प्रेरित कर।५

५०७
इन्द्रवायू उभाविह सुहवेह हवामहे । यथा नः सर्वइज्जनः ।

सङ्गत्यां सुमना असद्दानकामश्च नो भुवत् ।। ६

हम यहाँ अच्छे प्राणप्रद दोनों सूर्य-वायु प्रयुक्त करते हैं जिससे हमारे सभी जन सङ्गति में अच्छे मन वाले हों और दान की कामना वाले हों । ६

५०८
अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय । वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ।।७

हे ईश्वर ! न्यायाधीश, आचार्य, सम्राट्, संन्यासी, याज्ञिक, विदुषी, बली विद्वान् को दानार्थ प्रेरित कर

५०९
वाजस्य नु प्रसवे सं बभूविमेमा च विश्वा भुवनान्यन्तः ।

उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन् रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ ।। ८

हम अन्नोत्पादन में समर्थ हों, जिसके अधीन सब भुवन हैं, हे ज्ञानी ! तू अदानी से दान दिला और हमें सबको वीर बनाने वाले धन-ऐश्वर्य को नित्य दे । ८

(मन्त्र ६, ७, ८ क्रमशः यजु ३३.८६, ९.२७ और १९.२४-२५ में कुछ पाठ-भेद से हैं ।)

५१०
दुहां मे पञ्च प्रदिशो दुहामुर्वीर्यथाबलम् । प्रापेयं सर्वा आकूतीर्मनसा हृदयेन च ।।

मेरे लिए ५ दिशाएँ और पृथिवियाँ यथाशक्ति सुख दुहें, मैं मन-हृदय से सब अभिलाषाएँ प्राप्त करूँ ।९

५११
गोसनिं वाचमुदेयं वर्चसा माभ्युदिहि । आ रुन्धां सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोषं दधातु मे ।।१०

मैं गतिप्रद वाणी बोलूं; मुझे तेज से युक्त कर, वायु सब ओर से घेरे रहे, सूर्य मुझे पुष्टि दे । १०

काण्ड ३, अनुवाक ५ (सूक्त २१-२५)

महर्षि के अनुसार विषय— अग्नीश्वर-प्रार्थनादि अनेक पदार्थ- विद्या

सूक्त २१ । अनेक प्रकार की अग्नियाँ

५१२-१३. ये अग्नयो अप्स्वन्तर्ये वृत्रे ये पुरुषे य अश्मसु । य आविवेशोषधीर्यो वनस्पतींस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥१॥ यः सोमे अन्तर्यो गोष्वन्तर्य आविष्टो वयःसु यो मृगेषु । य आविवेश द्विपदो यश्चतुष्पदस्तेभ्यो० (शेष प्रथम मन्त्रवत्)॥ २

जो अग्नियाँ जल में (हाइड्रो इलेक्ट्रिक), मेघ में (बिजली), पुरुष में (ताप—जठराग्नि—ज्ञानाग्नि), पत्थरों में (चकमक), औषधि-वनस्पतियों में (भौतिक आग) अन्दर हैं उनके लिए यह हवन हो। १
जो सोम (चन्द्र, दूध), गौ-पक्षी-वनपशु-दुपाए-चोपायों में आविष्ट हैं उन अग्नियों के लिए यह हवन हो। २

५१४-१५. य इन्द्रेण सरथं याति देवो वैश्वानर उत विश्वदाव्यः । यं जोहवीमि पृतनासु सासहिं तेभ्यो० [शेष पूर्ववत्]।३ यो देवो विश्वाद्यमु कामामाहुर्यं दातारं प्रतिगृह्णन्तमाहुः । यो धीरः शक्रः परिभूरदाभ्यस्तेभ्यो० [शेष पूर्व के समान] ॥ ४

जो सेनापति के साथ रथ में, जीव के साथ शरीर—रथ में वैश्वानर; विश्व-तापक है, जिसे युद्धों में जयी होने का आवाहन करता हूं (सेनापति), उन सब अग्नियों के लिए यह हुत (हवन—अन्नदान) हो। ३
जो मदकारी, विश्व को खानेवाला है, जिसे 'काम' और 'देने-लेने वाला' कहते हैं, जो धीर, शक्ति-शाली, सब ओर छा जाने वाला, अदम्य है, उन अग्नियों (की शान्ति) के लिए यह हवन हो। ४

५१६ यं त्वा होतारं मनसाभि संविदुस्त्रयोदश भौवना पञ्च मानवाः ।
वर्चोधसे यशसे सूनृतावते तेभ्यो० [शेष पूर्ववत्] ॥ ५

जिस होता (देने—लेने वाले ईश्वर) को १३ (अधिक मास सहित) मास और ५ मानव (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-निषाद) मन से जानते हैं जो तेजस्वी, यशस्वी, वेदवाला है उन अग्नियों के लिए यह हवन हो।

५१७।
उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ।।६

सूर्य-पृथ्वी द्वारा अन्न-दाता, सोम-द्वारा पोषण-प्रद, बड़ी वायुके निर्माता उन अग्नियोंके लिए यह होम हो।६

५१८।
दिवं पृथिवीमन्वन्तरिक्षं ये विद्युतमनुसञ्चरन्ति । ये दिक्ष्वन्तर्ये वाते अन्तस्ते०।।[शेष पूर्ववत्]

जो द्यौ-पृथ्वी-अन्तरिक्ष-बिजली के पीछे और दिशाओं-वायुओं के अन्दर चलती हैं उन अग्नियों० । ७

५१९-
हिरण्यपाणिं सवितारमिन्द्रं बृहस्पतिं वरुणं मित्रमग्निम् ।

विश्वान् देवानङ्गिरसो हवामह इमं क्रव्यादं शमयन्त्वग्निम् ।। ८

सुनहरी हाथवाले सूर्य, इन्द्र, बृहस्पति, वरुण, मित्र, अग्नि, सब देवों, वैद्योंको बुलाएँ वे मांसाद आग शान्त करें ।

५२०
शान्तो अग्निः क्रव्याच्छान्तः पुरुषरेषणः । अथो यो विश्वदाव्यस्तं क्रव्यादमशीशमम् ।। ९

यह मांसभक्षी, पुरुष-हिंसक, चिन्ता-काम-अग्नि शान्त हो; मैं सब के दाहक इसे शान्त करूँ ।६

५२१।
ये पर्वताः सोमपृष्ठा आप उत्तानशीवरीः । वातः पर्जन्य आदग्निस्ते क्रव्यादमशीशमन् ।।१०

जो सोम-धारक पहाड़, ऊपर खुले जल, बादल, वायु और अग्नि हैं वे मांस-भक्षी आग शान्त करें ।१०

सूक्त २२ । विश्वेदेवाः । वर्चः की प्राप्ति

५२२
हस्तिवर्चसं प्रथतां बृहद् यशो अदित्या यत् तन्वः संबभूव ।

तत् सर्वे समदुर्मह्यमेतद् विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ।। १

बड़ा यशस्वी हाथी का बल मेरे शरीर में फैले जो अदिति (अखण्ड माता-पिता परमात्मा-प्रकृति, द्यौ-अन्तरिक्ष-पृथ्वी) से उत्पन्न है, उसे सब देव और अदिति सब प्रेम-सहित मुझे दें । १

५२३
मित्रश्च वरुणश्चेन्द्रो रुद्रश्च चेततु । देवासो विश्वधायसस्ते माञ्जन्तु वर्चसा ।।२

मित्र-वरुण (सूर्य-जल; प्राण-उदान, हाइड्रोजन-आक्सीजन), इन्द्र (वायु-बिजली). रुद्र (अग्नि-वैद्य-परमात्मा) चेताते रहें, विश्व-धारक देव मुझे तेज से कान्ति-युक्त करें । २

५२४
येन हस्ती वर्चसा संबभूव येन राजा मनुष्येष्वप्स्वन्तः ।
येन देवा देवतामग्र आयन् तेन मामद्य वर्चसाग्ने वर्चस्विनं कृणु ॥ ३

हे अग्नि! जिससे हाथी, राजा मनुष्यों, जलमें तेजस्वी होता, देव देवत्व पाते, उस तेजसे मुझे तेजस्वी कर

५२५
यत्ते वर्चो जातवेदो बृहद् भवत्याहुतेः । यावत् सूर्यस्य वर्च आसुरस्य
च हस्तिनः । तावन्म अश्विना वर्च आ धत्तां पुष्कर-स्रजा ।। ४

हे अग्नि! जो तेरा तेज आहुतिसे बढ़ता, जितना सूर्य और बली हाथी का है उतना मुझे पोषक अश्वी दें । ४

५२६
यावच्चतस्रः प्रदिशश्चक्षुर्यावत् समश्नुते । तावत् समेत्विन्द्रियं मयि तद्धस्तिवर्चसम् ॥५

जितना तेज ४ दिशाएँ और चक्षु पाते हैं उतना हस्ती-बल मेरी इन्द्रियों को प्राप्त हो । ५

५२७
हस्ती मृगाणां सुषदामतिष्ठावान् बभूव हि । तस्य भगेन वर्चसाभि षिञ्चामि मामहम् ।।६

सुखी पशुओं में हाथी प्रतिष्ठायुक्त है, मैं उसके सेवनीय तेज से अपने को सींचूँ (युक्त करूँ) । ६

सूक्त २३ । देवता माता । उत्तम सन्तान

५२८
येन वेहद् बभूविथ नाशयामसि तत् त्वत् । इदं तदन्यत्र त्वदप दूरे नि दध्मसि ।। १

(हे स्त्री !) जिस कारण से तू वन्ध्या होती है उसे तुझसे दूर करें नष्ट करें ।१

५२९
आ ते योनिं गर्भ एतु पुमान् बाण इवेषुधिम् । आ वीरोऽत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः ॥२

जैसे बाण धनुष पर होता है वैसे ही तेरा पुरुष-गर्भ गर्भाशय में रहे, दशम मास तेरी सन्तान पैदा हो

५३० ।
पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमाननु जायताम् । भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान् ॥

तू रक्षक पुत्र उत्पन्न कर, तत्पश्चात् पुनः पुत्र हो, तू पैदा हुई और होनेवाली सन्तानोंकी माता हो

३१

यानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयन्ति च । तैस्त्वं पुत्रं विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुका भव ।।४

जिन कल्याणकारी बीजों (जीन्स)को ऋषभ औषधि उत्पन्न करती है उनसे पुत्र पा, प्रसूता-दुग्धवाली बन ।

३२

ोमिते प्राजापत्यम। योनिं गर्भ एतु ते, विन्दस्व त्वं पुत्रं नारि यस्तुभ्यं शमसच्छमु तस्मै त्वंभव ।

री! तेरेलिए प्राजापत्य(पुत्रेष्टि)करता हूं, तेरी योनिमें गर्भ आये, तू पुत्र पा, जो तुझे, जिसे तू, शुभ हो ।

३३

सांद्यौः पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलंवीरुधांबभूव, तास्त्वापुत्रविद्याय दैवीःप्रावन्त्वोषधयः ।६

जिन दिव्य औषधियों का सूर्य पिता, पृथ्वी माता, समुद्र मूल है वे पुत्र पानेके लिए तेरी रक्षा करें । ६

सूक्त २४ समृद्धि

३४

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं वचः । अथो पयस्वतीनामा भरेऽहं सहस्रशः ।। १

औषधियाँ रसीली, मेरा वचन रसीला हो, अतः मैं हजारों रसवाली औषधियों का संग्रह करूँ । १

३५

ाहं पयस्वन्तं चकार धान्यं बहु । सम्भृत्वा नाम यो देवस्तं वयं हवामहे योयो अयज्वनो गृहे ।।

स जलयुक्त मेघको जानूँ जो बहुत अन्न देता है, सम्भृत्वा नाम उसे बुलायें जो अयज्वा-घर भी बरसता है ।

३६

इमा याः पञ्च प्रदिशो मानवीः पञ्च कृष्टयः । वृष्टे शापं नदीरिवेह स्फातिं समावहान् ।। ३

ये जो पाँच दिशाएं और मानवी प्रजा हैं वे वैसे ही समृद्धि लाएँ जैसे नदियाँ वर्षा-प्रवाह को । ३

३७

उद्भुत्सं शतधारं सहस्रधारमक्षितम् । एवास्माकेदं धान्यं सहस्रधारमक्षितम् ।। ४

से जल-स्रोत शत-सहस्र धारा युक्त अक्षय होता है वैसेही हमारा यह अन्न सहस्र भण्डारोंमें अक्षय हो ।

३८

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सङ्किर । कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ।। ५

हे मनुष्य!)तू सौ हाथों से अर्जन कर, सहस्र हाथों से दान दे, किये हुए और कर्तव्य की समृद्धि यहाँ ला ।

३९

स्रो मात्रा गन्धर्वाणां चतस्रो गृहपत्न्याः । तासां या स्फातिमत्तमा तया त्वाभिमृशामसि ।।६

गन्धर्वों (पृथ्वी-धारक किसानों)की ३ मात्राएँ (निर्माण जोतना-बोना-सींचना)हैं, गृह-पत्नी की ४ हैं।
रक्षा-कटाई-मड़ाई-संग्रह)। उनमें जो सबसे बड़ी समृद्धि है उससे तुझे हम संयुक्त करते हैं । ६

५४०
उपोहश्च समूहश्च क्षत्तारौ ते प्रजापते । ताविहा वहतां स्फातिं बहुं भूमानमक्षितम् ॥ ७

हे प्रजापति! उत्पादनऔर संग्रह दो बड़े कष्टप्रद हैं, वे यहाँ समृद्धि–बाहुल्य (योग–क्षेम) दें ॥ ६

सूक्त २५ । काम

५४१
उत्तुदस्त्वोत्तुदतु मा धृथाः शयने स्वे । इषुः कामस्य या भीमा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥१

(हे अविद्या !) तेरी उत्पीडक कामना तुझे पीड़ा दे, तू अपने शयन (हृदय) में मत ठहर, कामना का जो भयङ्कर बाण है उससे मैं योगी विद्वान् तुझ अविद्या के हृदय में बेधता हूं । १

५४२
आधीपर्णां कामशल्यामिषुं सङ्कल्पकुल्मलाम् । तां सुसंनतां कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि॥

मेरी कामना प्रतिष्ठा-पंखयुक्त, कामना-शल्यवाले, सङ्कल्प-दण्डयुक्त बाण तानकर तुझे हृदय में बेधे । २

५४३
या प्लीहानं शोषयति कामस्येषुः सुसंनता । प्राचीनपक्षा व्योषा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥३

कामना के ठीक चलाये बाणसे, जो प्लीहा (गति) सुखाता, प्राचीन (वेद) पक्षयुक्त, दाहक है, तुझे बेधता हूं ।३

५४४
शुचा विद्धा व्योषया शुष्कास्याभि सर्प मा । मृदुर्निमन्युः केवली प्रियवादिन्यनुव्रता ॥४

(हे विद्या!) दाहक दीप्तियुक्त, सूखे मुख वाली, कोमल, अक्रोध, सेवनीय, प्रिय-भाषी व्रती तू पास आ ।४

५४५
आजामि त्वाजन्या परि मातुरथो पितुः । यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥ ५

तुझे पूरे यत्न से माता–पिता से सब ओर से प्राप्त करूँ, तू मेरे ज्ञान–कर्म में हो, मेरे चित्त में पहुंचे । ५

५४६
व्यस्यै मित्रावरुणौ हृदश्चित्तान्यस्यतम् । अथैनामक्रतुं कृत्वा ममैव कृणुतं वशे । ६

हे मित्र और वरुण (आचार्य)! इसके लिए हृदयकी चेतनाएँ फैलाओ, इसे अहिंसक क मेरेही वशमें करो ।

काण्ड ३, अनुवाक ६ (सूक्त २३-६१)

महर्षि के अनुसार विषय— ईश्वर-प्रार्थनादि प्राणादि अनेक पदार्थ-विद्या

सूक्त २६ । ६ दिशाओं में ६ शक्तियाँ

५४७
येऽ३ स्यां स्थ प्राच्यां दिशि हेतयो नाम देवास्तेषां वो अग्निरिषवः ।

५४७
ते नो मृडत ते नो ऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ १

जो इस पूर्व दिशा में हेति(वज्र)नामक विद्वान् विजयेच्छु सैनिक हैं उन तुम्हारे आग्नेयास्त्र क्षेप्यास्त्र हैं । वे तुम हमें सुखी करो, वीर-वचन बोलो,उन तुम्हारे लिए नमस्कार, अन्नादि और प्रशंसा-वचन हों ।
दैविक अर्थ— पूर्व से आने वाली 'हेति' किरणें हम तक अग्नि फेंकती हैं। १

५४८
येऽस्यां स्थ दक्षिणायां दिश्यविष्यवो नाम देवास्तेषां वः काम इषवः । ते नो०[पूर्ववत्]॥२

जो इस दक्षिण दिशामें अविष्यु नाम देव(सैनिक, किरणें)हैं उनके बाण काम(ग्रयेच्छ)हैं, वे०(पूर्ववत्) २

५४९
येऽस्यां स्थ प्रतीच्यां दिशि वैराजा नाम देवास्तेषां व आप इषवः । ते नो०[पूर्ववत्] ॥३

जो इस पच्छिम दिशामें 'वैराज' नाम देव(सैनिक,किरणें)हैं, उनके बाण जल(वरुणास्त्र)हैं,वे०(पूर्ववत्) ३

५५०
ये ऽस्यां स्थोदीच्यां दिशि प्रविध्यन्तो नाम देवास्तेषां वो वात इषवः। ते नो०[पूर्ववत्]४॥

जो इस उत्तर दिशामें 'प्रविध्यन्'नाम देव(सैनिक; किरणें)हैं उनके बाण वायव्यास्त्र हैं , वे०(पूर्ववत्) । ४

५५१
ये ऽस्यां स्थ ध्रुवायां दिशि निलिम्पा नाम देवास्तेषां व ओषधीरिषवः । ते नो०[पूर्ववत्]५॥

जो इस नीचे की दिशामें' निलिम्प'नाम देव(सैनिक, किरणें)हैं उनके बाण औषधि हैं, वे० (पूर्ववत्) ।

५५२
येऽस्यां स्थोर्ध्वायां दिश्यवस्वन्तो नाम देवास्तेषां वो बृहस्पतिरिषवः । ते नो०[पूर्ववत्]॥६

जो इस ऊपर की दिशा में'अवस्यन्'नाम देव(सैनिक,किरणें)हैं, उनके बाण बृहस्पति(यम)हैं वे०(पूर्ववत्) ६

सूक्त २७ । मनसा-परिक्रमा, ६ दिशाएँ, अधिपति, रक्षिता, इषु

५५३
प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः । तेभ्यो नमो ऽधिपतिभ्यो

नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । यो ऽस्मान् द्वेष्टि

यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ १

१— आधिदैविक वैज्ञानिक अर्थ

पूर्व दिशा का अग्नि(सूर्य)अधिपति, असित(उसका कालाभाग)रक्षिता; आदित्य (किरणें तथा प्राण इषु(हम तक फेंके गये रक्षक बाण)हैं, उन(६ मन्त्र-वर्णित) ६ अधिपतियों, रक्षिताओं और इन बाणों के लिए नमः (सादर प्रयोग) हो, जो[एक दुष्ट] हम से और जिस दुष्ट से हम अनेक द्वेष करते हैं उसे तुम्हारे जम्भ (जबड़े, न्याय, नाशक साधन) में रखते हैं। १ [अन्तिम अंश 'उन —रखते हैं' सबमें है]

५५४।

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः । तेभ्यो०॥[पूर्ववत्]२

दक्षिण दिशाके अधिपति इन्द्र(वायु), रक्षिता तिरछी पंक्तियोंवाला वात-चक्र, इषु ऋतुएं हैं, उन० २

५५५

प्रतीची दिग्वरुणोधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः । तेभ्यो० [पूर्ववत्]॥३

पश्चिम दिशाके वरुण(सूक्ष्म जल)अधिपति, पृदाकु(चन्द्र का अजगर के समान चकीला पहाड़) रक्षिता, अन्न (चन्द्र और उसकी किरणें) इषु हैं उन० इत्यादि पहले मन्त्र के समान है।३

५५६।

उदीची दिक् सोमोधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः । तेभ्यो नमो०[पूर्ववत्]॥ ४

उत्तर दिशा में सोम (ज्योतिश्चक्र नक्षत्रमण्डल) अधिपति, स्वज(लिपटने-लपेटनेवाला चुम्बक-मण्डल, ध्रुव)रक्षिता, अशनि बिजली इषु हैं, उन० (पूर्ववत्)। ४

५५७

ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो०[पूर्ववत्] ॥५

ध्रुवा नीचे की दिशा में विष्णु (व्यापक सूक्ष्म धूल) अधिपति, कल्माष-ग्रीव [भूगर्भमें चितकबरे ग्रीवा-भाग वाला अग्निमय तत्व] रक्षिता, वनस्पतियाँ इषु हैं, उन० (पूर्ववत्)। ५

५५८

ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः । तेभ्यो० (पूर्ववत्)॥ ६

ऊर्ध्वा ऊपर की दिशा है, बृहस्पति [सूक्ष्म वाष्पमय आकाश-मण्डल और मेघ] अधिपति है, श्वित्र (सफेद ज्योतिर्मय बिजली) रक्षिता है, वर्षा इषु है। उन० [शेष पहले मन्त्र के समान है।] ६

[लगभग ऐसा ही वर्णन आगे काण्ड १२, सूक्त ३, मन्त्र ५५ से ६० तक में है]

२— आध्यात्मिक अर्थ

दिशा	अधिपति	रक्षिता	इषु-बाण
पूर्व	अग्नि [सर्वज्ञ ईश्वर]	असित बन्धन-रहित	सूर्य और उसकी किरणें, प्राण
दक्षिण	इन्द्र परमैश्वर्यवान् ईश्वर	तिरछे चलनेवाले कीटादि से रक्षक	पालनकर्ता ज्ञानी विद्वान्
पश्चिम	वरुण वरणीय ईश्वर	अजगर आदि से रक्षक	अन्न
उत्तर	सोम प्रेरक उत्पादक ईश्वर	स्वयम्भू अजन्मा ईश्वर	बिजली
ध्रुवा नीचे	विष्णु व्यापक ईश्वर	अनेक रंग के वृक्ष रूपी गरदन वाला	वनस्पतियाँ
ऊर्ध्वा ऊपर	बृहस्पति	श्वित्र प्रकाशस्वरूप	वर्षा

३— आधिभौतिक अर्थ (१) सैन्य-विज्ञान

सेना-दिशा	अधिपति	रक्षिता	इषु बाण
पूर्व	अग्नि अग्रणी सेनापति (पायनियर)	काली वर्दीके सर्पवत् सैनिक	सूर्य-शक्तिके आग्नेयास्त्र तोप आदि
दक्षिण	इन्द्र सेनापति	तिरछी धारियों की वर्दी ,,	रक्षक अस्त्र और चिकित्सक
पश्चिम	वरुण नामक जल-सेनापति	अजगर के समान स्थल-सैनिक	अन्न-भण्डार, वरुणास्त्र
उत्तर	सोम (प्रेरक) ,,	बहुत गति और क्षेपण वाले ,,	बिजली के अस्त्र
स्थल	विष्णु (डाक्टर) ,,	गले में चितकबरी पट्टी वाले ,,	चिकित्सा की औषधियाँ
ऊपर	बृहस्पति वायु-सेनाध्यक्ष	सफेद वर्दी के ,,	बम-वर्षा, पर्जन्य-वायु-अस्त्र

४— भौतिक अर्थ (२)—समाजशास्त्र

पूर्व— आगके समान दीप्त, वसन्त, ब्रह्मचर्य, ब्राह्मण, अभ्युदय, ज्ञान, धर्म, सिर, सूर्यवत्, स्वतन्त्र हो।
दक्षिण— दक्षता, ग्रीष्म, क्षत्रिय, गृहस्थ, अर्थ, बाहु,शूरता, धन, ऐश्वर्य, पितरों की सेवा कर्तव्य है।
पश्चिम— वरणीय, वैश्य, धनकी वर्षा, कामना-पूर्ति, अन्न-वृद्धि, वानप्रस्थ, उन्नति, चन्द्रके समान हो।
उत्तर— उच्चतर, सौम्यता, शरद् के समान शान्त संन्यास की ओर अग्रसर, वज्र-बिजलीके तुल्य हो।
पृथ्वी—के समान ध्रुवता, व्यापकता, हेमन्त के समान शीतल सहनशील, शूद्र के समान श्रमी हो।
ऊपर—की दिशा में पहुंच कर आत्मज्ञानी योगी संन्यासी होकर ज्ञान-सुख-वर्षा कर मोक्ष प्राप्त करे।

सूक्त २८ । यमिनी, नियामक शक्ति, बुद्धि

५५९ एकैकयैषा सृष्टचा संबभूव यत्र गा असृजन्त भूतकृतो विश्वरूपाः ।
यत्र विजायते यमिन्यपर्तुः सा पशून् क्षिणाति रिफती रुशती ॥ १

यह यमिनी एक-एक सृष्टि के साथ हुई जहाँ पंचभूतों के कर्ता ईश्वरीय गुणोंने नाना रूपके लोक बनाये यह ऋतु-विरुद्ध होकर जब बिगड़ती है तो जीवों को पीडा देती हुई नाश कर देती है। १

५६० एषा पशून्संक्षिणाति क्रव्याद् भूत्वा व्यद्वरी । उतैनां ब्रह्मणे दद्यात्तथा स्योना शिवा स्यात् ॥

यह उलटी बुद्धि मांस खानेवाली, प्रजा-नाशक होकर प्राणी-नाश करती है, अगर इसे ब्रह्मा (चतुर्वेदी प्रधान-मन्त्री को सौंप दें तो सुखदा कल्याण-प्रदा हो जाये। २

५६१ शिवा भव पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यो शिवा । शिवास्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न इहैधि ॥ ३

हे यमिनी ! तू पुरुषों, गौओं, अश्वों, इस सब क्षेत्र का और हमारा कल्याण करने वाली हो। ३

५६२ इह पुष्टिरिह रस इह सहस्रसातमा भव । पशून् यमिनि पोषय ॥ ४

हे यमिनी ! तू यहाँ पोषण, आनन्द और हजारों प्रकार के पदार्थ देनेवाली हो तथा पशु-पोषण कर । ४

५६३
यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः ।

तं लोकं यमिन्यभि सं बभूव सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूँश्च ॥ ५

हे यमिनी! जहा उत्तम-हृदय, सदाचारी शरीर-रोग छोड़ प्रसन्न रहें वहाँ रह, हमारे पशु-पुरुषों को न मार ।

५६४ ।
यत्रा सुहार्दां सुकृतामग्निहोत्रहुतां यत्र लोकः । तं लोकं०(शेष मन्त्र ५ के समान) ॥ ६

हे यमिनी ! जहाँ सुहृदय सदाचारी अग्निहोत्रियोंका देश है वहाँ रह, हमारे पशुओं-पुरुषों की हिंसा न कर ।

सूक्त २९ । १-६ अवि (भूमि-कर), ७-८ काम

५६५
यद् राजानो विभजन्त इष्टापूर्तस्य षोडशं यमस्यामी सभासदः ।

अविस्तस्मात् प्र मुञ्चति दत्तः शितिपात् स्वधा ॥ १

संयमी राष्ट्र के सभासद् ये राजा यज्ञ-परोपकार के हेतु आय का १६वाँ भाग बाँटें, वह धर्म-पालक धन अन्न स्वयं-धारक है, भूमि उस कर से छूटी रहती है १

५६६
सर्वान् कामान् पूरयत्याभवन् प्रभवन् भवन् । आकूतिप्रोविर्दत्तः शितिपान्नोप दस्यति ।। २

दिया हुआ धर्म-भाग कर, और समर्थ प्रभावी राजा सब कामनाएँ पूर्ण करता है; नाश नहीं करता । २

५६७
यो ददाति शितिपादमविं लोकेन संमितम् ।

स नाकमभ्यारोहति यत्र शुल्को न क्रियते अबलेन बलीयसे ॥ ३

५६८
जो लोक-सभा में संमत कर देता है वह सुख पाता है जहाँ अबल द्वारा बली को देने हेतु शुल्क नहीं होता । ३

पञ्चापूपं शितिपादमविं लोकेन संमितम् । प्रदातोप जीवति पितृणां लोके क्षितम् ॥ ४

पञ्चों द्वारा स्वीकृत लोक-सभा कर का दाता पितरों पूर्वजों के देश में अक्षय जीता है । ४

५६९
पञ्चापूपं शितिपादमविं लोकेन संमितम् । प्रदातोप जीवति सूर्यामासयोरक्षितम् ॥ ५

पंचों द्वारा अटल किये, दुष्टोंको दबानेवाले रक्षक कर का दाता सूर्य-चन्द्र-प्रकाशमें अक्षय हो जाता है। ५

५७०
इरेव नोप दस्यति समुद्र इव पयो महत् । देवौ सवासिनाविव शितिपान्नोप दस्यति ।६

दिया गया धर्म-भाग कर पृथ्वी, बड़े जल-राशि समुद्र, और अश्विओं (सूर्य-चन्द्र) के समान अक्षय है ।६

५७१
क इदं कस्मा अदात् कामः कामायादात् । कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामः समुद्रमा विवेश । कामेन त्वा प्रति गृह्णामि कामैतत् ते ॥ ७

कौन इसे किसे देता है? कामना कामना को देती है, काम दाता-गृहीता है, काम समुद्र में घुसाता है, हे कमनीय ईश्वर और काम! मैं तुझे कामना से स्वीकार करता हूं, यह तेरा है। ७

५७२
भूमिष्ट्वा प्रतिगृह्णात्वन्तरिक्षमिदं महत्, माहं प्राणेन मात्मना मा प्रजया प्रतिगृह्य वि राधिषि ॥

भूमि व यह बड़ा अन्तरिक्ष तुझे स्वीकार करे, मैं इसे स्वीकार कर प्राण-आत्मा-प्रजा से अलग न होऊँ ।८

सूक्त ३० । प्रजापति । सांमनस्य

५७३
सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः । अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥ १

मैं तुम्हें सहृदयता, मन की समानता, प्रेम देता हूं, एक दूसरे से प्रेम करो जैसे गौ उत्पन्न बच्चे से ।१

५७४
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः । जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥ २

पुत्र पिता के अनुकूल व्रती, माता से एकमन वाला हो; पति-पत्नी परस्पर शान्तिपूर्ण वाणी बोलें ।२

५७५
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा, सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥३

भाई-बहिनें आपस में द्वेष न करें, सब मिलकर समान व्रती होकर कल्याण की वाणी बोलो । ३

५७६
येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः । तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥ ४

जिससे विद्वान् अलग नहीं होते और आपस में द्वेष नहीं करते वह पुरुषों को ज्ञान तुम्हारे घर में देते हैं। ४

५७७
ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः ।

अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ॥ ५

तुम बड़ोंके मान-कर्ता, उत्तम चित्तयुक्त, समृद्ध होकर एक लक्ष्यसे विचरण करते हुए अलग न होओ एक दूसरे के लिए मनोहर बोलते हुए बढो, मैं तुम्हें समान-गति, उत्तम मन वाला करता हूं ।

५७८-७९
समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि । सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥ ६ सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान् । देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायं प्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥ ७

तुम्हारी प्याऊ समान, अन्न-भाग एकसाथ हो, तुम्हें एक-साथ समान जोतेमें युक्त करता हूं, तुम वैसे ही मिलकर ईश्वर-पूजा और हवन करो जैसे पहिए के अरे उसके केन्द्र से सब ओर से मिले रहते हैं । ६ तुम सबको सेवा से एक-गति, एक-मन, एक-भोजन करता हूं, मुक्तोंकी तरह तुम्हारी प्रसन्नता सदा हो । ७

सूक्त ३१ । प्रजापति । पाप की निवृत्ति

५८०
वि देवा जरसावृतन् वि त्वमग्ने अरात्या । व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥१

विद्वान् बुढ़ापेसे दूर रहें, हे नेता! तू शत्रुता-कृपणतासे दूर रह, मैं सब पाप, रोगसे दूर, आयु से युक्त रहूं।

५८१
व्यार्त्या पवमानो वि शक्रः पापकृत्यया । व्यहं० (शेष पूर्ववत्) ॥ २

पवित्र पुरुष पीडा से, शक्तिशाली पाप-कर्म से दूर रहें । मैं० (पूर्ववत्) ।२

५८२
वि ग्राम्याः पशव आरण्यैर्व्यापस्तृष्णयासरन् । व्यहं० (शेष पूर्व के समान) ॥ ३

गाँव का पशु जङ्गली पशुओं से, और पानी प्यास से दूर रहते हैं । मैं० (पूर्ववत्) । ३

५८३
वीमे द्यावापृथिवी इतो वि पन्थानो दिशंदिशम् । व्यहं० (शेष पूर्व के समान) ॥ ४

ये द्यौ-पृथ्वी अलग-अलग और मार्ग अलग अलग दिशाओं में जाते हैं। मैं० (पूर्ववत्) । ४

५८४

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं युनक्तीतीदं विश्वं भुवनं वियाति । व्यहं० (पहले के समान) ॥ ५

पिता पुत्रीके लिए स्त्री-धन अलग कर देता है, यह सम्पूर्ण विश्व अलग-अलग चलता है, मैं० (पूर्ववत्)

५८५

अग्निः प्राणान्त्संदधाति चन्द्रः प्राणेन संहितः । व्यहं० (शेष पहले के समान)॥ ६

अग्नि प्राणों को धारण करती है, प्राण से चन्द्र (मन) सम्यक धारित होता है, मैं० (पहले के समान)। ६

५८६

प्राणेन विश्वतोवीर्यं देवाः सूर्यं समैरयन् । व्यहं० (पहले के समान) ॥ ७

विद्वान् सब ओर वीर्ययुक्त सूर्य को प्राण से संयुक्त करते (सूर्य से प्राणशक्ति लेते) हैं, मैं० (पूर्ववत्) ।७

५८७

आयुष्मतामायुष्कृतां प्राणेन जीव मा मृथाः । व्यहं० (पहले के समान) ॥ ८

बड़ी आयुवाले और आयु बढ़ाने वालों के प्राण के साथ जी; अपमृत्यु से न मर, मैं० [शेष पूर्ववत्] ८

५८८

प्राणेन प्राणतां प्राणेहैव भव मा मृथाः । व्यहं० (पहले के समान) ॥ ९

श्रेष्ठ प्राणवालों के प्राण के समान प्राण धारण कर, यहीं रह, अपमृत्यु से न मर, मैं ० [पूर्ववत्] । ९

५८९

उदायुषा समायुषोदोषधीनां रसेन । व्यहं० (पहले के समान) ॥१०

आयु से उन्नत और संयुक्त होकर और औषधियों के रस से [हम नीरोग हों], मैं० [पूर्ववत्] । १०

५९०

आ पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थामामृता वयम् । व्यहं० (पहले के समान) ॥११

हम अमर जीव बादल की वर्षा (अन्न खाकर) [ईश्वरीय वेद-ज्ञान-वर्षा] से ऊँचे उठें, मैं० [पूर्ववत्] ११

यह आचार्य वीरेन्द्रमुनि कृत अथर्व के अनुवादमें सूक्त ३१, अनुवाक ६, काण्ड ३ समाप्त हुआ।

अथर्व वेद संहिता कांड ४ सूची

पाठक अनुवाक सूक्त मन्त्र ऋषि देवता छन्द महर्षि दयानन्दानुसार अनुवाक-विषय

७ १ १ ७ वेन बृहस्पति, आदित्य त्रिष्टुप् जगद्धारण ईश्वरस्तुति विश्वोत्पत्ति
२ ८ ,, आत्मा ,, ६ अनुष्टुप् पदार्थविद्या
३ ७ अथर्वा रुद्र, व्याघ्र १ पंक्ति ,। ३ गायत्री
४ ८ ,, वनस्पति ७ ऊष्णिक ,,
५ ७ ब्रह्मा इन्द्र स्वापन ऋषभ ७ पंक्ति ,,
प्र२ ६ ८ गरुत्मान् तक्षक विष ,, वर्ण प्रकरण औषधि विष भाषण ईश्वरादि पदार्थविद्या।
७ ७ ,, वनस्पति ,, ,,
८ ७ अथर्वाङ्गिरा चन्द्रमा आपः १ ७ त्रिष्टुप् ,,
९ १० भृगु आञ्जन ३ पंक्ति ,,
१० ७ ,, अथर्वा शंख मणि त्रिष्टुप् ,, ,,
३ ११ १२ ,, अङ्गिरा अनड्वान् ,- ,, अनड्वानित्यादि ईश्वरादि पदार्थविद्या
१२ ७ ऋभु वनस्पति १ गायत्री ६ ,, ७ बृ. ,,
१३ ७ शन्ताति आत्मा ,,
१४ ९ भृगु अग्नि १-५ ७ त्रि.० ,, ८-९ जगती ,,
१५ १६ ;, अथर्वा पर्जन्य मरुतः ,, ,, ;,
४ १६ ९ ब्रह्मा वरुण ,, ,, ,, ईश्वर वरुणौषध दुष्टस्वप्न कृत्यादि पदार्थ विद्या
१७-१९ ८-८ शुक्र अपामार्ग वनस्पति ,,
२० ९ ,, ब्रह्म मातृनामा ,,
८ ५ २१ ७ ब्रह्मा गावः १ ५-७ त्रिष्टुप् २-४ जगती इन्द्र युद्ध राजेन्द्रोत्तम सखीश्वरादि पदार्थविद्या
२२ ७ वसिष्ठ अथर्वा इन्द्र ,,
२३-२५ ७-७ मृगार अग्नि-इन्द्र-वायु-सविता ,,
६ २६-२८ ७-७ ;, द्यावापृथिवी मरुत भवशर्वा त्रि० बृ० ,, ईश्वरप्रार्थना मरुत् सर्वकल्याणार्थ-ईश्वरादि पदार्थविद्या
२९ ७ ,, मित्रावरुणौ शक्वरी ,,
३० ८ ,, आम्भृणी वाक् राष्ट्री ,,
९ ७ ३१-३२ ७-७ ब्रह्मा स्कन्द मन्यु ,, जगती एकेश्वर-प्रार्थना शत्रु-विजयार्थ मृत्यु-निवारणार्थादि पदार्थविद्या
३३-३४ ८ ,, अथर्वा अग्नि ओदन गायत्री त्रिष्टुप्
३५ ७ प्रजापति ,, अतिमृत्यु ,, ,,
८ ३६ १० चातन सत्यौजाः अग्नि अनुष्टुप् ईश्वर पिशाच औषधि वीर्यप्रापणादि-पदार्थ विद्या
३७-३८ १२,७ बादरायणि शपथ अजशृङ्गी त्विषि अप्सरा ऋषभ अनु०
३९-४० १०,८ अङ्गिराः, शुक्र अग्नि वायु आदित्य चन्द्र जातवेदाः जगती पंक्ति त्रिष्टुप्

योग ३ ८ ४० ३२४ पूर्वागत ५९० सर्वयोग ९१४

महर्षि दयानन्द के अनुसार विषय— ईश्वर-प्रार्थनानेकवस्तु प्राप्त्यर्थ पदार्थ विद्या

सूक्त १। ब्रह्म-विद्या

५६१-६२।

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः। स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः॥१ (यजु.१३.३, साम ३२१) इयं पत्र्या राष्ट्र्यत्वग्रे प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठाः। तस्मा एतं सुरुचं ह्वारमह्यं घर्मं श्रीणन्तु प्रथमाय धास्यवे॥२

ब्रह्म जनक विस्तृत विस्तारक वेन(प्रकाशमान कमनीय)है, अन्तरिक्षस्थ लोक इसकी उपमा हैं, उसने विद्यमान कार्य-जगत् और अव्यक्त कारण-प्रकृति के वर (आकाश)को खोला है। १
यह भुवनों की राष्ट्री शक्ति पिता ईश्वर से प्रथम जनता को मिले, अतः पहले धारक के लिए यज्ञ करें।२

५६३-९४

प्र यो जज्ञे विद्वानस्य बन्धुर्विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति। ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्यान्नीचैरुच्चैः स्वधा अभि प्र तस्थौ॥३ स हि दिवः स पृथिव्या ऋतस्था मही क्षेमं रोदसी अस्कभायत्। महान् मही अस्कभायद्वि जातो द्यां सद्म पार्थिवं च रजः॥४

जो इसका बन्धु सर्वज्ञ है, सब देवों की उत्पत्ति को (वेद के द्वारा)बताता है, ब्रह्म से ब्रह्म(वेद) प्रकट होता है, वह अपना धारक परमात्मा नीचे ऊँचे सर्वत्र विद्यमान है। ३
वही द्यौ-भूमि का सत्य कारण, दोनों का सकुशल धारक है उसी प्रसिद्ध महान् ने इन्हें ठहराया है। ४

५९५-९६।

स बुध्न्यादाष्ट्र जनुषोऽभ्यग्रं बृहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट्। अहर्यच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्टाथ द्युमन्तो वि वसन्तु विप्राः॥५ नूनं तदस्य काव्यो हिनोति महो देवस्य पूर्व्यस्य धाम। एष जज्ञे बहुभिः साकमित्था पूर्वे अर्धे विषिते ससन् नु॥६

वह बड़ों का पति जगत् के मूल से शिखर तक व्यापक उसका सम्राट् है, जब चमचमाता दिन ज्योति से प्रकट होता है तब बुद्धिमान् सुख से रहते हैं। ५
निश्चय ही वेद-काव्य उस देव का महान् यश बताता है, वह जगत् बहुतों के साथ अखंड से पैदा हुआ।

५९७

यो ऽथर्वाणं पितरं देवबन्धुं बृहस्पतिं नमसाव च गच्छात् ।

त्वं विश्वेषां जनिता यथासः कविर्देवो न दभायत् स्वधावान् ॥ ७

जो निश्चल पिता, देवों के बन्धु, बड़े पति ईश्वर को नमः के साथ जानता है कि 'तू ही सब का उत्पादक कवि देव है' वह अन्न-युक्त शक्तिशाली मुक्त होकर कभी नष्ट नहीं होता । ७

सूक्त २ । कः [प्रजापति] की भक्ति

५९८-९९ ।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यो ऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ यः प्राणतो निमिषतो महित्वैको राजा जगतो बभूव । यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२

जो आत्म-ज्ञान का दाता, बल देनेवाला है, जिसके शासन को सब देव मानते और उपासना करते हैं, जो इस दो और चार पैरवाले(मनुष्य-पशु जगत्)का ईश है उस क देव सुखदाता प्रजापति ईश्वर के लिए हम हवि (गृहण करने-योग्य योगाभ्यास, अतिप्रेम; आत्मा-अन्तःकरण, सब उत्तम सामग्री, सामर्थ्य) से विशेष भक्ति किया करें ।१। (चरण ४ सूक्तके आठों मन्त्रोंमें समान है, कुछ भेदसे ऋ१०.१२१,य २५.१३) जो प्राणी-अप्राणी जगत् का स्वमहिमा से एक ही राजा है, जिसका आश्रय मोक्ष, अनाश्रय मृत्यु है उस०२

६०० ।

यं क्रन्दसी अवतश्चस्कभाने भियसाने रोदसी अह्वयेथाम्, यस्यासौ पन्था रजसो विमानःकस्मै० ३

जिससे रुके द्यु-पृथ्वी आश्रित हो चलते, भीत हो पुकारते हैं, जिसका यह पथ लोकका विमान है, उस०

६०१

यस्य द्यौरुर्वी पृथिवी च मही यस्याद उर्वन्तरिक्षम्, यस्यासो सूरो विततो महित्वा कस्मै० ॥ ४

जिसका फैला द्यो, बड़ी पृथिवी, फैला अन्तरिक्ष है, जिसकी महिमा से यह सूर्य व्यवस्थित है उस० । ४

६०२ ।

यस्य विश्वे हिमवन्तो महित्वा समुद्रे यस्य रसामिदाहुः, इमाश्च प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै०॥ ५

जिसकी महिमा से सब वर्फीले पहाड़, समुद्र में पृथ्वी-नदी बताते हैं,, ये दिशाएँ जिसकी बाहें हैं उस०

६०३
आपो अग्रे विश्वमावन्गर्भन्दधाना अमृता ऋतज्ञाः । यासु देवीष्वधि देव आसीत्कस्मै० ॥ ६

आदिसृष्टि में अमर, सत्य जाननेवाली दिव्य आपः (नीहारिका) विश्व-रक्षक हैं उनपर वह देव है उस०।६

६०४
हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्, स दाधार पृथिवीमुत द्यां कस्मै०७

तेजवाले लोकोंका आधार ईश्वर आगे था, संसारका प्रसिद्ध पति एक है, उसने भूमि-द्यौ धारण किये, उस०

६०५।
आपो वत्सं जनयन्तीर्गर्भमग्रे समैरयन् । तस्योत जायमानस्योल्ब आसीद्धिरण्ययः कस्मै० । ८

संसार-वत्स पैदा करती आपः ने गर्भ आगे ढकेला, और उस पैदा होतेका जरायु तेजोमय था उस ०।८
[ये मन्त्र कुछ भेद से ऋ १०.१२१ और यजु अ. १३, २५, २७ में हैं जहाँसे संस्कारविधि में लिये हैं ।]

सूक्त ३ । इन्द्र । हिंसकों से रक्षा

६०६
उदितस्त्रयोअक्रमन्व्याघ्रःपुरुषो वृकः, हिरुग्घि यन्ति सिन्धवोहिरुग्देवोवनस्पतिर्हिरुङ् नमन्तुशत्रवः।

यहाँसे बाघ-चोर-डाकू-भेड़िया तीनों दूर हों, नदियाँ शान्त बहें, दिव्य वनस्पति और शत्रु शान्त हों । १

६०७।
परेणैतु पथा वृकः परमेणोत तस्करः । परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥ २

भेड़िया-चोर-डाकू दूर हों, दाँतोंवाली रस्सी (साँप-काँतर-गोह) और पापी दूसरे मार्ग से जायँ । २

६०८
अक्ष्यौ च ते मुखं च ते व्याघ्र जम्भयामसि । आत् सर्वान् विंशति नखान् ॥३

हे बाघ ! तेरी आँखों और मुख को और बीसों नाखूनों को हम नष्ट कर दें । ३

६०९
व्याघ्रं दत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि । आदु ष्टेनमथो अहिं यातुधानमथो वृकम् ॥ ४

हम दाँतवालोंमें पहले बाघ को और फिर चोर-डाकू-साँप-कष्टदायक दुष्ट और भेड़ियेको वशमें करें ।

६१०
यो अद्य स्तेन आयति स संपिष्टो अपायति । पथामपध्वंसेनैत्विन्द्रो वज्रेण हन्तु तम् ॥५

जो आज चोर-डाकू आये तो चूर-चूर होकर जाये, यदि खंडहरों में छिपे तो राजा उसे वज्र से मारे।५

६११
मूर्णा मृगस्य दन्ता अपिशीर्णा उ पृष्टयः, नम्रुव ते गोधा भवतु नीचायच्छशयुर्मृगः ॥६

हिंसक पशु के दाँत तोड़ दें और पसलियाँ चूर-चूर करदें, गोह और सोता हिंसक पशु वश में हो । ६

६१२

यत्संयमो न वियमो वियमो यन्न संयमः, इन्द्रजाः सोमजा आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम् ।८

आत्मिक ईश्वर-दत्त संयम वियम नहीं, और वियम संयम नहीं; बाघ (दुष्ट) का वशीकरण अथर्वागत है।

सूक्त ४ पूषा, इन्द्र । वाजीकरण; रसायन

६१३

यां त्वा गन्धर्वो अखनद्वरुणाय मृतभ्रजे । तां त्वा वयं खनामस्योषधिं शेपहर्षणीम् ॥ १

वैद्य जिस तुझ शेप-हर्षप्रद औषधि को निर्बल श्रेष्ठ के लिए खोदता है उस तुझे हम खोदते हैं। १

६१४

उदुषा उदु सूर्य उदिदं मामकं वचः । उदेजतु प्रजापतिर्वृषा शुष्मेण वाजिना ॥ २

उषा, सूर्य, यह मेरा कथन; बच, प्रजा-रक्षक वृषा औषधि-वाजीकरण से उत्तेजित करें। २६

[वृषा आखुपर्णी (मूस कन्नी)-वृषमेया-मुस्ता-ऋषभ-ऐन्द्री-दधिपुष्पी-बाना-माष-विदारी-बली-आमला ११ हैं]

६१५

यथा स्म ते विरोहतोऽभितप्तमिवानति । ततस्ते शुष्मवत्तरमियं कृणोत्वोषधिः ॥ ३

तेरा बढ़ता शरीर जैसे प्रदीप्त-सा गति करे ऐसी यह औषधि तेरा शरीर अधिक बलयुक्त करे। ३

६१६

उच्छुष्मौषधीनां सारं ऋषभाणाम् । सं पुंसामिन्द्र वृष्ण्यमस्मिन् धेहि तनूवशिन् ॥४

हे शरीर-वशकर्ता वैद्य! आप पुरुष-बलकारक ऋषभक औषधियों का सार इस (रोगी-शरीर) में दें। ४

६१७

अपां रसः प्रथमजोऽथो वनस्पतीनाम् । उत सोमस्य भ्रातास्युतार्शमसि वृष्ण्यम् ॥५

जल का और वनस्पतियों का जो पहला रस है वह वीर्य-पोषक, वृष्य, और अर्श-नाशक है। ५

६१८

अद्याग्ने अद्य सवितरद्य देवि सरस्वति । अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ॥ ६

हे अग्नि, सूर्य, वेद-विद्या देवी, बृहस्पति (वैद्य और ईश्वर! तुम सदा इसका पस धनुष-समान तानो। ६

६१९

आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि । क्रमस्वर्श इव रोहितमनवग्लायता सदा ॥७

मैं (वैद्य) तेरे पस को धनुषपर चढ़ी डोरीके समान तानता हूं, रोहित पर अर्शवत् अग्लानि होकर बढ़ ।७

६२०

अश्वस्याश्वतरस्याज स्य पेत्वस्य च । अथ ऋषभस्य ये वाजास्तानस्मिन्धेहि तनूवशिन् ॥८

हे शरीर-वश-कर्ता (वैद्य)! घोड़ा-खच्चर-बकरा-मेढा और बैल का बल इस (रोगी) में दे। ८।

ओ३म्

वर्ष १४ अंक २,३

वेद-ज्योति

फरवरी मार्च १९९०

उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार

वर्ष १४ अङ्क २-३, माघ(तपः)-फाल्गुन(तपस्य) संवत् २०४६ वि०, फरवरी-मार्च १९९० ई०,
वेद-मानव-सृष्टि-संवत् १ ९६ ०८ ५३ ०९०, दयानन्दाब्द १६५
शुल्क वार्षिक ३०), आजीवन ३००), विदेश में २५ पौंड, ५० डालर
सम्पादक - आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री एम. ए. काव्यतीर्थ, उपाध्यक्ष विश्व वेद परिषद्,
सहायक—विमला शास्त्री, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष ७३५०१
दिल्ली-कार्यालय— श्री सञ्जयकुमार, मन्त्री, बी ६ हिल व्यू, वसन्त विहार, नयी दिल्ली दूरभाष ६०१४५२
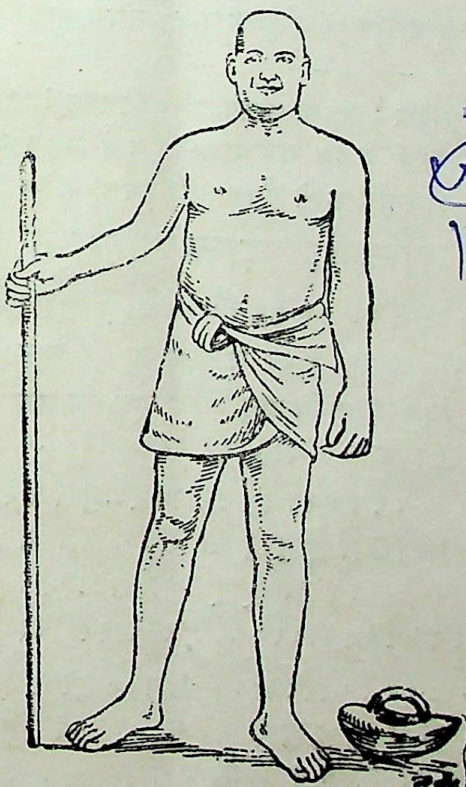
शिवरात्रि महर्षि दयानन्द-बोधदिवस
फाल्गुन कृष्ण १३ सं. २०४६ वि.
२३ फरवरी १९९० ई०

सत्यार्थप्रकाश-मन्त्र-व्याख्या

क्रमांक ५२-५३. ऋषि शिवसंकल्प, देवता मन, छन्द त्रिष्टुप्, स्वर धैवत, विषय मनो-विज्ञान

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।

हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ (यजु. ३४.६

हे सर्वनियन्ता ईश्वर ! जो मेरा मन रस्सी से घोड़ों के समान अथवा घोड़ों के नियन्ता सारथी के तुल्य मनुष्यों को इधर उधर घुमाता है, जो हृदय में प्रतिष्ठित गतिमान् और अत्यन्त वेगवान् है; वह मेरा मन सब इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोकके धर्मपथ में सदा चलाया करे, ऐसी कृपा मुझपर कीजिए।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ (यजु० ४०.१६)

हे सुख के दाता, स्वप्रकाशस्वरूप, सबको जाननेवाले परमात्मन् ! आप हमको श्रेष्ठमार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञानों को प्राप्त कराइये और जो हममें कुटिल पापाचरण-रूप मार्ग है, उससे पृथक् कीजिए, इसीलिए हम लोग नम्रतापूर्वक आपकी बहुत-सी स्तुति करते हैं कि आप हमको पवित्र करें। (समुल्लास ७

वैदिक दैनन्दिनी माघ, फाल्गुन, चैत्र २०४६ विक्रम

तिथिमा.कृ१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ ३०शुक्ल१ २ ३ ४ ५ ६७ ८ ९ १० १२ १३ १४ १५पू
वार शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु
नक्षत्र पु श्ले म पूफा उफा ह चि स्वा स्वा वि अनु ज्ये मू पूअ उअ श्र ध श पूभा उभा रे अ भ कृ रो मृ आ पु श्ले
दि. ज १२ १३ १४ १५१६११७८१९२०२१२२२३ २४२५ २६ २७ २८ २९३०३१फ१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९

ति.फा.कृ १ २ ३ ४ ५ ६ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ ३०.शु १ २ ३ ४ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५पू
वार श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र
नक्षत्र म पू पूउ ह चि स्वा वि अनु ज्ये मू पूउ श्र ध श श शेउ रे अ भ कृ रो मृ आ पुन पु श्ले म पू
दि.१० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८१९२० २१२२२३२४२५ २६ २७ २८मा.१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११

चैत्रकृ.१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० १० ११ १३ १४ ३० नववर्ष शु१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ११ १२ १३ १४ १४ १५पू
वार सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं
नक्षत्र उ ह चि स्वा वि अनु ज्ये ज्ये म पू [illegible] श्र ध श पू उ अ भ कृ रो मृ आ पुन पु श्ले म पू उ ह चि
दि.१२ १३ १४ १५.१६ १७ १८१९२०२१२२ २३२४२५ २६ २७२८२९३०३१अ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०

६२१।
सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत्, तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि ॥

सहस्रशृङ्गऋषभ जो समुद्र से निकलता है उस बलशाली के द्वारा हम जनों को सुलाया करें। १

६२२
न भूमिं वातो अतिवाति नाति पश्यति कश्चन, स्त्रियश्च सर्वाः स्वापय शुनश्चेन्द्रसखा चरन्।

वायु भूमि पर अति तेज न चले, कोई अति न देखे, सब स्त्रियों-कुत्तों को सुलादो, इन्द्रसखा प्राण चले।

६२३
प्रोष्ठेशयास्तल्पेशया नारीर्या वह्यशीवरीः, स्त्रियो याः पुण्यगन्धयस्ताः सर्वाः स्वापयामसि।

मुख-पीठ-पैरों की नाड़ियों, ज्ञानेन्द्रियों को और जो पुण्यगन्धा स्त्रियाँ हैं उन सबको सुलादें। ३

६२४।
एजदेजदजग्रभं चक्षुः प्राणमजग्रभम्। अङ्गान्यजग्रभं सर्वा रात्रीणामतिशर्वरे ॥ ४

रात का पहला भाग बीतने पर में आँख-प्राण और सब गतिशील अङ्ग अपने अन्दर ले लेता हूं। ४

६२५
य आस्ते यश्चरति यश्च तिष्ठन्विपश्यति; तेषां सं दध्मो अक्षीणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥५

जो बैठा है(कान), जो चलता है(मन), जो ठहर कर देखता है(नेत्र), उनकी शक्तियाँ हम ले लेते हैं जैसे कि यह शरीर कोई हरम महल हो। ५

६२६।
स्वप्तु माता स्वप्तु पिता स्वप्तु श्वा स्वप्तु विश्पतिः, स्वपन्त्वस्यै ज्ञातयः स्वप्त्वयमभितो जनः॥

माता-पिता-कुत्ता-प्रजापति(बुद्धि:ज्ञान-इन्द्रियां-मन) इनके सम्बन्धी और प्रजाजन सोयें। ६

६२७
स्वप्न स्वप्नाभिकरणेन सर्वं नि ष्वापया जनम्।

ओत्सूर्यमन्यान्त्स्वापयाव्युषं जागृतादहमिन्द्र इवारिष्टो अक्षितः ॥ ७

हे स्वप्न! नींदको लक्ष्य कर सबको सूर्योदय तक सुला, उषा में मैं इन्द्रवत् नीरोग अक्षय जागूं ७।

काण्ड ४ प्रपाठक सात, अनुवाक २ (सूक्त ६-१०)

महर्षि दयानन्द के अनुसार विषय— वरणा-प्रकरणौषधि-विष-भाषण-ईश्वरादि पदार्थविद्या

सूक्त ६। विष, वनस्पति

६२८
ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः। स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम् ॥१

६२८. दस औषधों का शीर्ष(मुख्य), दस रोग नाशक ब्राह्मण(ब्रह्मशक्ति-प्रद बराहीकन्द और गृष्टि) पहले हुआ, उसने सोम(वीर्य)की रक्षा की और विष को प्रभाव-हीन कर दिया।१

६२९
यावतीद्यावापृथिवी वरिम्णा यावत्सप्तसिन्धवोवितष्ठिरे,वाचंविषस्यदूषणींतामितोनिरवादिषम्,

जितने विस्तार से द्यौ-भूमि तथा ७ समुद्र फैले हैं उतनी दूर तक विष-नाशक वाणी बोलता हूँ । २

६३०
सुपर्णस्त्वा गरुत्मान् विष प्रथममावयत् । नामीमदो नारूरुप उतास्मा अभवः पितुः ॥३

हे विष ! गरुड़ तुझे पहले खाता है, मूर्छा-मद नहीं होते ; इसका तू अन्न बन जाता है । ३

६३१
यस्त आस्यत् पञ्चाङ्गुरिर्वक्राच्चिदधि धन्वनः । अपस्कम्भस्य शल्यान्निरवोचमहं विषम्।

जो ५ अँगुलियों से कसे टेढ़ धनुष से तीर की नोक से तुझ पर विष फेंके तो उसे अपस्कम्भ (लोध-क्रमुक औषधों) के कांटेदार पत्तों से निकालना बताता हूं । ४

६३२
शल्याद्विषं निरबोचं प्राञ्जनादुत पर्णधेः । अपाष्ठाच्छृङ्गात् कुल्मलान्निरवोचमहं विषम् ।५

बाण-टूटे सींग-विषैले लेप-सरकंडे से सेही के काँटे-लोध के लेप-अजशृङ्गी-कुल्मल-पद्म नामक औषधि के द्वारा विष निकालना बताता हूं । ५

६३३
अरसस्त इषो शल्योऽथो ते अरसं विषम् । उतारसस्य वृक्षस्य धनुष्टे अरसारसम् ॥ ६

हे बाण ! तेरा शल्य और विष तथा निर्बल वृक्ष का बना धनुष भी बेकार होजाये । ६

६३४
ये अपीषन्ये अदिहन्य आस्यन् ये अवासृजन् । सर्वे ते वध्रयः कृता वध्रिर्विषगिरिः कृतः ॥

विष को जो पीसें, तेरें, फेंकें वे बाँधे जायें और विष(संखिया)का पहाड़ निषिद्ध हो । ७

६३५।
वध्रयस्ते खनितारो वध्रिस्त्वमस्योषधे । वध्रिः स पर्वतो गिरिर्यतो जातमिदं विषम् ॥ ८

हे दाहक (विष) ! तेरे खोदनेवाले और तू बन्द हों, वह पहाड़ बन्द हो जहाँ तू निकलता है । ८

सूक्त-७, विष-चिकित्सा

६३६
वारिदं वारयातै वरणावत्यामधि । तत्रामृतस्यासिक्तं तेना ते वारये विषम् ॥१

— वरुण(वरा)नामक[पाठा, वन्ध्या, कर्कोटकी, विडङ्ग, हल्दी, काकमाची, काकजंघा, चूड़ामणि तथा अरणी] औषधियों से जल और वरा (शुद्ध गीली मिट्टी) में अमृत[विष-बिनाशक]रस भरा रहता है उससे तेरा विष दूर करता हूँ ।१

६३७
अरसं प्राच्यं विषमरसं यदुदीच्यम् । अथेदमधराच्यं करम्भेण वि कल्पते ॥ २

६३७ करम्भऔषधि और दही सत्तू से प्राच्य[ऊपर सिर की ओर फैलनेवाला], उदीच्य[मध्यम]और अधराच्यन्यून [नीचे की ओर पैरों तक फैलने वाला] प्रभावहीन किया जाता है। २

६३८

करम्भं कृत्वा तिर्यं पीबस्पाकमुदारथिम्। क्षुधा किल त्वा दुष्टनो जक्षिवान्त्स न रूरुपः ।३

चावल का बनाया करम्भ[सत्तू, हलुवा, खीर, दलिया] मेद बढ़ाने वाला, शरीरपोषक है उसे यदि खा लिया जाये तो मनुष्य विष से दूषित नहीं होता । ३

६३९

वि ते मदं मदावति शरमिव पातयामसि। प्र त्वा चरुमिव येषन्तं वचसा स्थापयामसि ।।४

हे मदकारी विष! तेरे मद को हम बाण के समान दूर फेंक दें । गुप्तचर के समान इधर उधर जानेवाले तुझे हम अपनी वाणी के प्रभाव और बच आदि औषधियों से दूर कर दें । ४

६४०

परि ग्राममिवाचितं वचसा स्थापयामसि। तिष्ठा वृक्ष इव स्थाम्न्यभ्रिखाते न रूरुपः ।। ५

-ग्राम के समान फैले हुए विष को हम बच से रोक दें। कुदाल से खोदे हुए गड्ढे में वृक्ष के समान विष एक स्थान पर ही नष्ट हो जाये । ५

६४१

पवस्तैस्त्वा पर्यक्रीणन् दूर्शेभिरजिनैरुत । प्रक्रीरसि त्वमोषधेऽभ्रिखाते न रूरुपः ।। ६

हे ओषधि, तू प्रक्री नामक[करज – उदकीर्य-अङ्गारवल्ली -गुच्छकरंज – रीठाकरंज, ५ प्रकार की हैं जो कुदाल से खोदी जाती हैं। इनसे विष खाने वाला मूर्छित नहीं होता। इसे पवास्तों (वस्त्रों या छालों) दूर्शों [मृगछालाओं] से क्रय किया जाता है अतः इसका नाम 'प्रक्री' है। ६

६४२

अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे, वीरान् नो अत्र मा दभन् तद् वएतत् पुरोदधे।

जो कम जानने वाले विष का प्रथम उपचार करते हैं वे यहाँ हमारे वीरों को कष्ट न पहुचावें यह उपदेश मैं तुम्हारे सामने रखता हूँ । ७

सूक्त—८ [राजा द्वारा राजसूय यज्ञ]

६४३

भूतो भूतेषु पय आ दधाति स भूतानामधिपतिर्बभूव ।

तस्य मृत्युश्चरति राजसूयं स राजा राज्यमनु मन्यतामिदम् ।। १

६४३ अर्थ— जो प्राणी अन्य प्राणियों में अपना पराक्रम स्थापित करता है वह प्राणियों का रक्षक स्वामी होता है। उसका मृत्यु दण्ड देने का अधिकार राजसूय यज्ञ रचता है । वह प्रदीप्त, प्रकृति-रंजक मनुष्य इस राज्य को स्वीकार करे । १

६४४
अभि प्रेहि माप वेन उग्रश्चेत्ता सपत्नहा आ तिष्ठ मित्रवर्धन तुभ्यं देवा अधिब्रुवन् ॥

आप पुण्यासन पर बैठिये, अपनी शोभा न बिगाड़िये। उग्र, विद्वान्, शत्रुओं विजेता बनकर रहिये। हे मित्रों के बढ़ाने वाले ! आपके लिए विद्वान् मान्यता दें। २

६४५
आ तिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ् छ्रियं वसानश्चरति स्वरोचिः ।

महत्तद् वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥ ३

सिंहासन पर बैठते हुए उनके सब ओर सब सुशोभित हों, स्वयं प्रकाशित, शोभा धारण करते हुए वह विचरे, उस प्रजा-शत्रु-नाशक का बड़ा नाम होता है जो विश्वरूप होकर यश पाता है। ३

६४६
व्याघ्रो अधिवैयाघ्रे विक्रमस्वदिशो महीः, विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ।

बाघों, तत्स्वभाव मनुष्यों पर बाघ हो बड़ी दिशामें आक्रमण कर, सब आप्त दिव्य धनी प्रजा तुझे चाहें।

६४७ या आपो दिव्याः पयसा मदन्त्यन्तरिक्ष उत वा पृथिव्याम् ।

तासां त्वा सर्वासामपामभि षिञ्चामि वर्चसा ॥५

जो दिव्य जल अन्तरिक्ष-भूमि पर प्रसन्न करते हैं मैं उनके तेज से सींचकर तुझे शासक बनाता हूं। ५

६४८
अभि त्वा वर्चसासिचन्नापो दिव्याः पयस्वतीः, यथासो मित्रवर्धनस्तथा त्वा सविता करत्

दिव्य सम्पन्न प्रजा तुझे तेज-सम्पन्न करें जिससे तू मित्र-बढ़ाने वाला हो, ऐसा ही तुझे ईश्वर बनाये। ६

६४९
एना व्याघ्रं परिषस्वजानाः सिंहं हिन्वन्ति महते सौभगाय ।

समुद्रं न सुभुवस्तस्थिवांसं मर्मृज्यन्ते द्वीपिनमप्स्वन्तः ॥ ७

ये व्याघ्र-सिंहवत् शासकका आश्रय लेकर बड़े सौभाग्यकी प्रेरणा देतीहैं जैसे सुभूमि जलस्थ द्वीपी समुद्रका।

६५०
एहि जीवं त्रायमाणं पर्वतस्यास्यक्ष्यम्। विश्वेभिर्देवैर्दत्तं परिधिर्जीवनाय कम् ॥ १

(हे आञ्जन!) पास आ तू पहाड़ की आँख है, सब देवों से प्रदत्त, सुखी जीवन—रक्षक परिधि है। १

६५१
परिपाणं पुरुषाणां परिपाणं गवामसि । अश्वानामर्वतां परिपाणाय तस्थिषे ॥ २

तू पुरुषों, गौओं (पशुओं—इन्द्रियों) की रक्षक है गतिशील अश्वों (घोड़ों-प्राणों) के रक्षार्थ स्थित है। २

६५२
उतासि परिपाणं यातुजम्भनमांजन, उतामृतस्य त्वं वेत्थाथो असि जीवभोजनमथो हरितभेषजम्।

हे आंजन! तू रक्षक, यातना-नाशक, अमृत-युक्त, जीवों का भोजन और पीलिया की औषधि है। ३

६५३
यस्याञ्जन प्रसर्पस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः। ततो यक्ष्मं विबाधस उग्रो मध्यमशीरिव॥ ४

हे आंजन! तू जिसके अङ्ग-अङ्ग पोरुए-पोरुए में फैलती है वहाँ से रोग हटाती है जैसे बिजली मेघ को। ४

६५४
नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभिशोचनम्। नैनं विष्कन्धमश्नुते यस्त्वा बिभर्त्याञ्जन ॥५

हे आंजन! जो तुझे धारण करता है उसे छूत-रोग, घातक क्रिया, निराशा और जकड़न नहीं होते। ५

६५५
असन्मन्त्राद् दुःष्वप्न्याद् दुष्कृताच्छमलादुत, दुर्हार्दश्चक्षुषो घोरात्तस्मान्नः पाह्याञ्जन।६

हे आंजन! तू हमें बुरे विचार, दुःस्वप्न, पाप, हृदय-रोग तथा भयङ्कर चक्षु-रोग से बचा। ६

६५६
इदं विद्वानांजन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम्। सनेयमश्वं गामहमात्मानं तव पूरुष ॥ ७

हे आंजन! यह जानता हुआ सत्य कहता हूं, असत्य नहीं, तेरा सेवक अश्व-गौ-आत्मा को सुखी करता है। ७

६५७
त्रयो दासा आंजनस्य तक्मा बलास आदहिः। वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुन्नाम ते पिता।८

आंजन के ३ दास (नाश्य) हैं— ज्वर—कफ—सर्प, पहाड़ों में सबसे बड़ा त्रिककुत् नामक तेरा पिता है। ८

६५८
यदांजनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि। यातूंश्च सर्वाञ्जम्भयत् सर्वाश्च यातुधान्यः॥ ९

जो आंजन हिमालय के त्रिककुद् पर होता है वह सब कष्ट—दायक नर—स्त्री—कृमियों को नष्ट करता है। ९

६५९
यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे। उभे ते भद्रे नाम्नी ताभ्यां नः पाह्यांजन॥ १०

हे आंजन! चाहे त्रैककुद हो चाहे यमुनोत्री में पैदा हो, तेरे दो (सौवीर-स्रोत) भद्र नाम हैं उनसे रक्षा कर।१०

सूक्त १० । शंख मणि [अध्यात्म में ब्रह्म]

६६०।
वाताज्जातो अन्तरिक्षाद्विद्युतो ज्योतिषस्परि, स नो हिरण्यजाः शंखः कृशनः पात्वंहसः ।।

वायु-अन्तरिक्षबिजली सूर्य-सुवर्ण से उत्पन्न शंख मणि हमें रोग-पीडा से बचाये । १

६६१।
यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे । शखेन हत्वा रक्षांस्यत्रिणो वि षहामहे ।। २

जो समुद्रसे चमकीले पदार्थोंमें पहले पैदा हुआ उस शंखसे राक्षस मांस-भक्षी कृमि मारकर नष्ट करें ।

६६२
शंखेनामीवाममतिं शंखेनोत सदान्वाः । शंखो नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः ।।३

शंख-मोती से रोग-दुर्मति-दरिद्रता हटानेवाली वेदनाओं को दूर करें, यह सारी दवा हमें रोगसे बचाये ।

६६३
दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्याभृतः । स नो हिरण्यजाः शंख आयुष्प्रतरणो मणिः ।। ४

द्यौ में उत्पन्न सूर्यवत्, चमकता, समुद्र से लाया, तेजोमय शंख मणि मोती हमें आयु देनेवाला हो । ४

६६४
समुद्राज्जातो मणिर्वृत्राज्जातो दिवाकरः । सोअस्मान्त्सर्वतः पातु हेत्या देवासुरेभ्यः ।।

समुद्रोत्पन्न शंखमणि मेघसे प्रकट हुए सूर्यके समान है, वह हमें सब प्रकारसे हिंसा, देव-शत्रुओं से बचाये

६६५
हिरण्यानामेकोऽसि सोमात् त्वमधि जज्ञिषे ।

रथे त्वमसि दर्शत इषुधौ रोचनस्त्वं प्र ण आयूंषि तारिषत् ।। ६

(हे मोती !) तू सोना आदि में से एक, सोम से उत्पन्न, रथमें दर्शनीय, तूणीर में चमकनेवाला है, तू हमारा आयुओं को आगे बढ़ा । ६

६६६
देवानामस्थि कृशनं बभूव तदात्मन्वच्चरत्यप्स्वन्तः । तत् ते बध्नाम्यायुषे

वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय कार्शनस्त्वाभि रक्षतु ।।७

शंख-मोती दिव्य शक्तियों की हड्डी है, शक्तिशाली वह जल के अन्दर चलता है, उसे मैं (वैद्य) तुझे आयु-तेज-बल-दीर्घ जीवन-शतवर्ष-यापन के लिए धारण कराऊँ, यह तेरी रक्षा करे । ७

अनुवाक ३, सूक्त ११ से १५ तक

महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनुसार विषय— ईश्वरादि पदार्थविद्या

सूक्त ११ । अनड्वान् [ईश्वर]

६६७-६८. अनड्वान् दाधार पृथिवीमुत द्यामनड्वान् दाधारोर्वन्तरिक्षम् । अनड्वान् दाधार प्रदिशः षड्उर्वीरनड्वान्विश्वं भुवनमाविवेश ॥ १ अनड्वानिन्द्रः स पशुभ्यो विचष्टे त्रयाञ्छक्रो विमिमीते अध्वनः । भूतं भविष्यद् भुवना दुहानः सर्वा देवानां चरति व्रतानि ॥

अनड्वान्(ईश्वर)पृथ्वी-द्यौ-बड़े अन्तरिक्ष-६बड़ी दिशाओंको धारण करताहै, वह सब भुवनमें प्रविष्ट है।
अनड्वान्(जगद्-धारक)ईश्वर जीव को देखता है, शक्तिशाली वह तीनों लोकों का निर्माण करता है, भूत-भविष्यद् के भुवन पूर्ण करता हुआ वही सब देवों का काम सिद्ध करता है। २

६६९-७०। इन्द्रो जातो मनुष्येष्वन्तर्घर्मस्तप्तश्चरति शोशुचानः । सुप्रजाः सन्त्स उदारे न सर्षद् यो नाश्नीयादनडुहो विजानन् ॥ ३ अनड्वान् दुहे सुकृतस्य लोक ऐनं प्यायति पवमानः पुरस्तात् । पर्जन्यो धारा मरुत ऊधो अस्य यज्ञः पयो दक्षिणा दोहो अस्य ॥ ४

परमात्मा मनुष्यों के अन्तःकरण में प्रकट होता है, दीप्त सूर्य के समान देदीप्यमान होकर सर्वव्यापक है, यह जानता हुआ जो विषय-भोग नहीं करता वह उत्तम-प्रजा-युक्त होकर मरने पर नहीं भटकता। ३
परमात्मा पुण्य-लोक में फल देता है, शोधक होकर इसे तृप्त करता है, मेघ इसकी धारक-शक्ति हैं, वायु वहन-शक्ति, जल-दूध यज्ञ, अन्न दक्षिणा है। [वर्षा-यज्ञके रूपकालंकार का कथन छान्दोग्य ५-६ में है]

६७१-७२। यस्य नेशे यज्ञपतिर्न यज्ञो नास्य दातेशे न प्रतिग्रहीता । यो विश्वजिद्विश्वभृद्विश्वकर्मा घर्मं नो ब्रूत यतमश्चतुष्पात् । ५ । येन देवाः स्वरारुरुहुर्हित्वा शरीरममृतस्य नाभिम् । तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं घर्मस्य व्रतेन तपसा यशस्यवः ॥ ६

जिसे न यजमान वशमें कर सकते न यज्ञ, न दाता न गृहीता, जो संसार का विजेता-भर्ता-निर्माता है उस दीप्त ब्रह्म को बताओ जो ४ पैर का (४ दिशाओं में स्थित) है। ५ [छान्दोग्य में उपकोशल का कथन] जिससे विद्वान् शरीर छोड़ अमृत-केन्द्र मोक्ष पातेहैं उसी ईशसे सूर्य-नियम, नपसे यशस्वी पुण्यलोक पाऊँ।६

६७३ इन्द्रो रूपेणाग्निर्वहेन प्रजापतिः परमेष्ठी विराट् । विश्वानरे अक्रमत

वैश्वानरे अक्रमतानडुह्यक्रमत । सोऽदृंहयत सोऽधारयत् ॥ ७

स्वरूप से बिजली, सामर्थ्य से अग्नि तुल्य प्रजापति आनन्दमय परमात्मा सब शरीरों में, भौतिक अग्नि में, अनड्वान् (बैल और प्रकृति) में पूर्ण है, जिसने भूमि दृढ़ की और धारण की। ७

६७४ मध्यमेतदनडुहो यत्रैष वह आहितः । एतावदस्य प्राचीनं यावान् प्रत्यङ् समाहितः ॥८

यह ईश्वर का मध्य है जहाँ यह भार रक्खा है, उतना ही इसका प्राचीन भूत [illegible]

६७५ यो वेदानडुहो दोहान्त्सप्तानुपदस्वतः । प्रजां च लोकं चाप्नोति तथा सप्तऋषयो विदुः ॥ ९

जो अनड्वान्के अक्षय ७ दोहन[हुत-प्रहुत अन्न-दुग्ध-मन-वाणी-प्राण(द्र. बृहदारण्यक १.५)] जानता है वह प्रजा और पुण्यलोक पाताहै जैसा ७ ऋषि(२नेत्र-२कान-२घ्राण-१मुख)जानते हैं।९

६७६ पद्भिः सेदिमवक्रामन्निरां जङ्घाभिरुत्खिदन्, श्रमेणानड्वान्कीलालं कीनाशश्चाभिगच्छतः

पैरों से इस लोक को पार करता हुआ, जाँघों से मोक्ष-भूमि खोदता हुआ, मोक्ष-अन्न पैदा करता हुआ ईश्वर-बैल और जीव-किसान एक-दूसरे के पीछे चलते हैं।१०

६७७। द्वादश वा एता रात्रीर्व्रत्या आहुः प्रजापतेः । तत्रोप ब्रह्म यो वेद तद्वा अनडुहो व्रतम् ॥११

प्रजा-रक्षक सूर्य की १२ रातें (दिन-मास-वर्ष) उत्तम कर्म करने योग्य हैं उनमें जो ब्रह्म-ज्ञान पाता है वही अनड्वान्का व्रत है।(जैसे द्वादशाह यज्ञ, १२मास का प्रजापति-यज्ञ, १-१ वेदके लिए १२-१२ वर्ष)११

६७८ दुहे सायं दुहे प्रातः दुहे मध्यंदिनम्परि । दोहा ये अस्य संयन्ति तान्विद्मानुपदस्वतः ॥१२

मैं सायं-प्रातः-मध्याह्न परमात्म-रस दुहूं, इसे दुहनेवाले को हम अविनाशी(मुक्त)समझें। १२ ❀❀❀

सूक्त १२, रोहणी औषधि

रोहण्यसि रोहण्यस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी । रोहयेदमरुन्धति ॥ १

हे रोहणि! तू टूटी हड्डी और कटे को जोड़ने वाली है, हे घाव भरनेवाली! तू इस घाव को भर। १

६८०। यत्ते रिष्टं यत्ते द्युत्तमस्ति पेष्ट्रं त आत्मनि। धाता तद् भद्रया पुनः सं दधत्परुषा परुः॥ २

तेरे शरीर में जो अङ्ग चोट लगा या जला या कुचला हो, उसे वैद्य 'भद्रा' से पोरु से पोरु मिला दे। २

६८१। सं ते मज्जा मज्ज्ञा भवतु समु ते परुषा परुः। सं ते मांसस्य विस्रस्तं समस्थ्यपि रोहतु॥३

तेरी मज्जा मज्जा से, जोड़ जोड़ से मिल जाये, कटा मांस और हड्डी भी मिलकर जुड़ जाये। ३

६८२ मज्जा मज्ज्ञा सं धीयतां चर्मणा चर्म रोहतु। असृक् ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु॥४

मज्जा मज्जा से जुड़े, चमड़ा चमड़े से मिल कर नया पैदा हो, खून-हड्डी ठीक हो, मांस मांस से मिले। ४

६८३ लोम लोम्ना सं कल्पया त्वचा सं कल्पया त्वचम्, असृक्ते अस्थि रोहतु छिन्नं सं धेह्योषधे॥५

रोम रोम से खाल खाल से मिला, तेरा खून-हड्डी बढ़े, हे औषधि! तू कटे को जोड़ दे। ५

६८४ स उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रव रथः सुचक्रः सुपविः सुनाभिः। प्रति तिष्ठोर्ध्वः॥ ६

वह ठीक उठे, चले, अच्छे प्रकार दौड़े, शरीर-रथ सुन्दर चक्र-पट्टी-केन्द्र युक्त हो, ऊपर उठ।

६८५। यदि कर्तं पतित्वा संशश्रे यदि वाश्मा प्रहृतो जघान, ऋभू रथस्येवाङ्गानि संदधत्परुषा परुः॥ ७

यदि छुरी या पत्थर लगकर काटदे तो ऋभु (सर्जन) वैसे ही पोरु से पोरु जोड़े जैसे शिल्पी रथाङ्गों को ।७

सूक्त १३। आत्मा। प्राणायाम, सङ्कल्प, अभिमर्शन

६८६ उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः। उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः॥ १

हे विद्वानो! तुम सबको सावधान और फिर उन्नत करो, और अपराधी को भी फिर जीवन दो। १

६८७ द्वाविमौ वातौ वात आसिन्धोरा परावतः। दक्षं ते अन्य आवातु व्यन्यो वातु यद्रपः॥ २

ये दो वायुएँ चलती हैं- हृदय-सिन्धु तक (प्राण, आक्सीजन), और बाहर को (अपान, कार्बन), एक प्राण (प्राणायाम से) तुझे बल दे, और दूसरी अपान रक्त के दूषित अंश को बाहर कर दे। २

६८८। आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः। त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे॥ ३

हे प्राण! तू दवा होकर चल; हे अपान! तू मल दूर कर, हे विश्वकी औषधि! तू देवोंका दूत होकर चल।

६८६।
त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः। त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ॥४

इस मनुष्य की देव, दस प्राण, ५ भूत रक्षा करें जिससे यह नीरोग हो जाय ४।

६९०।
आ त्वा गमं शन्तातिभिरथो अरिष्टतातिभिः। दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते।५

मैं (वैद्य) शान्ति-दायक रोग-नाशक उपायोंके साथ, तेरे पास आऊँ, उग्र बल भरूँ, तेरा रोग दूर करूँ।५

६९१
अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः। अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥६

यह मेरा एक हाथ ऐश्वर्य युक्त है, दूसरा उस से भी अधिक, यह विश्व-भेषज, कल्याण कर स्पर्शवाला है।

६९२
हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचःपुरोगवी, अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभिमृशामसि

दस उँगलीके दो हाथोंसे आगे जीभ वाणी लेजानेवाली है उन नीरोगों से हम तेरा अभिमर्शन करते हैं।७

सूक्त । अग्नि

६९३।
अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात् सो अपश्यज्जनितारमग्रे।

तेन देवा देवतामग्र आयन् तेन रोहान् रुरुहुर्मेध्यासः ॥ १

गतियुक्त जीव ईश्वर के तेज से पैदा होकर जनक को आगे देखता है, उससे विद्वान् पहले देवता बनते हैं और उसी विधि मेधावी बनकर ऊँचे पदों तथा लोकों पर आरूढ़ होते हैं। १

६९४
क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यान् हस्तेषु बिभ्रतः, दिवस्पृष्ठं स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम् ॥ २

मोक्षके मुख्य साधन हाथोंमें लेकर ईशके साथ बढ़ो, द्यौ के पीछे सुख पाकर मुक्तों के साथ मिलो।२

६९५।
पृष्ठात्पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम्; दिवो नाकस्य पृष्ठात्स्वर्ज्योतिरगामहम्

मैं पृथ्वीकी पीठ (विक्षिप्त चित्तभूमि) से अन्तरिक्ष (सम्प्रज्ञात समाधि) पर चढ़ूँ, वहाँ से द्यौ (असम्प्रज्ञात) पर, द्यौ के सुखमय पृष्ठ से मैं (योगी वैज्ञानिक) आनन्दमय ज्योति (परमात्मा के कैवल्य पद) को पहुँचूँ। ३

६९६
स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी, यज्ञं य विश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे ॥ ४

मोक्षगामी अपेक्षा नहीं करते, पृथ्वी-अन्तरिक्ष-द्यौ पर चढ़ते हैं, वे सुविद्वान् विश्वतोधार यज्ञ करते हैं ।

६९७-९८

अग्ने प्रेहि प्रथमो देवतानां चक्षुर्देवानामुत मानुषाणाम् । इयक्षमाणा भृगुभिः

सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ।। ५ अजमनज्म पयसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं

पयसं बृहन्तम् । तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ।। ६

हे ईश! आप देवोंमें प्रथम हैं आत्मा में प्रकट देवों- मनुष्यों के पथ प्रदर्शक हैं, पाप भून देने ४
वालों के साथ यज्ञकर्ता प्रीति के साथ सुख पायें, यजमान का कल्याण हो । ५
मैं दिव्य सुकर्मी महान् पोषक अज जीव को ज्ञान-स्नेह-युक्त करता हूं, उससे हम उत्तम आनन्दमय
स्वर्ग और मोक्ष पहुंचते हुए पुण्य के लोक को प्राप्त हों ।

६९९-७००।

पञ्चौदनं पञ्चभिरङ्गुलिभिर्दर्व्योद्धर पंचधैतमोदनम् । प्राच्यां दिशि शिरो अजस्य धेहि

दक्षिणायां दिशि दक्षिणं धेहि पार्श्वम् ।। ७ प्रतीच्यां दिशि भसदमस्य धेह्युत्तरस्यां दिशयुत्तरं

धेहि पार्श्वम् । ऊर्ध्वायां दिश्यजस्यानूकं धेहि दिशि ध्रुवायां धेहि पाजस्यमन्तरिक्षे

मध्यतो मध्यमस्य ।। ८

५ प्रकार के ओदन (विषय-भोग) वाले; ५ ज्ञानेन्द्रिय-भोग को ५ अँगुलियों (कर्मेन्द्रियों) से अज्ञान-
विदारक योग-दर्वी से बाहर निकाल । अन्त्येष्टि में सिर पूर्व में और दाहिना अङ्ग दक्षिण में रहे । ७
इस मृत योगीका पश्चिममें नीचे का भाग, उत्तरमें बायाँ, ऊपर छाती, नीचे पीठ, मध्यमें मध्य रहे । ८

७०१

शृतमजं शृतया प्रोर्णुहि त्वचा सर्वैरङ्गैः सम्भृतं विश्वरूपम् ।

स उत्तिष्ठेतो अभि नाकमुत्तमं पद्भिश्चतुर्भिः प्रति तिष्ठ दिक्षु । ९

सब अङ्गों से संहार को प्राप्त इस अजन्मा नाना-रूप जीव के मरे शरीर को शीर्ण करने वाली अग्नि
रूपी त्वचासे ढँके, यह जीव ४ पदों(धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष)से उत्तम मुक्ति पाकर दिशाओंमें यथेच्छ घूमे;

सूक्त १५, पर्जन्य

७०२-३ समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वतीः समभ्राणि वातजूतानि यन्तु। महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ॥१ समीक्षयन्तु तविषाः सुदानवोऽपां रसा ओषधीभिः सचन्ताम्। वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमि पृथग्जायन्तामोषधयो विश्वरूपाः॥

मेघों से घिरी दिशाएँ उमड़ें, वायु-प्रेरित मेघ घिरें, गरजते महान् जल-वर्षक मेघ की जल-धाराएँ भूमि को तृप्त करें। आध्यात्मिक अर्थ— धर्म-मेघों से घिरी चित्त-भूमिको ब्रह्मानन्द-धाराएँ तृप्त करें।१ महान् मेघ जल बरसाएँ, जलका रस औषधियोंसे मिले, वर्षाप्रवाह भूमि शोभित करे, औषधियाँ पैदा हों २

७०४। समीक्षयस्व गायतो नभांस्यपां वेगासः पृथगुद्विजन्ताम्। वर्षस्य...जायन्ता वीरुधो०(पूर्ववत्)।३

गाते हुए मेघों को देख, जलके वेग बहें, धाराएँ भूमि शोभित करें, विविध औषधियाँ उत्पन्न हों। ३

७०५ गणास्त्वोप गायन्तु मारुताः पर्जन्य घोषिणः पृथक्। सर्गा वर्षस्य वर्षतो वर्षन्तु पृथिवीमनु।४

हे मेघ! मरुतों (वायु-विद्वानों)के घोषी गण तेरा गान करें, वर्षा की बरसती धाराएँ पृथ्वी पर बरसें।४

७०६। उदीरयत मरुतः समुद्रतस्त्वेषो अर्को नभ उत्पातयाथ। महऋब०(प्रथममन्त्रवत्)॥५

मरुतो! समुद्र से ऊपर उठो, सूर्यतेज जलको ऊपर उठाये, वायु-प्रेरित गरजते मेघका जल भूमि तृप्त करे।

७०७ अभि क्रन्द स्तनयार्दयोदधिं भूमिं पर्जन्य पयसा समङ्धि। त्वया सृष्टं बहुलमैतु वर्षमाशारैषी कृशगुरेत्वस्तम्। ६

पर्जन्य! तू गर्ज, समुद्र हिला, जलसे भूमि भर, तुझसे छोड़ा जल नीचे आये, आशायुक्त किसान घर आये।

७०८ सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत। मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु॥ ७

महादानी, अजगर-समान मोटी धाराएँ तुम्हारी रक्षा करें, वायु-प्रेरित मेघ भूमि पर वर्षा करें। ७

[मन्त्र ७-९ के पाद३-४ समान हैं केवल क्रियाएँ क्रमशः वर्षन्तु-संयन्तु-प्रावन्तु भिन्न हैं]

७०९
आशामाशां विद्योततां वाता वान्तु दिशोदिशः । मरुद्‌भिः...संयन्तु ०(पूर्ववत्) ॥ ८

दिशा-दिशा में बिजली चमके; हवाएँ चलें, वायु से चलाये बादल भूमि के अनुकूल उमड़ें । ८

७१०
आपो विद्युदभ्रं वर्षं सं वो ऽवन्तु ...प्रावन्तु ० ॥ ९ (सप्तम मन्त्र के समान)

जल-बिजली-बादल-वर्षा, अजगरवत् मोटे, महादानी जलस्रोत तुम्हारी रक्षा करें, वायु से० (पूर्ववत्) ९

७११-१२
अपामग्निस्तनूभिः संविदानो य ओषधीनामधिपा बभूव । स नो वर्षं वनुतां जात-वेदाः प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि ॥१० प्रजापतिः सलिलादा समुद्रादाप ईरयन्नुद-धिमर्दयाति । प्र प्यायतां वृष्णो अश्वस्य रेतो ऽर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेहि ॥ ११

पानी की बिजली मेघ-मिश्रित होती है वह औषधि-पालक अग्नि हमें वर्षा-अमृत-जल-प्राण दे । १०
प्रजा-पालक सूर्य समुद्र-जल भाप-रूप में फैलाता हुआ जलको क्षुब्ध करता है जिससे व्यापक मेघ-जल बहुत बढ़ जाये और बिजली की कड़क के साथ नीचे आ जाये । ११

७१३
अपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः श्वसन्तु गर्गरा अपां वरुणाव नीचीरपः सृज वदन्तु पृश्निबाहवो मण्डूका इरिणानु ॥ १२

हमारा पालक सूर्य जल निरन्तर सींचता है, गड़गड़ाने वाले जल बहें, वरणीय बादल नीचे जल छोड़ें पीली बाहोंवाले मेंढक तालाबों में बोलने लगें । १२

७१४
संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः, वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥१३।

एक वर्ष तक सोये हुए व्रत का आचरण करने वाले ब्राह्मण और मेंढक मेघ-वाणी सुनकर बोलते हैं । १३
[यह और अगला मन्त्र ऋ.७.१०३.१ में हैं और निरुक्त ९ ६-७ में व्याख्यात हैं]

७१५
उप प्र वद मण्डूकि वर्षमा वद तादुरि । मध्ये ह्रदस्य प्लवस्व विगृह्य चतुरः पदः ॥ १४

हे मण्डूकी और उसकी बच्ची ! तू वर्षा में पास में बोल, तालाब के मध्य में ४ पैर फैला कर तैर
अध्यात्म में — हे चित्तवृत्ति ! तू ईश-गान कर, मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार चारो फैलाकर हृदय में तैर । १४

७१६
खण्डखा३इ खैमखा३इ मध्ये तदुरि । वर्षं वनुध्वं पितरो मरुतां मन इच्छत ॥ १५

खण्डखा-खैमखा-तदुरी तीनों मण्डूक-जातियाँ ताल के बीच में वर्षानन्द लें, हे प्रजा-पालको ! तुम बहने वाली हवाओं को जानो। अध्यात्म में— इडा-पिङ्गला-सुषुम्णा आनन्द-वर्षा में रहें, प्राण बल पायें। १

७१७
महान्तं कोशमुदचाभि षिञ्च सविद्युतं भवतु वातु वातः ।

तन्वतां यज्ञं बहुधा विसृष्टा आनन्दिनीरोषधयो भवन्तु ॥ १६

बड़ा जल-कोश (मेघ) ऊपर उठे, सींचे, बिजली-सहित हो, वायु चले, अनेक प्रकार से बरसीं धाराएँ यज्ञ का विस्तार करें जिससे अन्न और औषधियाँ आनन्द-दायक हों। १६

प्रपाठक सात, अनुवाक ४ (सूक्त १६-२०)

महर्षि दयानन्द के अनुसार विषय— ईश्वर-वरुणोषध-दुष्ट स्वप्न-कृत्यादि-पदार्थ विद्या

सूक्त १६ वरुण (ईश्वर; गुप्तचराधिकारी)

७१८
बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति । यस्तायन् मन्यते चरन्त्सर्वं देवा इदं विदुः ॥ १

इन सबका बड़ा अधिष्ठाता (वरुण) मानो पास से देखता है, जो छिपाकर रहता है देव यह सब जानते हैं। १

७१९-२०
यस्तिष्ठति चरति यश्च वंचति यो निलायं चरति यः प्रताङ्कम् । द्वौ सन्निषद्य यन् मन्त्रयेते

राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः ॥ २ उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ उतासौ द्यौर्बृहती दूरे अन्ता ।

उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः ॥ ३

जो बैठा है, चलता है, ठगता है, छिपकर जाता है, आतंकित करता है, जो दो मिल-बैठ कर मन्त्रणा करते हैं उन सब को तीसरा राजा वरुण (ईश्वर, राजा, न्यायाधीश और गुप्तचर-अधिकारी) जानता है। २

और यह भूमि तथा यह दूर से पास तक बड़ा द्यौ लोक वरुण राजा के हैं, और दोनों समुद्र (ऊपर आकाश नीचे भूमि का और पूर्व-पश्चिम के) उसकी कोखें हैं और वही इस अल्प जल में व्यापक है। ३

७२१-२२. उत यो द्यामतिसर्पात्परस्तान्न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः । दिवस्पशः प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अतिपश्यन्ति भूमिम् ॥४। सर्वं तद्राजा वरुणो विचष्टे यदन्तरा रोदसी यत्परस्तात्। संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी निमिनोति तानि ॥ ५

जो सूर्य-प्रकाश से दूर चला जाय वह भी वरुण-राजा से नहीं बच सकता, इसके सिपाही इस संसार में घूमते हैं जो हजारों आँखों वाले होकर भूमि को दूर तक देखा करते हैं । ४

राजा वरुण वह सब विशेष रूप से देखता है जो द्यौ-पृथ्वी के अन्दर-बाहर है, मनुष्यों के पलकों की झपकें तक इसकी गिनी होती हैं। जैसे जितेन्द्रिय इन्द्रियों को, वैसे ही वह सबको वशमें रखता है। ५

७२३-२४
ये ते पाशा वरुण सप्त सप्त त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रुशन्तः। छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्यवाद्यति तं सृजन्तु ॥६। शतेन पाशैरभि धेहि वरुणैनं मा ते मोच्यनृतवाङ् नृचक्षः। आस्तां जाल्म उदरं स्रंसयित्वा कोश इवाबन्धः परिकृत्यमानः ॥ ७

हे वरुण ! जो तेरे ७-७ पाश (मन-बुद्धि-चित्त-ज्ञान-कर्मेन्द्रिय-शरीर-जगत् के ७ क्षेत्रों में) ३ (सत्त्व-रजस्-तमस्, उत्तम-मध्यम-अधम) प्रकार से बाँधते हैं वे असत्यवादी को बाँधें, सत्यवादी को छोड़ दें । ६

हे मनुष्यों को देखनेवाले वरुण ! तू असत्य-वादी को सौ पाशों से बाँध, वह छूटे नहीं, दुष्ट पेट को बाँधकर, न बँधे कोष के समान कटा हुआ पड़ा रहे । ७

७२५
यः समाम्यो३ वरुणो यो व्याम्यो३ यः संदेश्यो३ वरुणो यो विदेश्यः। यो दैवो वरुणो यश्च मानुषः।

वरुण दो हैं- एक ईश्वर जो समान भाव रखता, व्यापक देव है, दूसरा मनुष्य विशेष भाग-देश का है।

७२६
तैस्त्वा सर्वैरभि ष्यामि पाशैरसावामुष्यायणामुष्याः पुत्र। तानु ते सर्वाननु संदिशामि ॥८

दण्डशैली- अमुक माता-पिता के पुत्र! तुझे उन सब पाशों से बाँधता हूं, उन सबको तुझ पर लगाता हूं। ८

सूक्त १७, अपामार्ग(लटजीरा चिटचिटा औषधि)

७२७
ईशानां त्वा भेषजानामुज्जेष आ रभामहे। चक्रे सहस्रवीर्यं सर्वस्मा ओषधे त्वा ॥ १

हे औषधि! भेषजों की ईश तुझे रोग-जयार्थ बनाते और सबके लिए सहस्रवीर्य(सहस्रपुटी शक्ति को)देते हैं।

७२८
सत्यजितं शपथयावनीं सहमानां पुनःसराम्। सर्वाः समह्व्योषधीरितो नः पारयादिति ॥२

सचमुच रोग जीतनेवाली आक्रोश-नाशक सहनशक्तिवर्धक रेचक सब औषधियाँ मैं एकत्र करूँ जिससे वे हमें यहाँ रोगसे पार लगा दें। २

७२९
या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे। या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ॥३

जो आक्रोशसे शाप दे, मूर्छा-पाप कराये, रस-हरणार्थ शिशु पकड़े वह बीमारी सन्तानको खाजाती है। ऐसी औषधि प्रतिविष बनकर अपने उत्पन्न किये रोग-सन्तान को खा जाये (नष्ट कर दे)। ३

७३०
यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्नीललोहिते। आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुस्तया कृत्याकृतो जहि ॥४

जिस कृत्या(घातक विष-प्रयोग, बम्ब) को कच्चे मिट्टी-पात्र में, नीले-लाल पके पात्र में और कच्चे मांस (रोगी-मांस या फल के गूदे में करते हैं उसे करनेवालों को उसी से मार। ४

७३१
दौष्वप्न्यम्दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः। दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥

हम दुःस्वप्न-स्वप्नदोष; दुःखमय जीवन श्वास, राक्षसों(रोग-क्रिमियों) से उत्पन्न निर्बलता निस्तेजता बुरे नाम वाली बवासीर आदि और दुःखजनक चीत्कार कराने वाले वे सब रोग अपने से दूर करें। ५

७३२
क्षुधामारम्तृष्णामारमगोतामनपत्यताम्। अपामार्ग त्वया वयम्सर्वं तदप मृज्महे ॥ ६

हे अपामार्ग! तेरे द्वारा भूख-प्यास मरना-पित्तदाह-इन्द्रिय-निर्बलता-वन्ध्यात्व आदि दूर करते हैं।

७३३
तृष्णामारम्क्षुधामारमथो अक्षपराजयम्। अपामार्ग ० [पूर्ववत्]

हे अपामार्ग! तेरे द्वारा हम भूख-प्यास न लगने वाले और इन्द्रिय-नाशक सब रोगों को हटाते हैं। ७

७३४
अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद्वशी। तेन ते मृज्म आस्थितमथ त्वमगदश्चर ॥८

हे अपामार्ग! तू अकेला ही रोग-वशीकर्ता है, रोगी! उसी से शरीरस्थ रोग दूर करें, तू नीरोग विचर। ८

सूक्त १८ । अपामार्ग अधिभूत में दोष-शोधक राज

७३५
समं ज्योतिः सूर्येणाह्ना रात्री समावती । कृणोमि सत्यमूतयेऽरसाः सन्तु कृत्वरीः ॥ १

जैसे सूर्य के साथ प्रकाश, दिनके साथ रात है वैसे ही रक्षार्थ सत्य है जिससे नाशक विधियाँ नष्ट हों । १

७३६
यो देवाः कृत्यां कृत्वा हरादविदुषो गृहम् । वत्सो धारुरिव मातरं तं प्रत्यगुप पद्यताम् ॥२

हे विद्वानो! जो कृत्या कर अज्ञ का घर छीने तो कृत्या उसे वैसे ही पहुँचे जैसे दूध-पीता शिशु माँ के पास ।

७३७
अमा कृत्वा पाप्मानं यस्तेनान्यं जिघांसति । अश्मानस्तस्यां दग्धायां बहुलाः फट् करिक्रति॥३

जो पाप(बम)बनाकर उससे अन्यको मारना चाहता है तो उसके जलने पर अनेक पत्थर फट-फट करते हैं ।३

७३८
सहस्रधामन् विशिखान् विग्रीवाञ्छायया त्वम् । प्रति स्म चक्रुषे कृत्यां प्रियां प्रियावते हर ।।४

हे अनन्तकीर्ति शासक ! तू विषम-प्रयोग-कर्ताओं की गरदन-रहित करके सुला दे (मार डाल) , जो जो बदले की भावना से कृत्या करते हैं उन की उस प्यारी को प्यारी वाले तक ही पहुंचा दे । ४

७३९
अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् । यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ।। ५

इस औषधि से मैं उन सब कृत्याओं को नष्ट करूं जिन्हें खेतों-गौओं या पुरुषों पर वे(दुष्ट)करें । ५

७४०
यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् । चकार भद्रमस्मभ्यमात्मने तपनं तु सः ॥६

जिसने किया, कर न सका, पैर-उँगली तोड़ ली उसने हमारे लिए अच्छा किया अपने लिए तो कष्ट ।६

७४१
अपामार्गोऽप मार्ष्टु क्षेत्रियं शपथश्च यः । अपाह यातुधानीरप सर्वा अराय्यः ॥७

अपामार्ग क्षेत्रिय रोग और जो कलह है उसे तथा सब राक्षसियों(रोग-क्रिमि), विपत्तियों को दूर करे ।७

७४२
अपमृज्य यातुधानानप सर्वा अराय्यः । अपामार्ग०[शेष ४.१७,६ के समान] ॥८

हे अपामार्ग! तेरे द्वारा सब राक्षस(क्रिमि-दुष्ट), गरीबी-विपत्तियाँ, वह सब घातक कर्म दूर करें ।८

सूक्त १९ अपामार्ग

७४३
उतो अस्यबन्धुकृदुतो असि नु जामिकृत् । उतो कृत्याकृतः प्रजां नडमिवाच्छिन्धि वार्षिकम् ॥

हे अपामार्ग! तू शत्रु-वंशागत रोग काटने वाला है, कृत्या-कारी के समूह को वर्षा-घास के समान काट।१

७४४
ब्राह्मणेन पर्युक्तासि कण्वेन नार्षदेन, सेनेवैषि त्विषीमती न तत्रभयमस्ति यत्र प्राप्नोष्योषधे।२

ब्राह्मण[illegible] औषधियों के साथ प्रयुक्त तू से[illegible] जाती है, [illegible] को भय नहीं रहता।२

७४५।
अग्रमेष्योषधीनां ज्योतिषेवाभिदीपयन्। उत त्रातासि पाकस्याथो हन्तासि रक्षसः ॥ ३

हे अपामार्ग! ज्योति से प्रकाशित तू औषधियों में श्रेष्ठतम, पाचक, बल-नाशक रोगों का विनाशक है।३

७४६
यददो देवा असुरांस्त्वयाग्रे निरकुर्वत। ततस्त्वमध्योषधे ऽपामार्गो अजायथाः ॥ ४

विद्वान् वैद्य पहले तेरे द्वारा असुरों (प्राण-घातक रोगों) को दूर करते हैं अतः औषधि तू 'अपामार्ग' हुई।

७४७
विभिन्दती शतशाखा विभिन्दन् नाम ते पिता, प्रत्यग्विभिन्धि त्वं तं यो अस्माँ अभिदासति ॥५

तू सौ शाखावाला होकर रोग भेदन-कर्ता है, तेरा प्रयोक्ता रोग-नाशक है, हमारे नाशेच्छु का नाश कर।

७४८
असद् भूम्याः समभवत्तद्यामेति महद्व्यचः। तद्वै ततो विधूपायत् प्रत्यक कर्त्तारमृच्छत् ॥ ६

असत्य भूमि से उत्पन्न होकर फैलकर आकाश तक ऊँचा हो जाय तो भी कर्ता को लौटकर आता है। ६

७४९
प्रत्यङ् हि संबभूविथ प्रतीचीनफलस्त्वम्। सर्वान्मच्छपथाँअधि वरीयो यावया वधम्।७

(हे अपामार्ग !) तू उल्टे फल (पहले दुःख फिर सुख) वाला, रोग-प्रतिकूल प्रयुक्त होता है, तू मेरे सब कटु वचनों और हिंसक रोगों को दूर कर।७

७५०
शतेन मा परिपाहि सहस्रेणाभिरक्ष मा। इन्द्रस्ते वीरुधां पत उग्र ओज्मानमा दधत् ॥ ८

हे वनस्पतियों के स्वामी! तू शत-सहस्र प्रकार से मेरी रक्षा कर, वैद्य तुझे प्रयुक्त कर बल देता है। ८

७५१

आपश्यति प्रतिपश्यति परापश्यति पश्यति । दिवमन्तरिक्षमाद्भूमिं सर्वं तद्देवि पश्यति ॥१

हे देवी! तेरे द्वारा मनुष्य सब ओर दूर तक प्रत्येक वस्तु द्यौ–अन्तरिक्ष–पृथ्वी सब को देखता है। १

७५२

तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीः षट् चेमाः प्रदिशः पृथक्, त्वयाहं सर्वा भूतानि पश्यानि देव्योषधे ॥२

हे देवी औषधि! तेरे द्वारा मैं ३ द्यौ, ३ पृथ्वियाँ और ये ६ अलग दिशाएँ तथा सब भूत देखूँ। २

७५३

दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य हासि कनीनिका, सा भूमिमा रुरोहिथ वह्यं श्रान्ता वधूरिव ॥३

तू उस दिव्य सूर्य की कमनीय शक्ति है, वह तू भूमि पर वैसे ही चढ़ जैसे थकी हुई वधू वाहन पर। ३

७५४

तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत्, तयाहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः ॥ ४

वह सहस्राक्ष देव (बिजली) ने मेरे दाहिने हाथ (अधिकार) में दी उससे मैं मूर्ख-विद्वान् सबको देखूँ। ४

७५५

आविष्कृणुष्व रूपाणि मात्मानमप गूहथाः। अथो सहस्रचक्षो त्वं प्रतिपश्याः किमीदिनः ॥ ५

नाना रूप दिखा, अपनेको मत छिपा, हे सहस्रचक्षु (बिजली, औषधि) तू यह क्या? कहनेवालों को दिखा। ५

७५६

दर्शय मा यातुधानान् दर्शय यातुधान्यः। पिशाचान्त्सर्वान् दर्शयेति त्वा रभ ओषधे ॥ ६

हे औषधि (माइक्रास्कोप)! मुझे यातुधान (क्रिमि-नर-नारियाँ) सब पिशाच (माँसभक्षी) दिखा, तेरा आश्रय है।

७५७

कश्यपस्य चक्षुरसि शुन्याश्च चतुरक्ष्याः। वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्तं मा पिशाचं तिरस्करः ॥ ७

(हे दूरदर्शक!) तू दर्शक और ४ आँख के शुनी (टेलेस्कोप) का चक्षु है, दोपहर में सरकते सूर्य के समान चमकते हुए पिशाच (मांस-भक्षी क्रिमि विषाणु) को मुझसे मत छिपने दे। ७

७५८

उदग्रभं परिपाणाद् यातुधानं किमीदिनम्। तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्यम् ॥ ८

मैं किमीदी (खाऊ) राक्षस (क्रिमि) को स्वरक्षार्थ वश में करूँ, इससे मैं शूद्र-वैश्य सब को देखूँ। ८

७५९

यो अन्तरिक्षेण पतति दिवं यश्चातिसर्पति, भूमिं यो मन्यते नाथं तं पिशाचं प्रदर्शय ॥ ९

जो अन्तरिक्ष के द्वारा गिरता है, द्यौलोक तक लाँघ जाता है, जो भूमि को नाथ मानता है उस पिशाच (रूप में व्यापक उल्का तारे और माँस-भक्षी क्रिमि) को दिखा। ९

प्रपाठक ८ अनवाक ५, सूक्त २१ से २५ तक

महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनुसार विषय— इन्द्र-युद्ध-राजेन्द्रोत्तम-सखीश्वरादि पदार्थविद्या

सूक्त २१ । गौ

७६०-६१।

आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन् सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे । प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥१ इन्द्रो यज्वने गृणते च शिक्षत उपेद्ददाति न स्वं मुषायति । भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम् ॥२

गौएँ आएँ कल्याण करेँ गोठमें रहें हमें सुखदें, बच्चोंवाली, अनेकरूप, इन्द्रके लिए बहुत उषाओं तक दूध दें। इन्द्र याज्ञिक स्तोताको शिक्षा-धन देताहै, चुराता नहीं, इस भक्तका ऐश्वर्य अधिक बढ़ा, अटूट लाभमें रखताहै

७६२-६३

न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति । देवाँश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह ॥३ न ता अर्वा रेणुककाटोऽश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि । उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य विचरन्ति यज्वनः ॥४

वे नष्ट न हों, चोर न चुराये, इनका शत्रु रोग न दबाये, गौपति जिनसे देवयज्ञ करता और दान देता है उनके साथ बहुत काल रहे।(३) उन्हें हिंसक, धूल उछालनेवाला लकड़बग्घा न खासके, न वे मांसभक्षक केपास पहुँचें; प्रत्युत उस याज्ञिक जन की विशाल शरण में अभय रहें।

७६४-६५

गावो भगो गाव इन्द्रो म इच्छाद् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः । इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामि हृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥५ यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम् । भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ॥६

गौएँ भाग्य हैं, वे मुझे परमात्माने दी हैं, सबसे पहले सौम्य दुग्ध-भोजन देती हैं; हे जनो! इन्हें वह इन्द्र होता है जिसे मैं हृदय-मन से चाहता हूं।(५) हे गौओ ! तुम दुर्बल को भी बली, कुरूप को सुन्दर बनाती हो अच्छी वाणी वाली गौओ ! मेरा घर अच्छा करो, तुम्हारी प्रशंसा सभाओं में की जाती है। ६

७६६

प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः।
मा व स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ॥

बच्चोंवाली, सुन्दर चरागाह में चरती, अच्छे जल-स्थान में शुद्ध जल पीती हुई तुम्हें चोर न चुराये पापी मालिक न हो, रुद्र (रुलानेवाले) का शस्त्र तुमपर न गिरे। ७

सूक्त २२, इन्द्र। ईश्वर, राजा, बिजली

इममिन्द्र वर्धय क्षत्रियं म इमं विशामेकवृषं कृणु त्वम्। निरमित्रानक्ष्णुह्यस्य सर्वांस्तान् रन्धयास्मा अहमुत्तरेषु। १। एमं भज ग्रामे अश्वेषु गोषु निष्टं भज यो अमित्रो अस्य। वर्ष्म क्षत्राणामयमस्तु राजेन्द्र शत्रुं रन्धय सर्वमस्मै ॥ २

हे इन्द्र (सेनापति)! मेरे इस क्षात्र (विपत्ति-रक्षक) शासन को तू बढ़ा, प्रजा में एक श्रेष्ठ सभापति बना, इसके सब शत्रु प्रभाव-हीन कर, 'मैं बड़ा' कहने वालों में एक श्रेष्ठ ही चुनकर अन्यों को निरस्त कर। १
इन्द्र! इस चुनेको गाँव, सवारों, गौपालों में प्रिय बना, इसका शत्रु दूर कर, क्षत्रियोंमें दीप्तकर, शत्रु नष्ट हो।

७६९-७०

अयमस्तु धनपतिर्धनानामयं विशां विश्पतिरस्तु राजा। अस्मिन्निन्द्र महि वर्चांसि धेह्यवर्चसं कृणुहि शत्रुमस्य। ३। अस्मै द्यावापृथिवी भूरि वामं दुहाथां घर्मदुघे इव धेनू। अयं राजा प्रिय इन्द्रस्य भूयात् प्रियो गवामोषधीनां पशूनाम् ॥४

यह धनोंका रक्षक स्वामी हो, प्रजा का पति राजा हो, इसमें बड़ा तेज धारण करा, शत्रुको निस्तेज कर ३
इसके लिए दुधारू गौओंके समान द्यावापृथिवी बहुत धन दें, यह राजा इन्द्र-गौ-ओषधि-पशुका प्रिय हो।४

७७१-७२

युनज्मि त उत्तरावन्तमिन्द्रं येन जयन्ति न पराजयन्ते। यस्त्वा करदेकवृषं जनानामुत राज्ञामुत्तमं मानवानाम्। ५। उत्तरस्त्वमधरे ते सपत्ना ये के च राजन् प्रतिशत्र-

वस्ते । एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाञ्छत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥ ६

(हे शासक!) मैं तेरे लिए ऐसा उत्तम गुणी सेनापति नियुक्त करता हूं जिससे विजय ही हो, पराजय न हो,जो तुझे जनता का एकमात्र श्रेष्ठ और मनुष्यों-राजाओं में उत्तम बना दे । ५

हे राजन्! तू ऊँचा हो, जो कोई तेरे शत्रु हों वे नीचे रहें,एकमात्रश्रेष्ठ इन्द्र-सखा शत्रुजयी हो भोजन दें। ६

७७३ ।

सिंहप्रतीको विशो अद्धि सर्वा व्याघ्रप्रतीकोऽव बाधस्व शत्रून् । एकवृष... खिदा० (पूर्ववत्)॥७

शेर-समान हो सब प्रजा से कर ले, बाघ-समान हो शत्रुओंको दबा, जयी इन्द्रसखा हो शत्रु-भोजन छीन ।७

सूक्त २३ । अग्नि, ईश्वर, नेता, यज्ञ-शिल्पाग्नि

❀ स नो मुञ्चत्वंहसः (वह हमें पाप से छुड़ाए) आगे १४ मन्त्रों में अन्तिम समान अंश है । ❀

७७४-७५ ।

अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसः पाञ्चजन्यस्य बहुधा यमिन्धते । विशोविशः प्रविशिवांसमीमहे स नो मुञ्चत्वंहसः । १ । यथा हव्यं वहसि जातवेदो यथा यज्ञं कल्पयसि प्रजानन् । एवा देवेभ्यः सुमतिं न आ वह स नो० (पूर्ववत्) ॥२

प्रथम ज्ञानी पञ्च-जन-प्रिय अग्नि का मैं मनन करूँ जिसे बहुधा दीप्त करते हैं, प्रजा में व्याप्त उससे माँगें कि वह हमें पाप से मुक्त करे । १

हे जातवेद! जैसे तू हव्य ले जाता, जानते हुए यज्ञ रचता है वैसेही हम विद्वानों को सुमति दे, ६६० २

७७६ ।

यामन्यामन्नुपयुक्तं वहिष्ठं कर्मन्कर्मन्नाभगम् । अग्निमीडे रक्षोहणं यज्ञवृधं घृताहुतं स०३।

दिन-दिन उपयुक्त, बली, कर्म-कर्म में उपास्य, राक्षस-नाशक; यज्ञ-वर्धक, तेजोयुक्त अग्निकी स्तुति करताहूं

७७७।

सुजातं जातवेदसमग्निं वैश्वानरं विभुम् । हव्यवाहं हवामहे । स ० (पूर्ववत्) ॥ ४

अच्छे प्रकार प्रकट, संसार-विज्ञ, विश्व-नेता, विभु, अन्न-दाता अग्नि को हम बुलाते हैं वह हमें० ।४

७७८-८०

येन ऋषयो बलमद्योतयन् युजा येनासुराणामयुवन्त मायाः । येनाग्निना पणीन्निन्द्रो जिगाय स० । ५ । येन देवा अमृतमन्दविन्दन् येनौषधीर्मधुमतीरकृण्वन् । येन देवाः स्व१ राभरन्त्स ० ॥ ६ यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते यज्जातं जनितव्यं च केवलम् । स्तौम्यग्निं नाथितो जोहवीमि स ० (शेष पूर्ववत्) ॥ ७

जिससे ऋषि बल प्रकट करते, असुरों की मायाओं को वश में करते, इन्द्र(जो?) इन्द्रियां जीतता है वह ०।५
जिससे देव अमरता पाते, औषधियाँ मधुर बनतीं, विद्वान् मोक्ष पाते वह ईश्वर हमें पाप से छुड़ाये । ६
जिसके केवल निर्देशमें यह संसार हुआ,होगा, शोभित होता,उसे दुःखो में स्तुति करता–पुकारता हूं, वह ०।७

सूक्त २४, इन्द्र

७८१-८२

इन्द्रस्य मन्महे शश्वदिदस्य मन्महे वृत्रघ्न स्तोमा उपमेम आगुः । यो दाशुषः सुकृतो हवमेति स० ।१। य उग्रीणामुग्रबाहुर्ययुर्यो दानवानां बलमारुरोज । येन जिताः सिन्धयो येन गावः स० (पूर्ववत्) ॥ २

हम इन्द्र का मनन, सदा ही इसका विचार करते हैं, जो विघ्न-नाशक है; मेरे० पास ये स्तुतियां हैं, जो दानी–सुकृती की पुकार सुनता है वह० ।१। जो उग्रों को उग्र बाँह; गतिशाली है, दुष्टों का बल रोकता है, जिससे सिन्धु और गोएँ (प्राण–इन्द्रियां)जीती जाती हैं वह ईश्वर हमें पाप से मुक्त करे ।२

७८३-८५

यश्चर्षणिप्रो वृषभः स्वर्विद् यस्मै ग्रावाणः प्रवदन्ति नृम्णम् । यस्याध्वरः सप्तहोता मदिष्ठः स ० । ३ । यस्य वशास ऋषभास उक्षणो यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वर्विदे । यस्मै शुक्रः पवते ब्रह्मशुम्भितः स० । ४। यस्य जुष्टिं सोमिनः कामयन्ते

यं हवन्त इषुमन्तं गविष्टौ। यस्मिन्नर्कः शिश्रिये यस्मिन्नोजः स० (पूर्ववत्) ५

जो मनुष्य-पालक, बली- सुखद है स्तोता जिसका ऐश्वर्य बताते हैं, जिसके यज्ञमें ७होता हैं हर्षप्रद वह०।३
वर्षक मेघ जिसके वशमें हैं, जिस के वशमें सूर्य मण्डल चलते हैं, वेदवर्णित वायु बहता है, वह ०। ४
सोमी भक्त जिस की कृपा चाहते हैं जिसे युद्धमें पुकारते हैं जिसके आश्रित सूर्य-ओज हैं वह०।५

७८६-८७

यः प्रथमः कर्मकृत्याय जज्ञे यस्य वीर्यं प्रथमस्यानुबुद्धम्। येनोद्यतो वज्रो ऽभ्यायताहि स०।६। यः संग्रामान् नयति संयुधे वशी यः पुष्टानि संसृजति द्वयानि। स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ७

जो पहले कर्म करनेके लिए प्रसिद्ध है, जिसका बल ज्ञात है, जिसका उद्यत वज्र शत्रुको मारता है वह०।६
जो वशी सङ्घर्ष-संग्राममें पार ले जाता है, शरीर-आत्माकी दो पुष्टियाँ देताहै उसे दुःखी मैं पुकारताहूँ ०।७

सूक्त २५, वायु-सविता

७८८-९१

वायोः सवितुर्विदथानि मन्महे यावात्मन्वद्विशथो यौ च रक्षथः। यौ विश्वस्य परिभू बभूवथुस्तौ नो मुंचतमंहसः ॥१ ययोः सङ्ख्याता वरिमा पार्थिवानि याभ्यां रजो युपितमन्तरिक्षे। ययोः प्रायं नान्वानशे कश्चन तौ ०।२ तव व्रते नि विशन्ते जनासस्त्वय्युदिते प्रेरते चित्रभानो। युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथस्तौ० ॥३ अपेतो वायो सविता च दुष्कृतमप रक्षांसि शिमिदां च सेधतम्। सं ह्यूर्जया सृजथः सं बलेन तौ ० ॥४

वायु-सूर्यके कार्योंका मनन करें जो प्राणयुक्त प्रविष्ट हो रक्षा करतेहैं जो विश्वमें व्यापक हैं वे दो०।१
जिनके पृथ्वी पर बड़े कार्य गिने जाते हैं, जिनसे अन्तरिक्ष में लोक और मेघ बनते हैं, जिनकी ऊँची स्थिति को कोई नहीं पा सकता ०।२। हे विचित्र-दीप्ति(सूर्य)! जनता तेरे नियम में रहती है,तेरे उदय होने पर गति करती है, तुम दोनों वायु और सूर्य भुवनोंकी रक्षा करते हो तुम हमें कष्टसे बचाओ ।३
वायु-सूर्य बुरे कर्मों को दूर करते हैं, राक्षसों (विघ्नों-क्रिमियों-पीड़ाओं-दुष्टों) को दूर हटाते हैं, ऊर्जा और बल से संयुक्त करते हैं वे दोनों हमें पाप और दुःख से छुड़ायें ।४

सम्पादकीय — **वेद का अनर्थ (१४)** वेद में शक्ति की कथा और मूर्तिपूजा नहीं।

'वेद-प्रदीप' के दिसम्बर ८६ के अङ्क में स्वामी गङ्गेश्वरानन्द उदासीन की वेदोपदेशचन्द्रिका (७३-७४) से ऋग्वेद ७-३२-२६ में वशिष्ठ के पुत्र शक्ति की कथा और ७-८६-७ में मूर्तिपूजा का वर्णन बताया है, किन्तु उनमें ऐसी कोई बात नहीं। शाट्यायन ब्राह्मण का प्रमाण मान्य नहीं। दोनों मन्त्र ये हैं—

इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा। शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥

अर्थ — हे ईश्वर! हमारा यज्ञ धन से भर जैसे पिता पुत्रों के लिए वैसे ही इस समय हमें शिक्षा दे, हम जीव ज्योति को पायें। उदासीन जो बतायें कि मन्त्र में शक्ति का नाम कहां है, वह तो मन्त्र का द्रष्टा-मात्र है, सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर के दिये वेद में किसी व्यक्ति की कथा नहीं हो सकती।

ऐसे ही दूसरे मन्त्र में 'अचितः' (अज्ञानियोंको) शब्द से मूर्तिपूजा किसी तरह सिद्ध नहीं होती—

अरं दासो न मीळ्हुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः। अचेतयदचितो देवोऽर्यो गृत्सं राये न कवितरो जुनाति ॥

अर्थ — दास के समान मैं पाप-रहित जीव कर्मफल-दाता भू-नेता ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ, वह अचेतों का चितानेवाला सर्वज्ञ स्वामी स्तोता को ऐश्वर्य की ओर प्रेरित करे।

[illegible] और स्वामी गङ्गेश्वरानन्द को दो भ्रम हुए— १. अचितः को अर्चितः समझना और २. अचितः का अर्थ मूर्ति-पूजा, अतः वेद का अनर्थ होगया।

समाचार

विश्व वेदपरिषद्-प्रबन्धसमिति की बैठक २३-११-८६को प० आशुराम आर्य चण्डीगढ़ की अध्यक्षता में हुई, जिसमें प० सुधीन्द्रनाथ शास्त्री के देहावसान पर हार्दिक शोक व्यक्त किया गया, उनके स्थान पर उनके पुत्र श्री रवीन्द्रनाथ शास्त्री सदस्य, और आचार्य ओजोमित्र शास्त्री मुख्य मन्त्री बनाये गये, सर्वश्री रामदेव आर्य, गोता देवी आर्या (लखनऊ), श्री कृष्णकुमार धवन (चण्डीगढ़) को भी सदस्य बनाया गया, मार्गशीर्ष २०४६ तक का आय-व्यय स्वीकार हुआ; शाखा-सदस्यों से आधा शुल्क लेना अस्वीकार हुआ।

परीक्षा-परिणाम— श्री सन्तराम, और वेदप्रिय यजुर्वेदाचार्य में, श्री रूपचन्द्र दीपक यजुर्वेद-विशारद, भूषण में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण घोषित हुए, आगामी बैठक मई-जून में करना निश्चित हुआ।

भारत के निर्वाचन में श्री विश्वनाथप्रताप सिंह प्रधानमन्त्री, श्री मुलायमसिंह उ० प्र० के मुख्यमन्त्री हुए।

उ. प्र. आर्य प्र. सभा के २५-१२-८६ के निर्वाचन में श्री इन्द्रराज प्रधान, श्री मनमोहन मन्त्री हुए।

[illegible] हाजी नये लखनऊ में और सर्वत्र [illegible] होगी।

अजमेर में परोपकारिणी सभा ने स्नातकों के लिए वेदविद्यापीठ का आरम्भ किया है, भोजनादि सब निःशुल्क, ३ वर्ष की शिक्षा के बाद बने स्नातक के लिए १५०० मासिक की व्यवस्था भी की है।

लखनऊ में आर्यसमाज आदर्शनगर में महात्मा-दयानन्द-स्मृति-सप्ताह में १६-२१.१.६० में और आर्यसमाज इन्दिरानगर में यज्ञशालोद्घाटन पर १४.१.९० को सर्वश्री कुन्दनलाल वैद्य, वेदव्रत शास्त्री, रूपचन्द्र दीपक, हरवंशलाल वेदमनीषी, ओजोमित्रशास्त्री, वीरेन्द्रमुनि, डा.शान्तिदेवबाला के प्रवचन हुए।

हैदराबाद में आर्य सत्याग्रह की अर्धशताब्दी २६-३१.१२.८६ को मनाई गई।

शिवरात्रि पर टङ्कारा में ऋषिमेला, गुरुकुल झज्झर में हीरक-जयन्ती, आ.स.कानपुर का उत्सव होंगे।

शोक है कि सर्वश्री स्वा.सच्चिदानन्द योगी (दिल्ली, २६.१२), डा० मुंशीराम शर्मा (कानपुर १२.१.६०) श्री कृष्ण बलदेव महाना (लखनऊ ३१-१२-८९) का देहान्त हो गया, शोक-सभाएँ की गयीं।

पृ.३२ वर्ष१४ अंक२-३, माघ-फाल्गुन २०४६❀वेदज्योति❀फरवरी-मार्च ९०, ६६२१/६२१ डाक लख २०९

श्रीमन् ! नमस्ते, आपका वर्ष -२-६० को पूर्ण हो चुका है, कृपया वार्षिक शुल्क ३०) शीघ्र भेजिये। उसके मिलने पर ही अगला अंक भेजा जायेगा। अंकों को सँभाल कर रखिये, फिर न मिल सकेंगे।

सभी सदस्य विशेषतः आजीवन संरक्षक अथर्ववेद के प्रकाशन में कृपया आर्थिक सहायता प्रदान करें

सार्वदेशिक सभा के त्रिसूत्री आन्दोलन में सभी भाग लें, गौहत्त्या बन्दकरो, अंग्रेजी हटाओ, शराबके ठेके उठाओ, वीरेन्द्रमुनि

आर्यसमाज सान्ताक्रूज बम्बई ने १६६० का वेद-वेदाङ्ग-पुरस्कार २१०००) श्री हरिशरण सिद्धान्तालङ्कार (दिल्ली) को, और वेदोपदेशक-पुरस्कार श्री ओम्प्रकाश को दिया है, दोनो को बधाई !

अष्टाध्यायी, शतपथ, निरुक्त, अथर्ववेद

अनुवादक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम ए. काव्यतीर्थ

साम देवताध्याय १०), साम संहितोपनिषद् ब्राह्मण १०), शतपथ काण्ड १-२, २०), वेदार्थपारिजात खण्डन २०) साम वंशब्राह्मण १०), अष्टाध्यायी २०), शतपथ काण्ड ३-४, २०), निरुक्त ३०), अथर्ववेद शीघ्र मगाइये। निवेदक—वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, ओ३म् मित्र शास्त्री मन्त्री विश्ववेद परिषद् सी८१७ महानगर लखनऊ ३

प्रेषक — मुद्रक आदर्श प्रेस, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६; उ० प्र० दूरभाष ७३५०१

सेवा में क्रमांक १३२८ श्री पुस्तकालयाध्यक्ष
गुरुकुल कांगड़ी
हरिद्वार।

ऋग्वेद ओ३म् यजुर्वेद

वर्ष १४
अंक ४

अप्रैल १९९०

उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार

वर्ष १४ अङ्क ४, चैत्र (मधु) संवत् २०४७ वि०, अप्रैल १९९० ई०, नव वर्ष, प० गुरुदत्त विद्यार्थी शताब्दी
वेद-मानव-सृष्टि-संवत् १ ९६ ०८ ५३ ०९०, दयानन्दाब्द १६६
शुल्क वार्षिक ३०), आजीवन ३००), विदेश में २५ पौंड, ५० डालर

सम्पादक – आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री एम. ए. काव्यतीर्थ, उपाध्यक्ष विश्व वेद परिषद्,
सहायक—विमला शास्त्री, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष ७३५०१
दिल्लीकार्यालय— श्री सञ्जयकुमार, मन्त्री, बी६ हिल व्यू, वसन्त विहार, नयीदिल्ली५७, दूरभाष ६०१४५२

गायत्री, सावित्री, वेदमाता, गुरु मन्त्र

ऋषि ईश्वर, विश्वामित्र, देवता सविता, छन्द दैवी बृहती, तत्० का गायत्री, स्वर षड्ज, विनियोग जप।

ओ३म् भूर् भुवः स्वः। तत् सवितुर् वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

[यजुर्वेद ३६.३, तत्स० ऋ० ३.६२.१०, य ३.३५, २२.९, ३०.२, सा १४६२, अ महिमा १९.७१.१]

हे रक्षक, प्राण-दाता, दुःख-नाशक, सुख-स्वरूप, हम उस जगदुत्पादक देव आपके वरणीय पाप-नाशक तेज को धारण कर ध्यान करते हैं जो हमारी बुद्धियों और कर्मों को अच्छी प्रेरणा दे।

सर्वरक्षक ईश का हम ध्यान करते सर्वदा। प्राणरूप वही जगत् का दुःख-नाशक है सदा॥ १
सर्वव्यापक है तथा सर्वज्ञ वह भगवान् है। पूर्ण जो आनन्दमय है दिव्य जिसका मान है॥ २
विश्व का कर्ता सनातन शान्ति-सुख-दाता वही। शोक-पातक का विनाशक जिसकी है महिमा कही॥ ३
श्रेष्ठ उसके तेज को धारण करें और ध्यान हम। बुद्धियों को हम सभी की शुद्ध करदे वह परम॥४
प्रेरणा उसकी मिले तब सर्व कर्म विशुद्ध हों। दिव्य-जीवन-युक्त होकर हम सदा उद्बुद्ध हों॥ ५

—स्व. स्वामी धर्मानन्द सरस्वती

नव संवत्सर सबको मङ्गलमय हो! चैत्र शुक्ल १ संवत् २०४७ वि० २७-३-१९९०, मेष संक्रान्ति १३-४-९०

वेद-मानव-सृष्टि-संवत् १९६०८५३०९०

प० गुरुदत्त विद्यार्थी-निर्वाण-शताब्दी-वर्ष

जन्म २६-४-१८६४
निर्वाण १९-३-१८९०

साम वेद अथर्व वेद

सत्यार्थप्रकाश-मन्त्र-व्याख्या

क्रमांक ५४- ऋषि कुत्स, देवता (विषय) रुद्र (ईश्वर, सेनापति), छन्द जगती, स्वर निषाद

मा नो महान्तमुत मा नो ऽर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥

यजुर्वेद अध्याय १६, मन्त्र १५

आध्यात्मिक अर्थ – हे रुद्र = दुष्टों को पाप के दुःखस्वरूप फल को देकर रुलानेवाले परमेश्वर ! आप हमारे छोटे-बड़े जन, गर्भ, माता-पिता और प्रिय बन्धुवर्ग तथा उनके शरीरों का हनन करने के लिए प्रेरित मत कीजिए। ऐसे मार्ग से हमको चलाइए जिससे हम आपके दण्डनीय न हों। (समुल्लास ७)

आधिभौतिक अर्थ – हे सेनापति रुद्र! युद्ध-सेनाधिकृत विद्वान् ! तू हमारे महागुणविशिष्ट पूज्य जन को, अल्प सब छोटे बच्चे, वीर्य-सेक्ता, सिक्त गर्भ, पालक पिता, मान्यप्रदा जननी, और स्त्री आदि के प्रीति-उत्पादक शरीरों की तथा दर्शक दूत आदि की हिंसा मत कर। (वेद-भाष्य)

आधिदैविक अर्थमें रुद्र प्राण-अपान-व्यान-समान-उदान-नाग-कूर्म-कृकल-देवदत्त-धनंजय-जीव हैं।

क्रमाङ्क ५५- ऋषि दीर्घतमाः देवता आत्मा, छन्द अनुष्टुप्, स्वर गान्धार, विषय कर्तव्य

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

यजुर्वेद अध्याय ४०, मन्त्र २

परमेश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्य सौ वर्ष पर्यन्त, अर्थात् जब तक जीवे तब तक, कर्म करता हुआ ही जीने की इच्छा करे, आलसी कभी न हो ॥ [समुल्लास ७]

इस मन्त्रका भाष्य सर्वश्री शंकराचार्य, सातवलेकर, हरिशरण, जगदीश्वरानन्द आदि ने उपनिषद्भाष्यमें किया है जिसमें निम्नलिखित आक्षेपयोग्य हैं— १.शंकर ने मनुष्यकी सौ वर्ष ही आयु और ज्ञान-कर्मविरोध बताया परन्तु वेद ने 'भूयश्च शरदः शतात्' और 'विद्यां चाविद्यां' में ज्ञान-कर्म में अविरोध बताया।

२. सातवलेकर आदि ने नरे का अर्थ महर्षि के नयन-कर्तार के विरुद्ध 'न रमते' किया।

३. श्री हरिशरण ने दीर्घतमाः को दीर्णतमाः बनाकर अर्थ में सहायक बताया, महर्षि यह नहीं मानते।

४. स्वा॰जगदीश्वरानन्द- 'निठल्ले को ईश्वर शीघ्र ही अपने समीप बुला लेते हैं' तब तो निठल्ला होना अच्छा हुआ। उनके 'समाः' के ४ अर्थ अप्रामाणिक हैं, पुल्लिंग यह कर्माणि का विशेषण नहीं हो सकता।

सम्पादकीय

वेद का अनर्थ (१५)

वेद में नहुष, वसिष्ठ, नदी, नमुचि की कथा नहीं

जनवरी ९० के वेदप्रदीप में स्वा. गंगेश्वरानन्द उदासीन की वेदोपदेशचन्द्रिका के श्लोक ७५-७७ देकर वेद में ३ कहानियों का होना बताया है वह अनर्थ है क्योंकि उन मन्त्रों में कोई कहानी नहीं।

१- एका चेतत्सरस्वती नदीनां० (ऋ७-९५-२) में लिखा कि नदी ने नाहुष को घी-दूध दिया, जड़ नदी कहाँ से कैसे देगी? अतः यहाँ नाहुष का अर्थ मनुष्य और सरस्वती का विद्या है जो सब देती है।

२-वसिष्ठ को मेंढकों ने गौएँ दीं यह कथा ऋ ७.१०३.१० में बतायी। वे गौएँ कहाँ से कैसे लाये? अतः यहाँ मडि स्तुतौ से बने मण्डूक का यौगिक अर्थ मंडन करने वाला स्तोता ब्राह्मण है मेंढक नहीं।

३- अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः० (ऋ७-१९-१३) में बताया कि इन्द्र ने नमुचि असुर का (शेष २४ पर)

शतपथ काण्ड ५ अध्याय १ ब्राह्मण २

अब अध्वर्यु १७ सुरा(औषधि-रस)के गृह लेता है, १७ प्रजापति हैं जो यज्ञ है, वह जितना यज्ञ और उस की मात्रा है उतने से ही इस के उस अनृत-पाप- तम को जीत लेता है। १२

सोम-सुरा के सब ३४ गृह हुए, ३३ देवता हैं, ३४ वां प्रजापति, अतः उसे भी जीत लेता है। १३

जहां पर सोमराजा को खरीदता है उसके दक्षिण में पड़ोस से केशव पुरुष से सीसा के बदले परिस्रुत् (शिलाजीत) खरीदता है, केशव न स्त्री है न पुरुष, जब पुरुष कहा तो स्त्री नहीं हुआ जब केशव कहा तो पुरुष नहीं रहा। सीसा न लोहा है न सोना, परिस्रुत् न सोम है न सुरा, अतः सीसा से खरीदता है। १४

एक दिन पूर्व दो खर बनाते हैं (१)पुरो-अक्ष (२)पश्चादक्ष, ऐसा न हो कि दोनों पात्र एकत्र हों। १५

पूर्व द्वार से वसतीवरी जल पहुँचाते हैं वहां अन्य द्वार से नेष्टा पहुँचाता है, दक्षिण से पात्र लाते हैं, पश्चिम में बैठा अध्वर्यु पुरोअक्ष में सोमगृह, पूर्वस्थ नेष्टा दूसरे में सुरागृह रखता है कि दोनों न मिलें। १६

अध्वर्यु सोमग्रह पश्चादक्षपर नहीं लेजाता और न नेष्टा सुरागृह पुरोअक्ष पर, ज्योति-तम न मिलें। १७

ऊपर-ऊपर ही केन्द्र पर अध्वर्यु सोमगृह; नीचे-नीचे ही नेष्टा सुरागृह रखते हैं वह मन्त्र बोलते हैं न बोलें तो पाप हो—

सम्पृचौ स्थः सम्मा भद्रेण पृङ्क्त विपृचौ स्थो वि मा पाप्मना पृङ्क्तम् ॥ (यजु ६.४)

तुम दोनों (राजा-प्रजा) संयुक्त हो, मुझे भद्र से संयुक्त करो, अलग हो मुझे पाप से अलग रखो।

जैसे मूँज से सींक निकालते हैं वैसे ही सब पापों से अपराध बाहर करदे, वहां तब तक कोई पाप नहीं होता जब तक वे तृणासन पर बैठते हैं। १८

अब वह सोने के पात्र में मधु-ग्रह लेकर सोमगृहों के बीच में रखता है, फिर उक्थ्य, ध्रुव और इन सोमगहों को उत्तम स्तोत्रमें ऋत्विक्-चमचों में बाँटकर आहुति देता, खाता-और माध्यन्दिन सवन में मधु-सुरा-गृहों के तय्यार होनेपर उनसे प्रेरित होता है। १९

शतपथ काण्ड५ अध्याय१ ब्राह्मण ३

अग्नितत्त्व-प्रधान पशु को अग्निष्टोम में लेता है, निश्चय ही अग्नि वह है अतः उसे जीतता है, उक्थों में इन्द्राग्नि-तत्त्व-प्रधान पशु लेता है, क्योंकि वे ऐन्द्राग्न हैं अतः इससे उन्हें जीतता है, इन्द्र-तत्त्व-प्रधान पशु षोडशी यज्ञ में विश्लेषण के लिए लेता है क्योंकि इन्द्र षोडशी है अतः इससे उसे जीतता है। १

१७ वें स्तोत्र के लिए सरस्वती सम्बन्धी (मेष) लेता है इससे अतिरात्र न होनेपर रात्रि का रूप किया जाता है। वाजपेय-कर्ता प्रजापति को जीतता है जो संवत्सर है अतः इससे रात्रि को जीतता है, अतिरात्र न होने पर रात्रि का रूप किया जाता है। २

अब उज्जेय-मरुतों के(जानने) के लिए चितकबरी गौ लेते हैं, यह पृथिवी है क्योंकि इसमें मूल से युक्त और अयुक्त अन्न स्थित हैं, इससे यह वशा पृश्नि है। वाजपेय-कर्ता अन्न को जीतता है क्योंकि इसका नाम अन्नपेय है, प्रजा ही मरुत, अन्न ही प्रजा है, उज्जिति से ही याज्या-अनुवाक्या मिलनी कठिन हैं, यदि वे न मिलें तो जो कोई मारुती हों ले ले, यदि वशा पृश्नि न मिले तो जो कोई वशा हो ले ले। ३

उसका आवरण (ऊपरी खाल का अंश)ले। जहाँ होता माहेन्द्र गृह का अनुशंसन करता है वहाँ हनकी वपा का विश्लेषण करें, यह इन्द्र का निष्केवल्य गृह है। इस के स्तोत्र-शस्त्र भी निष्केवल्य हैं, इन्द्र ही यजमान है अतः वह मध्य से ही उसमें वीर्य धारण कराता है अतः वहां वपा-विश्लेषण करें। ४

वपा-अंश दो तरह तपाते हैं- आधे टुकड़े जुहू में गरम कर दो-दो टुकड़े कर एकबार तपाता है और टुकड़े अलग करता है, दूसरे ढङ्ग में उपभृत् में एक-एक बार टुकड़े कर दो बार तपाना है, उन्हें अलग न करना, आधों के दो-दो करने से यह परीक्षा पूर्ण होती है, अब जो इनसे विश्लेषण करता है उससे दैवी प्रजा को जीतता है, आधे मानुषी प्रजा को देता है उससे मानुषी प्रजा को जीतता है। ५

किन्तु ऐसा न करे, जो ऐसा करता है वह यज्ञपथ से अलग जाता है, अतः जैसा अन्य पशुओं का वपा-विश्लेषण हो वैसाही इसका भी, टुकड़े एक बार तपाना, मानुषी प्रजा के लिए न देना। ३

अब १७ प्राजापत्य पशु लेता है, वे सब शृङ्गरहित, साँवले, प्रजननकर्ता होते हैं, यह वाजपेय यज्ञ-कर्ता प्रजापति को जीतता है; जो अन्न ही है, जो पशु (से पैदा) है, सोम निश्चय ही प्रजापति है पशु प्रत्यक्ष सोम, १७ पशु सप्तदश ही प्रजापति हैं, अतः इनसे उसे जीतता है। ७

वे सभी तूपर (सींग-रहित) होते हैं, पुरुष प्रजापति का निकटतम है अतः ये दोनों भी तूपर हैं। ८

वे सब श्याम हैं जिसके सफेद-काला दो रूप हैं, यह द्वन्द्व प्रजनन है जो प्रजापति है अतः सब श्याम हैं। ९

सब मुष्कर हैं यह प्रजनन है जो प्रजापति है अतः ये सब प्राजापत्य पशु मुष्कर होते हैं। ये समृद्ध पशु कठिनता से मिलते हैं यदि ऐसे न पा सके तो जो कुछ ऐसे मिलें वे सब प्रजापति हैं। १०

कुछ लोग कहते हैं - वाणी ही प्रजापति के लिए श्रेष्ठ है अतः वाणी को जीतें, किन्तु ऐसा न करे ये सभी लोक और यह जो कुछ है सभी प्रजापति है. जब इन लोकों में वाणी बोलता है तो इसे जीतता अतः इसे न माने, उसकी बात बन्द। ११

जहाँ मैत्रावरुण वामदेव्य का अनुशंसन करता है वहां इनका वपा-विश्लेषण करें, यह प्रजनन-प्रजापति है, ये प्राजापत्य हैं अतः यहां वपा-विश्लेषण करें। १२

अब इष्ट अनुयाज होते हैं, अव्यूढ स्रुच में हवियों से विश्लेषण करते हैं वह अन्त है जो प्रजापति है इसीसे उसे जीतता है, यदि पहले करे तो जिस मार्ग से चला उससे भटककर न जाने कहाँ पहुंचे! १३

किन्तु ऐसा न करे, जो ऐसा करता है वह यज्ञपथ से हट जाता है अतः जहाँ अन्य पशुओं का वपा-हवि-परीक्षण हो वहीं इनका भी हो। एक अनुवाक्या, एक याज्या होती है क्योंकि प्रजापति एकदेवत्य होते हैं, यह और छागों की हवि प्रजापति के लिए बोलो- यह धीरे से कहकर छागोंकी प्रस्थित हवि का प्रेषण कर- यह कहकर वषट् करके आहुति देता है। १४

ब्राह्मण ४

माध्यन्दिन सवन, यजमान का अभिषेक और घुड़-दौड़

माध्यन्दिन सवन में यजमान का अभिषेक और घुड़दौड़ करते हैं, यह प्रजापति ही है जो यह यज्ञ फैलाया जाता है जिससे प्रजा उत्पन्न-विलय होती उस के मध्य से ही यह प्रजापति को जीतता है। १

यह माहेन्द्र ग्रह-स्तोत्र-शस्त्र इन्द्र का निष्केवल्य है, इन्द्र ही यजमान है इसे न लेकर अपने ही आयतन में अभिषिक्त करता है। २

अब रथ लाता है- इन्द्रस्य वज्रोऽसि वाजसास्त्वयाऽयं वाजं सेत्। (यजु ९.५)

वज्र रथ, इन्द्र यजमान वाजा है, हे रथ! तेरे द्वारा यह अन्न को जीते रह कहा। ३

धुरा-गृहीत रथ अन्तर्वेद में लाते हैं-

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे।
यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म साविषत्॥ (य ९.५)

वाज अन्न के प्रसव में अदिति नामक बड़ी पृथिवी को वेद-वचन से स्वीकार करते हैं जिसमें यह सब भुवन प्रविष्ट है उसमें हमारा देवसविता यजमान धर्म(सोम-याग) करे। ४

अब नहाने के लिए लाये या नहलाकर लाये घोड़ों को जल से सींचता है, पहले घोड़ा जल से असम्पूर्ण पैदा हुआ अतः सब पैरों से नहीं खड़ा होता, एक-एक ही पैर उठाकर खड़ा होता है, जो इसका जलमें कम हुआ, उसी को इससे पूरा करता है, जल से अभ्युक्षण करता है। ५

अब जल छिड़कता है— अप्स्वन्तरममृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः ॥ (य ९,६)

और इससे भी— देवीरापो यो व ऊर्मिः प्रतूर्तिः ककुन्मान्वाजसास्तेनाऽयं वाजं सेत् ॥ (य ९.७)

अर्थ— जल के अन्दर अमृत और औषधि है, और जल की प्रशस्तियों में घोड़े वेगयुक्त हों।

हे दिव्य जल ! जो तेरी लहर तीव्र गतिवाली, चञ्चल, वेगवाली है उससे यह अन्नको जीते- यह कहा। ६

अब रथ जोड़ता है, मानुष और दिव्य रथ में पहले दाहिना ही या बायाँ जुआ जोड़ता है। ७

जोड़ता है- वातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविंशतिस्ते अग्रे ऽश्वमयुञ्जँस्ते अस्मिञ्जवमादधुः ॥ (य ९.७)

[समष्टि हवा और मन से अधिक वेगवान् कोई नहीं, १० प्राण, १० इन्द्रियां, ५ भूत मिल कर उन २७ गन्धर्वों (पृथ्वी-धारकों) ने पहले शरीर-अश्व को जोड़ा और इसमें वेग धारण कराया।

वे तुझे जोड़ें और तुझमें वेग धारण करायें — यह कहा।

बायाँ जुआ जोड़ता है— वातरंहा भव वाजिन् युज्यमान इन्द्रस्येव दक्षिणः श्रियैधि।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु ॥(य ९.८)

हे जोड़े जाते हुए अश्व ! तू हवा के समान वेगवाला हो, इन्द्र के अनुकूल, लक्ष्मी से बढ़, सब वेदज्ञदेव सैनिक तेरा प्रयोग करें, त्वष्टा (कुशल सारथि) तेरे पैरों में वेग धारण कराये।

मन्त्र सरल है। दाहिनी और बाईं प्रष्टि को मानुष और दिव्य रथ में जोड़ता है यह पढ़ कर— ९

जवो यस्ते वाजिन्निहितो गुहा यः श्येने परीत्तो अचरच्च वाते।

तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन वाजजिच्च भव समने च पारयिष्णुः ॥ (य ९-९)

हे अश्व ! जो तेरा वेग अन्यत्र बाज और वायु में रक्खा है उससे हमारे इस यज्ञ-प्रजापति को जीत और बल से बलयुक्त हो अन्न-जेता और युद्ध में पार लगानेवाला हो; इस यज्ञ-प्रजापति को जीत। १०

ये तीन ही युक्त होते हैं, देवों का त्रिवृत् ही है; मानुष रथ में प्रष्टि-युग के साथ चौथा भी जोड़ लिया जाता है यदि देना होता है, अतः अन्य यज्ञ में भी ये ही तीन होते हैं। ११ (अर्धप्रपाठक ५९)]

अब जंगली धान का बना बृहस्पति का चरु १७ सरवों में लेता है, अन्नपेय-नामक वाजपेय का क्रत अन्न को जीतता है अतएव इसके लिए चरु बनाता है।१२

यह बृहस्पति का होता है क्योंकि उसने ही इसे पहले जीता था। १३

यह नीवार का होता है क्योंकि ब्रह्म बृहस्पति है; ये ब्रह्म से ही पकाये जाते हैं, १७ सकोरों में रक्खा जाता है क्योंकि प्रजापति १७ वाँ है अतः उसे जीतता है। १४

उसे घोड़ों को सुँघाता है— वाजिनो वाजजितो वाजं सरिष्यन्तो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत ॥ (य ९.९)

हे अन्न जीतनेवाले घोड़ो! दौड़में आगे बढ़तेहुए तुम बृहस्पतिके भागको सूँघो इसलिए कि जीतूं। १५

ब्राह्मण ५

[आजि-धावन-प्रशंसा, ब्रह्मा का रथचक्र में गान और दुन्दुभि को लेना]

आजि(घोड़े)दौड़ाते हैं इससे इस लोकको, ब्रह्मा नाभि तक ऊँचे रथचक्रपर साम गाता है इससे दूसरे अन्तरिक्षको और जो यूप पर चढ़ता है इससे देवलोक को जीतता है अतः ये ३ कार्य किये जाते हैं। १

वह ब्रह्मा नाभि तक ऊँचे रथचक्र पर चढ़ता है, यदि ब्राह्मण यज्ञ करे तो यह बोले क्योंकि ब्रह्म ही बृहस्पति और ब्राह्मण है— देवस्याहं सवितुः सवे सत्यसवसो बृहस्पतेरुत्तमन्नाकं रुहेयम्। (य ९.१०)
[मैं देव सविता के यज्ञ में सत्य यज्ञ वाले बृहस्पति के उत्तम स्वर्ग पर चढ़ूं] २

यदि क्षत्रिय यज्ञ करे तो यह बोले क्योंकि क्षत्र ही इन्द्र और राजन्य है—
देवस्याहं सवितुः सवे सत्यसवस इन्द्रस्योत्तमन्नाकं रुहेयम्। (य ९.१०) [मैं ...इन्द्र के.. चढ़ूँ] ३

३ साम गाकर उतरता है, ब्राह्मण कहता है— देवस्याहं... बृहस्पते... अरुहम्, (य ९–१०) ४

यदि क्षत्रिय हो तो बृहस्पतेः के स्थान पर इन्द्रस्य कहता है। ५

अब १७ दुन्दुभियाँ बजानेवालों को लक्ष्य करते हैं, आग्नीध्र के पश्चिम में वाजपेय-यज्ञकर्ता प्रजापति को जीतता है क्योंकि वाणी निश्चय प्रजापति है, १७ दुन्दुभियों की तो परम वाणी है इससे परम प्रजापति को जीतता है। ६

अब उ में से एक दुन्दुभि यजुः से आहनन करते हैं उससे सब यजुः से आहत होती हैं। ७

अब बजाता है, ब्राह्मण कहे— बृहस्पते वाजं जय बृहस्पतये वाचं वदत बृहस्पतिं वाजं जापयत।(९-११)

यदि क्षत्रिय कहे तो प्रथम मन्त्र में ३ स्थानों पर बृहस्पति के स्थान पर इन्द्र कहे। ९

अब घुड़दौड़ के रथों के लौटनेपर इन दुन्दुभियों में से एक यजुःसे उतारता है इससे सब उतरती हैं। १०

एषा वः सा सत्या संवागभूद्यया बृहस्पतिं वाजमजीजपताजीजपत बृहस्पतिं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम्।(मन्त्र ९–१२) यदि ब्राह्मण हो तो ऐसा कहे। अगर क्षत्रिय यज्ञकर्ता हो तो– ११

मन्त्र में २ स्थानों पर बृहस्पति के स्थान पर इन्द्र बोले। १२

मन्त्रार्थ — हे विद्वान् और राजा! तू ऐश्वर्य पा, उपदेश कर, युद्ध-बोध करा। हे वन-न्याय-पालको! यह तुम्हारी वाणी सत्य हो, तुम विद्वान् को अन्न-युद्धोपदेश करो-कराओ, दुःखमुक्त करो (य० ११-१२)

अब क्षत्रिय उत्तर की ओर १७ बाण छोड़ता है. एक के पहुँचने के स्थान से अन्य, १७ की दूरी तक।१३

क्षत्रिय प्रजापतिका निकटतम, दोनोंके नाममें ४–४ अक्षर, एकही बहुतों का ईश, वाण-दीपक है। १४

यज्ञकर्ता के बैठनेपर यजुःपाठक पढ़ता है— देवस्याहं सवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेर्वाजजितो वाजं जेषम्। (य ९–१३) [मैं देव सविता के यज्ञ में सत्योत्पादक अन्न-जयी बृहस्पति का वाज जीतूँ। १५

पहले कोगयी बृहस्पति-प्रार्थनाके समान यह सविताके ही पास प्रसवके लिए दौड़ता है कि तू देवत्वादक मेरेलिए यह पैदाकर, तेरा पैदा किया में यह जीतूँ, इसके लिए कह देता है अतः जीतता है।१६

यदि अध्वर्यु-शिष्य या ब्रह्मचारी यह यजुः पढ़े तो वह आकर पढ़ता है—
वाजिनो वाजजितोऽध्वन स्कभ्नुवन्तो योजना मिमानाः काष्ठां गच्छत॥ (य ९.१३)

हे अन्न-जयी अश्वो! मार्ग रोककर दौड़ते हुए योजन नापते हुए अपनी दिशा को जाओ, बीच में दुष्ट राक्षस न मारें। वे घुड़दौड़ में दौड़ते हैं। यह दुन्दुभियों के साथ साम गाता है। १७

अब इन दो जगती छन्द के मन्त्रों से आहुति देता या मन्त्रणा करता है, दोनों एक ही बातें हैं। १८

आहुति देता है– एष स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि।
क्रतुं दधिक्रा अनु संसनिष्यदत्पथामङ्कांस्यन्वापनीफणत् स्वाहा॥ (य ९.१४) १९
उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनुवाति प्रगर्धिनः।
श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः स्वाहा॥ (य ९.१५) २०

[यह अश्व सेना को शीघ्र ले जाता है, गरदन-कक्ष-मुख पर बँधा, धारक-वाहक, कर्ममें अत्यन्त गति करता हुआ मार्गों के चिह्नों को पाता है, वह वाणी-सत्यक्रिया से प्रेरणा दे।]

७६२-७६३ रयिं मे पोषं सवितोत वायुस्तनू दक्षमा सुवतां सुशेवम् ।
अयक्ष्मतातिं मह इह धत्तं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ५

सूर्य-वायु मेरे शरीरमें वीर्य-पोषण, सेवनीय बल-ज्ञान और नीरोग तेज धारण करायें, वे पाप-मुक्त करें ।५

प्र सुमतिं सवितर्वाय ऊतये महस्वन्तं मत्सरं मादयाथः,अर्वाग्वामस्य प्रवतो नियच्छतं तौ० ६

सूर्य-वायु हमारी रक्षार्थ उत्तम बुद्धि;शक्ति दें, तेज-आनन्दयुक्त आत्मा को तृप्त करें, सुख दें, वे० । ६

उप श्रेष्ठा न आशिषो देवयोर्धामन्नस्थिरन् । स्तौमि देवं सवितारं च वायुं तौ ०॥७

७६४ दोनों देवों के धामों में हमारी श्रेष्ठ कामनाएँ स्थिर हों, मैं सूर्य-वायु-गुण वर्णन करता हूं । ७

प्रपाठक ८, अनुवाक ६ (सूक्त २६-३०)

महर्षि दयानन्द के अनुसार विषय— ईश्वर-प्रार्थनादि-मरुत्-सर्वकल्याणार्थेश्वरादि पदार्थविद्या

सूक्त २६ । द्यावापृथिवी

७६५ मन्वे वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ सचेतसौ ये अप्रथेथाममिता योजनानि ।
प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ १

द्यावा-पृथ्वी! तुम्हारा मनन करताहूं, तुम सुभोग-दाता समान-चित्त,अनन्त योजन फैले, वसु-प्रतिष्ठा हो । १

७६६ प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां प्रवृद्धे देवी सुभगे उरूची ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः॥ २

हे द्यावा-पृथिवी ! तुम ८ वसुओं के आश्रय हो, तुम दोनों मेरे लिए सुखद होओ, पाप से छुड़ाओ । २

७६७ असंतापे सुतपसौ हुवेऽहमुर्वी गम्भीरे कविभिर्नमस्ये । द्यावा ० ॥ ३

७६७- हे द्यावा-पृथिवी ! संताप-रहित, सु-तपस्वी, विशाल गम्भीर, कवियों से नमस्करणीय, तुम्हें मैं पुकारता हूं, तु म० । ३

७६८ ये अमृतं बिभृथो ये हवींषि ये स्रोत्या बिभृथो ये मनुष्यान् । द्यावा० ॥ ४

७६८- जो अमृत को धारण करते हैं, जो अन्नों का पोषण करते हैं जो स्रोतों-नाड़ियों-मनुष्यों को धारण करते हैं वे तु म० । ४

७६९ ये उस्रिया बिभृथो ये वनस्पतीन् ययोर्वां विश्वा भुवनान्यन्तः । द्यावा० ॥५

७६९- जो गौओं, वनस्पतियों का पालन करते हैं जिन दोनों के बीच में सब भुवन स्थित हैं वे० । ५

८०० ये कीलालेन तर्पयथो ये घृतेन याभ्यामृते न किंचन शक्नुवन्ति । द्यावा ०॥६

८००- जो अन्न-घी से तृप्त करते हैं, जिनके बिना मनुष्य कुछ नहीं कर सकते ऐसे द्यावापृथि० । ६

८०१ यन्मेदमभिशोचति येनयेन वा कृतं पौरुषेयान्न दैवात् ।
स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ ७

८०१- जो किसी कारण से पुरुष के माध्यम से किया यह कर्म मुझे शोक-युक्त करता है वह दैव से नहीं, पीड़ित मैं द्यौ-भूमि के गुण बताता हूँ और बार-बार पुकारता हूँ, दोनों इमें पाप से छुड़ायें ।७

सूक्त २७ मरुतः (प्राण, मानसून हवाएँ, सैनिक)

❀ ते नो मुञ्चन्त्वंहसः (सूक्त के ७ मन्त्रों के अन्त में) वे हमें पाप-कष्ट से बचायें ❀

८०२ **मरुतां मन्वे अधि मे ब्रुवन्तु प्रेमं वाजं वाजसाते अवन्तु ।**
आशूनिव सुयमानह्व ऊतये ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १

८०२ मरुतों का मनन करूँ, वे मेरे लिए बोलें, अन्न-दान में इसकी रक्षा करें, वश में किये अश्वों के समान उन्हें रक्षार्थ पुकारता हूं । वे हमें पाप-कष्ट से मुक्त करें । १

उत्समक्षितं व्यचन्ति ये सदा य आसिञ्चन्ति रसमोषधीषु,पुरो दधे मरुतः पृश्निमातृं स्ते० ॥२

३.अक्षय प्रवाह-ओषधियों में रस भरनेवाले. विद्युत् रूपी मातावाले मरुतों को मैं सम्मुख रक्खू वे० ।२

पयो धेनूनां रसमोषधीनां जवमर्वतां कवयो य इन्वथ । शग्मा भवन्तु मरुतो नः स्योनास्ते० ।

८०४. गौओं में दूध; औषधियों में रस, अश्वो में वेग भरनेवाले शक्तियुक्त मरुत हमें सुखप्रद हों; वे ० । ३

अपः समुद्राद्दिवमुद्वहन्ति दिवस्पृथिवीमभि ये सृजन्ति, ये अद्भिरीशाना मरुतश्चरन्ति, ते०। ३

८०५. जो मरुत समुद्र से पानी द्यौपर लेजाते, द्यौ से भूमि पर छोड़ते, पानी के साथ चलते हैं वे० । ४

ये कीलालेन तर्पयन्ति ये घृतेन ये वा वयो मेदसा संसृजन्ति, ये अद्भिरीशाना मरुतो वर्षयन्ति०४

८०६ जो मरुत अन्न-पानी-घी से तृप्त करते,पोषकचर्बी से आयु बढ़ाते, पानीके ईश होकर बरसते हैं ० । ५

यदीदिदं मरुतो मारुतेन यदि देवा दैव्येनेदृगार । यूयमीशिध्वे वसवस्तस्य निष्कृतेस्ते०॥६

८०७ हे दिव्य वसु मरुतो! यदि यह कष्ट प्राण-वायु-विकार से या दैवी हुआ हमें मिला हो तो भी तुम उसे दूर करने में ईश हो । ऐसे वे हमें कष्ट से छुड़ायें । ६

तिग्ममनीकं विदितं सहस्वन्मारुतं शर्धः पृतनासूग्रम् । स्तौमि मरुतो नाथितो जोहवीमि ते ०।

८०८ सेनाओं में मरुतों का बल तीक्ष्ण-सहनशील-उग्र ज्ञात है, दुःखी मैं उन्हें सराहता-पुकारता हूं वे०७

सूक्त २८ । भव-शर्व । (उत्पादक-संहारक, ऋण-धन, पाज़िटिव-निगेटिव शक्तियाँ)

❀ तौ नो मुञ्चतमंहसः (सूक्त २८-२९ के १४ मन्त्रों का अन्तिम पाद) दोनों हमें पाप-मुक्त करें ❀

८०९ **भवाशर्वौ मन्वे वां तस्य वित्तं ययोर्वामिदं प्रदिशि यद् विरोचते ।**
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ १

भव-शर्व का मैं मनन करता हूँ,यह जगत् तुम दोनों के निर्देश में प्रकाशित है, उसे जानते हो, जितने दुपाये मनुष्य और चौपाए पशु हैं उनके ईश हो वे तुम दोनों हमें पाप-कष्ट से मुक्त करो । १

८१० **ययोरभ्यध्व उत यद्दूरे चिद्यौ विदिताविषुभृतामसिष्ठौ । याव० ॥ २**

जिनके अधीन यह दूर-निकट सब कुछ है,जो प्रेरक-धारकों में शक्तियुक्त ज्ञात हैं, जितने०(पूर्ववत्)। २

८११ **सहस्राक्षौ वृत्रहणा हुवे ऽहं दूरेगव्यूती स्तुवन्नेम्युग्रौ । याव० ॥ ३**

हजारों आँखों-युक्त(द्रष्टा)!विघ्न-नाशक,दूरतक इन्द्रिय-शक्तियुक्त दोनोंके गुण बताता हूँ, जितने०।३

८१२ **यावारेभाथे बहु साकमग्रे प्रचेतदस्राष्ट्रमभिभां जनेषु । याव० ॥४**

जिन्होंने आगे बहुत कार्य एक-साथ आरम्भ किये, मनुष्यों में प्रतिभा दी, जितने० । ४

८१३ **ययोर्वधान्नापपद्यते कश्चनान्तर्देवेषूत मानुषेषु । याव० ॥ ५**

जिनके आघात से मनुष्यों और देवों में कोई नहीं बच पाता, जितने० । ५

८१४ यः कृत्याकृन्मूलकृद् यातुधानो नि तस्मिन् धत्तं वज्रमुग्रौ। याव० ।। ६

जो कृत्याकारी-मूलछेदक-पीडाकारी हो उसपर उग्र तुम दोनों वज्र गिराओ। जितने०(पूर्ववत्) । ६

८१५ अधि नो ब्रूतं पृतनासूग्रौ सं वज्रेण सृजतं यः किमीदी ।
स्तौमि भवाशवौ नाथितो जोहवीमि तौ० ।। ७

युद्धों में उग्र भव-शर्व हमें बतायें, जो खाऊ हो उसे वज्र से दण्डित करें। पीडित मैं उनके गुण बताता और बार-बार बुलाता हूँ, वे दोनों हमें पाप-कष्ट से छुड़ायें। ७

सूक्त २६, मित्रावरुण (प्राण-अपान, न्याय-दण्डाधीश)

८१६ मन्वे वां मित्रावरुणावृतावृधौ सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे ।
प्र सत्यावानमवथो भरेषु तौ नो ० ।। १

मैं मित्र-वरुण को ऋत-वर्धक-समान-ज्ञान मानता हूँ जो युद्धोंमें द्रोही-ताडक, सत्यवान्-रक्षक हैं वे०। १

८१७ सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे प्र सत्यावानमवथो भरेषु ।
यौ गच्छथो नृचक्षसौ बभ्रुणा सुतं तौ ० ।। २

सचेत जो संग्रामों में द्रोही को हटाते, सत्यवान् की रक्षा करते, मनुष्यों के निरीक्षक होकर उत्पन्न जगत् में पोषक शक्ति के साथ पहुंचते हैं वे दोनों न्यायाधीश-दण्डाधीश हमें पापमुक्त करें। २

८१८ यावङ्गिरसमवथो यावगस्तिं मित्रावरुणा जमदग्निमत्रिम् ।
यौ कश्यपमवथो यौ वसिष्ठं तौ ० ।। ३

जो अङ्ग-रस-विद्वान्, पाप-नाशक, अग्निहोत्री; गतिशील, द्रष्टा, जितेन्द्रिय के रक्षक हैं वे०। ३

८१९ यौ श्यावाश्वमवथो वध्र्यश्वं मित्रावरुणा पुरुमीढमत्रिम् ।
यौ विमदमवथः सप्तवध्रिं तौ ० ।। ४

जो ज्ञान-ध्यानी, मितहारी, धनी, उद्योगी, मद-रहित, ७ इन्द्रियों के जेता के रक्षक हैं वे ०। ४

८२० यौ भरद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरं विश्वामित्र वरुण मित्र कुत्सम् ।
यौ कक्षीवन्तमवथः प्रोत कण्वं तौ० । ५

जो [illegible] और मेधावी के रक्षक हैं वे ०। ५

८२१ यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकं मित्रावरुणावुशनां काव्यं यौ ।
यौ गोतममवथः प्रोत मुद्गलं तौ ० ।। ६

जो मेधावान्, मन-वचन-कर्म तीनों से पवित्र, संयमी कवि, अत्यधिक गतिशील आत्म-ज्ञानी और आनन्द-मग्न जीवन्मुक्त की रक्षा किया करते हैं वे दोनों मित्र-वरुण हमें पाप से छुड़ायें। ६

८२२ ययो रथः सत्यवर्त्मर्जुरश्मिर्मिथुया चरन्तमभि याति दूषयन् ।
स्तौमि मित्रावरुणौ नाथितो जोहवीमि तौ० ।। ७

जिनका सच्चा सरल प्रगतिशील व्यवहार मिथ्याचारी पर आक्रमण कर पराजित करता है उन दो मित्र-वरुण के गुण वर्णन करता हुआ सन्तप्त मैं प्रार्थना करता हूँ कि दोनों हमें पाप से मुक्त करें। ७

[१८ ऋषियों ने अपने अपने नाम यह सूक्त देखकर ही रक्खे होंगे— सम्पादक]

सूक्त ३० । वाक् । राष्ट्री–ईश्वरी शक्ति

८२३ अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥ १

मैं राष्ट्री शक्ति रुद्(प्राण आदि ११, क्षत्रिय), वसु(पृथ्वी आदि ८, वैश्य), आदित्य(१२ मास, ब्राह्मण) सब देवों के साथ गति करती, दोनों मित्र–वरुण, इन्द्र–अग्नि दोनों अश्विओं को धारण करती हूँ । १

८२४ अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तः ॥ २

मैं राष्ट्री धन–ज्ञान की दात्री, पूज्यों में प्रथम उस मुझे देव अनेक प्रकार प्रयुक्त धारण करते हैं । २

४२५ अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम् ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ ३

मैं ही देवों-मनुष्यों से मानी यह बात स्वयं कहती, जिसे चाहती उसे उग्र–ब्रह्मा–ऋषि–सुमेधा बनाती हूं ।

८२६ मया सो ऽन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि ॥ ४

मेरे द्वारा वह अन्न खाता है जो देखता-प्राण रखता–कहे को सुनता है । मुझे न मानने वाले वे नष्ट हो जाते हैं । हे श्रोता ! सुन । मैं तुझे श्रद्धेय बात कहती हूँ । ४

८२७ अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥ ५

मैं ब्रह्म–द्वेषी–हिंसक के मारने को क्षत्रिय के लिए धनुष आदि शस्त्रों को फैलाती, मैं भक्त के लिए आनन्दित करती और द्यावा–पृथ्वी में प्रविष्ट हूँ । ५

८२८ अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणा हविष्मते सुप्राव्या यजमानाय सुन्वते ॥ ६

मैं प्राप्तियोग्य सोम, शिल्पी–पोषक–ऐश्वर्य को दानी–विद्वान् यज्ञकर्ता को उत्तम धन देती हूं । ६

८२९ अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनानि विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि । ७

मैं इस राष्ट्र के सिर के समान पालक(राष्ट्रपति)को बनाती हूँ मेरा घर अन्तरिक्ष–समुद्र के अन्दर है इससे सब भुवनों में स्थित हूँ और आकाश को अपने ऐश्वर्य से सम्पर्क में रखती हूँ । ७

८३० अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिम्ना सं बभूव ॥ ८

मैं ही वायु के समान सब भुवन बनाती हुई चलती रहती हूँ । इस द्यौ और भूमि से परे तक अपनी महिमा से इतनी महती हो रही हूँ । ८

प्रपाठक९ अनुवाक७ (सूक्त ३१ से ३५ तक)

महर्षि के अनुसार विषय— एकेश्वरप्रार्थना-शत्रुविजयार्थ-मृत्यु निवारणार्थादि-पदार्थविद्या

सूक्त ३१। मन्यु ! सेनापति

८३१ त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणा हृषितासो मरुत्वन् ।
तिग्मेषव आयुधा संशिशाना उप प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः ॥ १

८३२ अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि।
हत्वाय शत्रून् वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व ।। २

हे मन्यु ! सैनिकयुक्त तेरे द्वारा रथ-सहित, तोड़-फोड़ करते, हृष्ट, हर्षित करते, तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रयुक्त, शस्त्र तेज करते हुए अग्नि-रूप(तोप-गन-बन्दूक-बाम्ब आदि लिये हुए)नेता सैनिक शत्रु पर चढ़ाई करें।१
हे मन्यु! अग्निवत् तेज होकर सहन कर, हे बली! बुलाया तू हमारा सेनानी हो, शत्रुओं को मार कर धन बाँट, ओज को बनाये रख कर शत्रुओं को दूर भगा ।

८३३-८३४ सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मै रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून् । उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयासा एकज त्वम् । ३। एको बहूनामसि मन्य ईडिता विशं-विशं युद्धाय संशिशाधि । अकृत्तरुक् त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्मसि ।। ४

हे मन्यु! इसके लिए शत्रु दबा, शत्रु कुचला-रौंदता-मारता चढ़ाई कर । वे तेरा उग्र बल न रोक सकें वश में करने वाला अकेला तू उन्हें वश में ले आ। ३। हे मन्यु ! तू एक ही बहुतों को पर्याप्त और स्तुत्य है, प्रत्येक मनुष्य को युद्ध की शिक्षा दे, हे अटूट-यश ! तेरे साथ हम विजयार्थ हर्षयुक्त घोष करें। ४

८३५-८३६ विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवोऽस्माकं मन्यो अधिपा भवेह। प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ । ५। आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्षि सहभूत उत्तरम् । क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्येधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि ॥ ६

हे इन्द्रवद् जेता-सुवक्ता-बली मन्यु!हमारा स्वामी हो,तेरा प्रिय नाम लेते, स्रोत जानते हैं जहाँसे तू हुआ ।५।
हे वज्र-बाण-सम्पत्तियुक्त-सहनशील! तू उत्तम बल रखताहै,हे बहुतोंसे पुकारा! संग्राममें कर्मसे मित्रहो

८३७ संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं धत्तां वरुणश्च मन्युः ।
भियो दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम् ॥ ७

वरुण-मन्यु हमें एकत्रादित-संगृहीत दोनों धन दें, हृदयों में भय लिए हुए शत्रु पराजित होकर भागें। ७

सूक्त ३२। मन्यु

८३८-८३९ यस्ते मन्यो ऽविधद्वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक् । साह्याम दासमार्यं त्वया युजा वयं सहस्कृतेन सहसा सहस्वता । १। मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः । मन्युर्विश ईडते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः ॥२

हे वज्र-बाण-मन्यु ! जो तेरी सेवा करता है वह सहनशीलता-ओज सब को लगातार पुष्ट करता है, बल-बर्धक-विजयी तुझ सहायक के साथ हम दास-आर्य (नीच-श्रेष्ठ)दोनों का निर्णय करें। १
मन्यु, ऐश्वर्यशाली-सुखद देव-होता-जातवेदाः है, उसे मानुषी प्रजा सराहती है, तू तपसे हमें बचा। २

८४०-८४१ अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान् तपसा युजा विजहि शत्रून् । अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः ॥ ३ । त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयम्भूर्भामो अभिमातिषाहः । विश्वचर्षणिः सहुरिः सहीयानस्मास्वोजः पृतनासु धेहि ॥ ४

हे मन्यु! महान् से महान् तू तप से युक्त हो शत्रु-नाश कर; शत्रु-विघ्न-दस्यु-नाशक तू हमें सब धनदे । ३ मन्यु! बलयुक्त-स्वम्भू तेजोयुक्त-अभिमानीनाशक -विश्वद्रष्टा-शक्तिमान्-बलवान् तू युद्धोंमें ओज दे

८४२-८४३ अभागः सन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः । तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीडाहं स्वा तनूर्बलदावा न एहि । ५ । अयं ते अस्म्युप न एह्यर्वाङ् प्रतीचीनः सहुरे विश्वदावन् । मन्यो वज्रिन्नभि न आ ववृत्स्व हनाव दस्यूंरुत बोध्यापेः ॥ ६

हे होशयुक्त मन्यु! तुझ बली के कर्मसे हटा अभागा मैं तुझे क्रुद्ध कर देता हूं तू हमें बलदाता हो मित्र । ५ मैं तेरा हूं, बली-दाता ! तू सहायक हमारा ... ; आ ... मन्यु ... पहचान, हम दस्युओं को मारें । ६

८४४ अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा नोऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभावुपांशु प्रथमा पिबाव ॥ ७

आगे बढ़ ; अनुकूल हो,हम विघ्नोंको नष्ट करें अपना मधुर दूध तुझे देता हूं हम दोनों एकान्त में पियें । ७

सूक्त ३३ । अग्नि । पाप धोने की प्रार्थना
[यह सूक्त कुछ भेदसे ऋ १.९७ में है]

८४५ अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् । अप नः शोशुचदघम् ॥ १

हमारा पाप धुलकर दूर हो । हे अग्नि(ईश्वर; अग्रगी नेता)! धन पवित्र कर । हमारा पाप दूर हो । १

८४६ सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे । अप० ॥ [पूर्ववत्] २

उत्तम क्षेत्र, अच्छी भूमि, और धन के लिए हम यज्ञ-सङ्गठन करें । हमारा०२(यह आठों मन्त्रों में है)

८४७ प्र यद् भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः । अप० ॥ ३

हमारे विद्वान् प्रकृष्ट हों । उनमें मैं कल्याणी बनूँ । ३

८४८ प्र यत् ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् । अप० ॥ ४

हे अग्रणी ! जैसे तेरे विद्वान् हैं वैसे ही हम तेरे हों । ० ४

८४९ प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः । अप० ॥ ५

क्योंकि बलवान् अग्नि की लपटें सब ओर फैलती हैं अतः ० ।५

८५० त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतो परिभूरसि अप ० ॥ ६

हे सब ओर मुख वाले ! निश्चय ही तू सब ओर व्यापक है ० । ६

८५१ द्विषो नो विश्वतोमुखातिनावेव पारय । अप ॥ ७

हे विश्वतोमुख ! नाव के तुल्य तू हमें द्वेषियों से पार कर ० । ७

८५२ स नः सिन्धुमिव नावाति पर्षा स्वस्तये । अप नः शोशुचदघम् ॥ ८

तू हमें कल्याण के लिए जहाज से समुद्र के तुल्य पार कर दे ।हमारा पाप धुलकर दूर हो । ८

सूक्त ३४ । ओदन (प्रजापति । अन्न । वीर्य । ज्ञान)

८५३-८५४ **ब्रह्मास्य शीर्षं बृहदस्य पृष्ठं वामदेव्यमुदरमोदनस्य । छन्दांसि पक्षौ मुखमस्य सत्यं विष्टारी जातस्तपसोऽधि यज्ञः ॥ १ ॥ अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम् । नैषां शिश्नं प्रदहति जातवेदाः स्वर्गे लोके बहु स्त्रैणमेषाम् ॥ २**

वेद इस ओदन का सिर, बृहत् साम पीठ, वामदेव्य साम उदर, छन्द पक्ष, सत्य मुख है । यह विस्तारी यज्ञ तप से ऊपर प्रकट हुआ है । १

स्थिर-पवित्र-प्राणायाम से शुद्ध-प्रकाशमान ही पवित्र लोक(मोक्ष) को पाते हैं । काम की आग इनका शिश्न नहीं जलाती । स्वर्गलोक(गृहस्थ)में इन्हें बहुत स्त्री-सुख (पत्नी आदि)होता है । २

८५५-५६ **विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनानवर्तिः सचते कदाचन । आस्ते यम उप याति देवान्त्सं गन्धर्वैर्मदते सोम्येभिः ॥ ३ ॥ विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनान्यमः परि मुष्णाति रेतः । रथी ह भूत्वा रथयान ईयते पक्षी ह भूत्वाति दिवः समेति ॥ ४**

जो विस्तारी ओदन (अन्न-भात) पकाते/पचाते हैं इन्हें गरीबी कभी नहीं होती । जो यम-नियम पालता है वह दिव्य गुण पाता और शान्त विद्वानों के साथ आनन्द पाता है । ३

जो विस्तारी ओदन (वीर्य) पचाते हैं उनका वीर्य यम(मृत्यु) नहीं चुराता । वह रथी होकर यान पर बैठता और पंखों (विमान)से युक्त होकर द्यौ तक उड़ता है । ४

८५७. **एष यज्ञानां विततो वहिष्ठो विष्टारिणं पक्त्वा दिवमा विवेश, आण्डीकं कुमुदं सं तनोति बिसं शालूकं शफको मुलाली । एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥ ५**

यह यज्ञों का प्रसिद्ध श्रेष्ठ पुरुष विस्तारी को पचाकर द्यौ में प्रवेश करता है, कमल मखाना-कुमुद-कमलककड़ी बादाम आदि शालूक-शफक-मुलाली आदि फल फैलाता है । सुख की दशा में ये सब मधुर धाराएँ और पोषणवाली शक्तियाँ तथा कमल-भरे तालाब तुझे मिलें । ५

८५८. **घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना । एतास० (पूर्ववत्) ॥ ६**

घी-मिठाई-फल-दूध-शुद्ध जल-दही-पूर्ण कलश मिलें । सुख की ० । ६

८५९. **चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि क्षीरेण पूर्णां उदकेन दध्ना । एतास० ,, ॥ ७**

दूध-जल-दही-भरे ४ घड़े घरमें ४ ओर रहें । ४ आश्रमों में ४ पुरुषार्थ (धर्मार्थकाममोक्ष)हों । सुख० । ७

८६०. **इममोदनं नि दधे ब्राह्मणेषु विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम् । स मे मा क्षेष्ट स्वधया पिन्वमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघा मे अस्तु ॥ ८**

इस विस्तारी लोकजयी सुखद ओदन को मैं वेदज्ञ में रखता हूं । अपनी धारक शक्ति से बढ़ता यह मुझे हानि न करे, कभी कम न हो । यह विश्वरूप वेद-गौ मेरी कामना के पूरक हो । ८

सूक्त ३५ । ओदन(ज्ञान) । ७ मन्त्रों का अन्तिमांश— तेनौदनेनातितराणि मृत्युम्

८६१. **यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत् । यो लोकानां विधृति-**

नाभिरेषात् तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥ १ । येनातरन् भूतकृतोऽतिमृत्युं यमन्वा-

विन्दन् तपसा श्रमेण । यम्पपाच ब्रह्मणे ब्रह्म पूर्वं तेनौदनेनाति० (पूर्वगत्) ॥ २

जिसे सृष्य के प्रथम उत्पादक प्रजापति ने तप से वृक्ष पानेके लिए पकाया, जो लोक-धारक कभी नहीं घटता उस ओदन(ईश्वर-ज्ञान-भात)से मैं मृत्यु को पार करूँ । १(अन्तिम पाद १- ७ मन्त्रोंमें समान है

८६२- जिससे प्राणी मौत पार करते हैं जिसे तप-श्रम से पाते हैं, जिसे ब्रह्म ने वेदज्ञ को दिया उस० । २

यो दाधार पृथिवीं विश्वभोजसं यो अन्तरिक्षमापृणाद्रसेन,यो अस्तभ्नाद्दिवमूर्ध्वो महिम्ना ते०

८६३ जो सबकी भोजनदात्री पृथ्वी धारण करता, अन्तरिक्ष रससे भरता, ऊँचा सूर्य ठहराता उस० । ३

८६४ यस्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदराः संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः ।

अहो रात्रा यं परियन्तो नापुस् ते ० ॥ ४

८६४- जिससे ३० अरों(भागों)के मास, १२ अरोंका वर्ष बना, जिसे घूमते दिनरात नही पाते उस० । ४

यःप्राणदः प्राणदवान्बभूव यस्मै लोका घृतवन्तःक्षरन्ति । ज्योतिष्मतीःप्रदिशो यस्य सर्वास्ते०

८६५- प्राणद जो प्राणद(सूर्यादि)वाला है जिसके लिए लोक झरते, सब दिशाएँ प्रकाशित हैं उस ०। ५

यस्मात्पक्वादमृतं सम्बभूव यो गायत्र्या अधिपतिर्बभूव, यस्मिन्वेदा निहिताविश्वरूपास्ते०

८६६-जिस पक्व से अमृत निकला, जो गायत्री का पति है जिसमें सबके निरूपक वेद रहते हैं उस० । ६

८६७ अव बाधे द्विषन्तं देवपीयुं सपत्ना ये मेऽप ते भवन्तु ।

ब्रह्मौदनं विश्वजितस्पचामि शृण्वन्तु मे श्रद्दधानस्य देवाः ॥ ७

८६८- देव-हिंसक द्वेषीको मैं हटा दूँ, जो मेरे शत्रु हैं वे दूर हों, मैं विश्वजयी ब्रह्मौदन पकाता/पचाता हूं, मुझ सच्चे श्रद्धालु की बात सब विद्वान् सुनें । ७

अनुवाक ८, सूक्त ३६ से ४० तक

महर्षि दयानन्द के अनुसार विषय— ईश्वर--पिशाच-ओषधि-वीर्यप्रापणादि पदार्थों विद्या

सूक्त ३६ । अग्नि । (परमात्मा, अग्रणी नेता, न्याय-दण्डाधिकारी)

तान्सत्यौजाः प्रदहत्वग्निर्वैश्वानरो वृषा । यो नो दुरस्याद्दिप्साच्चाथो यो नो अरातियात् ॥१

८६८- वह सत्य ओज वाला-अग्रणी-पथ का नेता-सुख वर्षक (परमात्मा और दण्डाधिकारी) उन्हें दण्डित करे जो हमें बुरी दशा में डाले, पीडित करे और शत्रुता करे । १

यो नो दिप्सददिप्सतो दिप्सतो यश्च दिप्सति । वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोरग्नेरपि दधामि तम् ॥२

८६९- हममें जो अदोषीको मारे,दोषीको स्वयं दण्ड दे उनेमें वैश्वानर अग्रणीकी दाढ़ों(न्याय)में रखूँ । २

य आगरे मृगयन्ते प्रतिक्रोशेऽमावास्ये । क्रव्यादो अन्यान् दिप्सतः सर्वांस्तान्त्सहसा सहे ॥३

८७०- जो घर में अमावसके अँधेरे में घुसते, मांसभक्षी अन्यों को कष्ट देते उन सबको बल से जीतूँ । ३

सहे पिशाचान्त्सहसैषां द्रविणं ददे । सर्वान् दुरस्यतो हन्मि सं म आकूतिर्ऋध्यताम् ॥ ४

८७१- मैं रक्तपायियों का बल से दमन करूँ,इनका धन लेलूँ, दुष्टोंको दण्ड दूँ, मेरा प्रण पूरा हो । ४

ये देवास्तेन हासन्ते सूर्येण मिमते जवम् । नदीषु पर्वतेषु ये सं तैः पशुभिर्विदे ॥ ५

८७२- जो देव विनोद करते, सूर्यवत् राजासी मिले रहते, उनसे नदी-पर्वतोंपर दोषी का पता लगाऊँ ।५

तपनोअस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोमतामिव, श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दन्तो न्यंचनम्॥६

८७३- गोपालोंको व्याघ्रवत् मैं क्रूरोंको दण्ड-दाता हूं,मुझे देखकर वे छिप नहीं पाते जैसे शेर देख कुत्ता ।६

न पिशाचैः संशक्नोमि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः । पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे ॥७

८७४ मैं डाकू-चोर-लुटेरों के साथ नहीं रह सकता, डाकू उस गाँव से भाग जाते हैं जहाँ मैं घुसता हूं।

यं ग्राममाविशत इदमुग्रं सहो मम । पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते ॥ ८

८७५ यह मेरा उग्र बल जिस गाँव में घुसता है वहाँ से डाकू भाग जाते और पाप नहीं करते । ८

ये मा क्रोधयन्ति लपिता हस्तिनं मशका इव । तानहं मन्ये दुर्हितान्जने अल्पशयूनिव ॥ ९

८७६ हाथी को मच्छरके समान मुझे जो बकवादी क्रोध दिलाते हैं उन्हें जनोंमें कीटवत् दुःखद मानता हूं।

अभि तं निर्ऋतिर्धत्तामश्वमिवाश्वाभिधान्या, मल्वो यो मह्यं क्रुध्यति स उ पाशान्न मुच्यते॥१०

८७७ जैसे लगाम घोड़े को वीसे ही दुःख दुष्टको बाँध ले, जो दुष्ट मुझसे क्रोध करे वह पाशसे न छूटे ।

सूक्त ३७ । अजशृङ्गी आदि औषधियाँ

त्वया पूर्वमथर्वाणो जघ्नू रक्षांस्योषधे । त्वया जघान कश्यपस्त्वया कण्वो अगस्त्यः ॥ १

८७८ हे औषधि!तेरे द्वारा पहले अथर्ववेदी, फिर कश्यप(सूर्य और माइक्रास्कोप से देखनेवाला),कण्व (मेधावी) और अगस्त्य (सूर्य-समान तेजस्वी बड़ा वैद्य) रोग-क्रिमियों को मारा करते हैं। १

त्वया वयमप्सरसो गन्धर्वांश्चातयामहे । अजश्रृङ्गचज रक्षः सर्वान्गन्धेन नाशय ॥ २

८७९ हे काकड़ाशृङ्गी! हम तेरे द्वारा पानी-भूमि-वायुके क्रिमि मारें, अपनी गन्धसे सब क्रिमि नाश कर ।

नदीं यन्त्वप्सरसो ऽपां तारमवश्वसम् । गुलगुलूः पीला नलद्यौक्षगन्धिः प्रमन्दनी ।
तत्परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ३

८८० पानीमें फैलनेवाले क्रिमि जलभरी-वेगवती नदी में बहा दिये जायँ । गूगल-पीला(चूँटी-फल) नलदा (जटामांसी)-औक्षगन्धि (ऋषभक-गन्धमांसी)-प्रमन्दनी(प्रमोदनी-मल्लिका-धातकी = धावई) ये ५ औषधियाँ हैं अतः तुम दूर भागो । हे अप्सराओ(जल और प्रजा के रोगो) ! तुम पहचाने गये हो । ३

८८१ यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखण्डिनः । तत्० (पूर्ववत्) ॥ ४

८८१ जहाँ पीपल-बड़-शिखण्डी(गुञ्जा-चूडामणि-काकमाची) महावृक्ष हैं अतः ०। ४

८८२ यत्र वः प्रेङ्खा हरिता अर्जुना उत यत्राघाटाः कर्कर्यः संवदन्ति । तत्० ॥५

८८२ जहाँ तुमको हिलनेवाले हरे अर्जुन-आघाट-कर्करी(कोह-अपामार्ग-कांकड़ी)पेड़ हैं अतः ०। ५

८८३ एयमगन्नोषधीनां वीरुधां वीर्यावती । अजशृंग्यराटकी तीक्ष्णश्रृङ्गी व्यृषतु ॥ ६

८८३ विशेष उगी औषधियों में बलयुक्त यह अजशृङ्गी आई, रोगनाशक तीक्ष्णशृंगी रोग हटाये। ६

८८४. आ नृत्यतः शिखण्डिनो गन्धर्वस्याप्सरापतेः । भिनद्मि मुष्कावपि यामि शेपः ॥७

८८४ नाचते-चोटीवाले-गाते-गन्ध के अनुगामी-नारी-जल-क्रिमि के पति रोग-जन्तु के अण्ड-कोश और प्रजनन अंग को मैं वैद्य तोड़ कर नष्ट करदूँ (कि क्रिमि पैदा ही न हों)। ७

८८५.भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीरयस्मयीः,ताभिर्हविरदान्गन्धर्वानवकादान्व्यृषतु ॥८

८८६ भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीर्हिरण्ययीः । ताभि० (पूर्ववत्) ॥ ९

८८३ बिजलीकी भयानक अस्त्र-समान सैंकड़ों लौहमयी किरणें हैं उनसे अन्न-काई-भक्षी कीट मारती है। ८
८८४ सूर्य की ,, सुनहरी ,, मारता है। ९

८८७. अत्रकादानभिशोचानप्सु ज्योतय मामकान्, पिशाचान्सर्वानोषधे प्रमृणीहि सहस्र च

८८७ हे औषधि! काई-भक्षक, सब ओर जलन करनेवाले मेरे रुधिर के सब क्रिमि जला, मार, दबा १०

८८८ श्वेवैकः कपिरिवैकः कुमारः सर्वकेशकः । प्रियो दृश इव भूत्वा गन्धर्वः सचते स्त्रियस्तमितो नाशयामसि ब्रह्मणा वीर्यावतः ॥ ११

८८८ एक क्रिमि कुत्ता के, कोई बन्दर के, कोई केश-रक्खे कुमार के तुल्य प्रियदर्शन होकर शाता-गन्धवाला स्त्रियों के निकट जाता है उसे हम शक्तिशाली ब्राह्मी द्वारा यहाँ से नष्ट कर दें। ११

जाया इद्वो अप्सरसो गन्धर्वाः पतयो यूयम् । अप धावतामर्त्या मर्त्यान्मा सचध्वम् ॥ १२

८८९ हे गन्धर्व क्रिमियो ! तुम पति और तुम्हारी पत्नियाँ अप्सरा (पानीमें सरकनेवाली) हैं। मनुष्यों-से पृथक् होकर भाग जाओ। मनुष्यों को मत पकड़ो। १२

सूक्त ३८। अप्सरा (कार्य-रत उत्तम गृहिणी)

उद्भिन्दतीं संजयन्तीमप्सरां साधुदेविनीम्, ग्लहे कृतानि कृण्वानामप्सरां तामिह हुवे ॥१

८९१ विचिन्वतीमाकिरन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् । ग्लहे कृतानि गृह्णानामप्सरां० ॥२

८९० शत्रु-भेदिनी विजयिनी अच्छे व्यवहारयुक्त प्रतियोगितामें कार्य करती अप्सराको यहाँ बुलाऊँ। १
८९१ संचयी दानी सु-व्यवहारकुशल ,, लेती ,, । २

८९२ यायैः परिनृत्यत्ययाददाना कृतं ग्लहात् । सा नः कृतानि सीषती प्रहामाप्नोतु मायया । सा नः पयस्वत्यैतु मा नो जैषुरिदं धनम् ॥ ३

८९२ शुभ गतियों से नाचती हुई अनुग्रह में कार्य लेती हुई, कर्म नियमित करती हुई वह बुद्धि-द्वारा प्रगति पाये। वह दुग्ध-जल-युक्त आये। अन्य लोग यह धन न जीतपायें। ३

या अक्षेषु प्रमोदन्ते शुचं क्रोधं च बिभ्रती । आनन्दिनीं प्रमोदिनीमप्सरां तामिह हुवे ॥ ४

८९३ शोक-क्रोध रखती भी जो आँखों में हर्ष रखती है उस आनन्दिनी-प्रमोदिनी अप्सराको आदर दूं।

सूर्यस्य रश्मीननु याः संचरन्ति मरीचीर्वा या अनुसंचरन्ति, यासामृषभो दूरतो वाजिनीवान्त्सद्यः सर्वान्लोकान्पर्येति रक्षन्, स न ऐतु होममिमं जुषाणोऽन्तरिक्षेण सह वाजिनीवान् ॥

८९४ जो सूर्यकी रश्मियों में अनुकूल चलतीं, और किरणें जिनके पीछे चलतीं, जिनकी रक्षा करता हुआ बलयुक्त श्रेष्ठ पुरुष दूरसे शीघ्र सब लोगों को घेरता आता है वह (वर) इस होम (स्वय वर) को सेवन करता हुआ आन्तरिक विचार से अन्तरिक्ष (वायुयान) से हमारे निकट यहाँ आये। ५

८९५-८९६. अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन् कर्की वत्सामिह रक्ष वाजिन् । इमे ते स्तोका बहुला एह्यर्वाङियं ते कर्कीह ते मनोस्तु ॥६ अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन्कर्की वत्सामिह रक्ष वाजिन् । अयं घासो अयं वृज इह वत्सां निबध्नीमः । यथानाम व ईश्महे स्वाहा ॥ ७

८९५ [पिता बोले- [हे अन्तरिक्ष (-यान) के साथ अन्न-युक्त बली ! तू कर्मशीला ज्योतिष्मती बच्ची की रक्षा कर। ये तेरे अनुग्रह बहुत हैं, यहाँ आ, यह तेरी कर्की (शुभ्रा) है। यहाँ तेरा मन हो। ६

८९६ हे बली ! तू गौ की बछिया की भी रक्षा कर। यह घास है यह गोठ, यहाँ बछिया बाँधते हैं। नाम के अनुसार हम तुम्हें ईश बनाते हैं। यह उत्तम वचन (आशीर्वाद) है। ७

सूक्त ३९। अग्नि–वायु–आदित्य–चन्द (समृद्धि की प्राप्ति)

पृथिव्यामग्नये समनमन्त्स आर्ध्नोत्, यथा पृथिव्यामग्नये समनमन्नेवा मह्यं संनमः संनमन्तु ॥

८९७ पृथ्वी पर अग्नि के लिए लोग झुकते हैं, यह बढ़ाता है उसके समान मेरे लिए सम्पत्तियाँ झुकें १

८९८ **पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्सः, सा मेऽग्निना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहां, आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥ २**

८९८ पृथ्वी गौ; उसका अग्नि वत्स है; जिसके साथ वह मुझे ज्ञान-अन्न-बल-मनोरथ-उत्तम आयु-प्रजा-पोषण और ऐश्वर्य (धन-यश) यथेच्छ दुहे (दे)। यह सुवचन है। २

अन्तरिक्षे वायवे समनमन्त्स आर्ध्नोत्, यथान्तरिक्षे वायवे समनमन्० (शेष १ के समान)॥३

८९९ अन्तरिक्ष में वायु के लिए झुकें, वह बढ़ाता है० [शेष मन्त्र १ के समान]। ३

९०० **अन्तरिक्षं धेनुस्तस्या वायुर्वत्सः। सा मे वायुना वत्सेने० (शेष २ के समान)॥४**

९०० अन्तरिक्ष गौ, वायु वत्स है० [शेष मन्त्र २ के समान]। ४

९०१ **दिव्यादित्याय समनमन्त्स आर्ध्नोत्। यथा दिव्यादित्याय सम० ॥ ५**

९०१ द्यौ में आदित्य के लिए झुकें वह बढ़ाता है० [पूर्ववत्]। ५

द्यौर्धेनुस्तस्या आदित्यो वत्सः। सा म आदित्येन वत्सेने० ... ॥ ६

९०२ द्यौ गौ; आदित्य वत्स है,०। ६

दिक्षु चन्द्राय समनमन्त्स आर्ध्नोत्। यथा दिक्षु चन्द्राय समन० ॥ ७

९०३ दिशाओं में चन्द के लिए झुकते हैं०। ७

९०४ **दिशोऽधेनवस्तासां चन्द्रो वत्सः। ता मे चन्द्रेण वत्सेने० ॥ ८**

९०४ दिशाएँ गौ हैं, चन्द्र उनका बछड़ा है०। ८

९०५–९०६ **अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपा उ। नमस्कारेण नमसा ते जुहोमि मा देवानां मिथुया कर्म भागम् ॥ ९ हृदा पूतं मनसा जातवेदो विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्, सप्तास्यानि तव जातवेदस्तेभ्यो जुहोमि स जुषस्व हव्यम् ॥ १०**

९०५ अग्नि–परमात्मा अग्नि–जीवात्मा में प्रविष्ट गति करता है। वह इन्द्रियों को पतन से बचाने वाला–पवित्रकर्ता है। (हे ईश!) तुझे मैं बड़े आदर से झुककर 'नमस्ते' करके समर्पण करता हूं। हम विद्वानों के सेवनीय उपदेश को झूठा न करें। ९

९०६ हे जातवेदः [सर्वज्ञ ईश] आप सब ज्ञान–कर्मों को जानते हैं। मैं मन–हृदय से पवित्र भावों को समर्पित करता हूं। हे दूसरे जातवेदः [अल्पज्ञ जीव]! तेरे ७ आस्य [२ नेत्र–२ कर्ण–२ घ्राण–१ मुख अथवा ५ ज्ञानेन्द्रियाँ–मन–बुद्धि] हैं। उनमें मैं हृदय–मनसे ज्ञान–योगकी आहुति देता हूं, सेवन कर। यज्ञाग्नि की भी काली आदि ७ प्रकार की ज्वालाएँ हैं उनमें हव्यों की आहुति दी जाये। १०

सूक्त ४० । जातवेदाः (ज्ञानी ईश्वर और शासक) । प्रतिसर (बाम्ब) से शत्रु-नाश
अग्नि-यम-वरुण-सोम-भूमि-वायु-सूर्य-ब्रह्म- इन ८ अस्त्रों से ६ दिशाओं में बाम्ब-प्रयोग

९०७ **ये पुरस्ताज्जुह्वति जातवेदः प्राच्या दिशो भिदासन्त्यस्मान् ।**
अग्निम् ऋत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥ १

९०७- हे जातवेदः! जो दुष्ट पूरब दिशा से खाते; शस्त्र छोड़ते हमपर आक्रमण करके नाश करना चाहते हैं वे आग्नेय अस्त्र पाकर भागते हुए व्यथित हों, उनका पीछा कर मैं सेनापति इन्हें प्रतिसर से मार डालूँ । १

९०८ **ये दक्षिणतो जुह्वति जातवेदो दक्षिणाया दिशोभिदासन्त्यस्मान् । यमं ऋत्वा० २**

९०८- हे जातवेदः ! जो दक्षिण से हम पर आक्रमण करें वे हमारा यमास्त्र पाकर० । २

९०९ **ये पश्चाज्जुह्वति जातवेदः प्रतीच्या दिशोभिदासन्त्यस्मान् । वरुणमृत्वा० ॥ ३**

९०९- ... जो पश्चिम से आक्रमण करें वे वरुणास्त्र पाकर० । ३

९१० **य उत्तरतो जुह्वति जातवेद उदीच्या दिशोभिदासन्त्यस्मान् । सोममृत्वा० ॥४**

९१० -- ... जो उत्तर से आक्रमण करें वे हमारा सोमास्त्र पाकर० । ४

९११ **येऽधस्ताज्जुह्वति जातवेदो ध्रुवाया दिशोभिदासन्त्यस्मान् । भूमिं ऋत्वा० ॥ ५**

९११- ... जो नीचे से आक्रमण करें वे हमारा भूमि-प्रक्षेप्यास्त्र पाकर० ५

९१२ **ये अन्तरिक्षाज्जुह्वति जातवेदो व्यध्वाया दिशोभिदासन्त्यस्मान् । वायुमृत्वा० ६**

९१२- ... जो अन्तरिक्ष से इधर-उधर के मार्गों से आक्रमण करते हैं वे वायव्य अस्त्र पाकर० । ६

९१३ **य उपरिष्टाज्जुह्वति जातवेद ऊर्ध्वाया दिशोभिदासन्त्यस्मान् । सूर्यमृत्वा० ॥ ७**

९१३- ... जो ऊपर ऊर्ध्वा दिशा से आक्रमण करें वे हमारा सूर्य-अस्त्र पाकर० । ७

९१४ **ये दिशामन्तर्देशेभ्यो जुह्वति जातवेदः सर्वाभ्यो दिग्भ्योभिदासन्त्यस्मान् । ब्रह्मर्त्वा ०॥८**

९१४ - ... जो विदिशाओं से आक्रमण करें वे हमारा ब्रह्मास्त्र पाकर कष्ट भोगें । मैं प्रतिसर से उनका नाश कर दूं । ८

❀ यह सूक्त ४०, अनुवाक ८, प्रपाठक ६, काण्ड ४ समाप्त हुआ ॥ ❀

—◆—

...ज्योति-सम्बन्धी वक्तव्य (फार्म ४ नियम ८

... लखनऊ। २. अवधि– मासिक तारीख २-३। ३. मुद्रक ४ प्रकाशक ५ सम्पादक ... शास्त्री, राष्ट्रीयता– भारतीय, पता– सी ८१७ महानगर लखनऊ पिन२२६००६ ... षद् [रजिस्टर्ड] सी ८१७ महानगर लखनऊ।

... इस वक्तव्य द्वारा घोषित करता हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरे ज्ञान और विश्वास

—हस्ताक्षर वीरेन्द्रमुनि शास्त्री एम०ए० काव्यतीर्थ १-३-१९९०

साहित्य-समीक्षा

...) पत्रिका– वेदों के आधार पर ऊँचे आदर्शों के लेखों से युक्त पठनीय है। इस वर्ष ४ अंक ४ में 'वैदिक साहित्य में प्रतीक' पर लेख हैं और ५-१ में 'शतपथ में एक पथ' पूरा ग्रन्थ। मूल्य १ प्रति ८) ४ प्रतियाँ ३०)। अन्य छोटी पुस्तिका 'अग्निहोत्र यज्ञ विज्ञानकी दृष्टि में' उत्तम है। सम्पादक– स्वामी विवेकानन्द। प्रकाशक– स्वामी समर्पणानन्द वैदिक शोध संस्थान, भोला(मेरठ)

वेदार्थ-भूमिका— लेखक स्वा. विद्यानन्द सरस्वती दिल्ली। प्रकाशक– इंटरनेशनल आर्यन फाउंडेशन ...२ कैप्टन विला, मौंट मेरी रोड, बान्दरा, बम्बई ५०। मूल्य २५)। भाष्य-भास्कर की यह भूमिका अत्यन्त उपयोगी पठनीय एवं संग्रहणीय है। केवल दो बातें महर्षि दयानन्द सरस्वती के विपरीत खटकती हैं। पृ. ३१ पर मानव-वेद-सृष्टि-संवत् अशुद्ध है। जड़-सृष्टि के बाद मानवोत्पत्ति के मध्य कुछ काल लगेगा या नहीं? अतः महर्षि ने वेद-मानव-सृष्टि-संवत् ठीक माना जो अब १९६०८५३०९० है। और वेद ... ने पूना-... वचन में मनुष्योत्पत्ति के ५ वर्ष बाद माना है, आपने उसी दिन।

पृ.६३ पर मेघ-सूर्य बदल गये हैं, इन्द्र-शत्रु अन्तोदात्त का अर्थ मेघ, आद्युदात्त का सूर्य होगा। वी.शा.

समाचार— निर्वाचनमें कांग्रेस हार गयी। उ०प्र०के राज्यपाल श्री बी. सत्यनारायण रेड्डी का स्वागत है!

सिर जल के फेन से काट दिया । यह असम्भव है अतः वेद का अनर्थ है । इ...

(१) अधिदैव— इन्द्र परमेश्वर-सूर्य नमुचि अवर्षण-दुर्भिक्ष का सिर जल ... व-प्रयोग

(२) अध्यात्म — अप-फेन योग-बल से नमुचि न छूटनेवाले देह को छोड़ क...

(३) अधिभूत— इन्द्र राजा नमुचि न छोड़नेयोग्य शत्रु का सिर आप्तोपदेशेम ॥ १ ... करके नाश करना

—०—

श्रीमन् ! नमस्ते, आपका वर्ष -३-९० को पूर्ण हो चुका है, कृपया वार्षिक ... इन्हें पूर्ति कर

उनके मिलने पर ही अगला अंक भेजा जायेगा । अंकों को सँभाल कर र...

सभी सदस्य विशेषतः आजीवन संरक्षक अथर्ववेद के प्रकाशन में कृपया प्रथमं ऋत्वा० २

सार्वदेशिक सभा के त्रिसूत्री आन्दोलन में सभी ...

गौहत्या बन्द करो, अंग्रेजी हटाओ, शराब के ठेके उठाओ, वीरेन्द्र...

आर्यसमाज सान्ताक्रूज बम्बई ने १९९० का वेद-वेदाङ्ग-पुरस्कार २१०००) श्री हरिशरण सिद्धान्तालङ्कार (दिल्ली) को, और वेदोपदेशक-पुरस्कार श्री ओमप्रकाश वर्मा को दिया है, दोनों को बधाई!

अष्टाध्यायी, शतपथ, निरुक्त, अथर्ववेद

अनुवादक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम. ए. काव्यतीर्थ

साम देवताध्याय १०), साम संहितोपनिषद् ब्राह्मण १०), शतपथ काण्ड १-२, २०), वेदार्थपारिजात खण्डन २...
साम वंशब्राह्मण १०), अष्टाध्यायी २०), शतपथ काण्ड ३-४, २०), निरुक्त ३०) अथर्ववेद १००) मगाइ...

निवेदक—वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, ओजोमित्र शास्त्री मन्त्री, विश्ववेदपरिषद्. सी ८१७ महानगर लखनऊ

वैदिक दैनन्दिनी वैशाख, ज्येष्ठ २०४७ विक्रम

वै. कृ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ ३० शु. १ २ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५
वार बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं
न. स्वा स्वा वि अनु ज्ये मू पू उ श्र ध श पू उ रे अ भ कृ मृ आ पुन पु श्ले म पू उ ह ह चि स्वा
ता. अ ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० म. १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८

ज्ये कृ १ २ ३ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ११ १२ १३ १४ ३० शु १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५
वार गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु
न. वि अनु ज्ये मू पू उ श्र श्र ध शत पू रे अ भ कृ रो मृ आ पुन पु श्ले म पू उ ह चि स्वा वि अनु
ता. १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० जू १ २ ३ ४ ५ ६ ७

प्रकाशक— मुद्रक आदर्श प्रेस, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६; दूरभाष ७३५०१

सेवा में सं श्री

लाइब्रेरियन, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार

ऋग्वेद ओ३म् यजुर्वेद

वर्ष १४
अंक ५-६

वेद-ज्योति

मई-जून
१९९०

उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार
वर्ष १४ अङ्क ५-६, वैशाख-ज्येष्ठ (माधव-शुक्र) संवत् २०४७ वि०, प० गुरुदत्त विद्यार्थी शताब्दी
वेद-मानव-सृष्टि-संवत् १ ९६ ०८ ५३ ०९०, दयानन्दाब्द १६६
शुल्क वार्षिक ३०), आजीवन ३००), विदेश में २५ पौंड, ५० डालर

सम्पादक आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री एम. ए. काव्यतीर्थ, उपाध्यक्ष विश्व वेद परिषद्,
सहायक—विमला शास्त्री, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष ७३५०१
दिल्लीकार्यालय— श्री सञ्जयकुमार, मन्त्री, बी६ हिल व्यू, वसन्तविहार, नयीदिल्ली५७, दूरभाष ६०१४५२

वेद-मानव-सृष्टि-संवत् १९६०८५३०९०

प० गुरुदत्त विद्यार्थी-निर्वाण-शताब्दी-वर्ष

जन्म २६-४-१८६४
निर्वाण १९- -१८९०

आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री 'सरस्वती' (७५) ज्येष्ठ कृष्णा १, २०४७ वि० को यति बने। अथर्ववेद साम वेद, १०-५-९० को स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती से संन्यास लिया।

राधेश्याम आर्य— आर्य-सपूतो ! उठो, बढ़ो तुम, बनो वेद-पथ के अनुगामी ।
दूर करो भारत-माता की निर्मम साँस्कृतिक गुलामी ॥

कृण्वन्तोविश्वमार्यम् का गूँजे वसुधापर जयगान. वैदिकधर्मधरापर फैले भारतअपना बनेमहान्

सत्यार्थप्रकाश—मन्त्र-व्याख्या

क्रमांक ५६-. ऋषि अथर्वा, देवता (विषय) स्कम्भो ज्येष्ठं ब्रह्म, छन्द उपरिष्टाद् वृहती, स्वर मध्यम

यस्माद् ऋचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् । सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गि-
रसो मुखम् । स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ (अथर्व वेद १०-७-२०)

अर्थ — जिन परमात्मा से ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद प्रकाशित हुए हैं, वह कौन-सा देव है ? इसका उत्तर— जो सब का उत्पन्न करके धारण कर रहा है, वह परमात्मा है । (समुल्लास ७)

हरिजनों को मिलने वाली सुविधाएँ ईसाइयों को क्यों ?

ये तो हरिजनों पर किये गये अत्याचार के प्रायश्चित्त रूप में की गयी थीं, क्रिश्चियन अछूत नहीं, अतः क्रिश्चियन सोनिया की अपने मत वालो को दिलायी सुविधाएँ शासन तत्काल बन्द करे ।

सार्वदेशिक सभा के त्रिसूत्री आन्दोलन में सभी भाग लें

गौहत्या बन्द करो, अंग्रेजी हटाओ, शराबके ठेके उठाओ, वीरेन्द्रमुनि

अष्टाध्यायी, शतपथ, निरुक्त, अथर्ववेद

अनुवादक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम. ए. काव्यतीर्थ

साम दैवताध्याय १०), साम संहितोपनिषद् ब्राह्मण १०), शतपथ काण्ड१-२, २०), वेदार्थपारिजात खण्डन २०) साम वंशब्राह्मण१०), अष्टाध्यायी २०), शतपथ काण्ड ३-४, २०), निरुक्त ३०) अथर्ववेद १००) मगाइये।
निवेदक—वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, प्रो०ओमित्र शास्त्री मन्त्री, विश्ववेदपरिषद्. सी८१७ महानगर लखनऊ ६

वैदिक दैनन्दिनी आषाढ़-श्रावण, २०४७ विक्रम

आ कृ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ ३०शु. १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ६ १० ११ १२ १३ १४ १५ १५ पू
१९९० श र सा मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र
नक्षत्र मू मू पू उ श्र ध श त पू उ रे अ भ रो मृ आ पुन पु श्ले म पू उ ह चि स्वा वि अनु अनु ज्ये मू पू
त.जू ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९२० २१२२२३२४२५२६ २७ २८ २९३०जु१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८

श्र कृ १ २ ३ ४ ५ ७ ८ ९ १० ११ १२१३१४ ३० शु १ २ ४ ५ ६६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ पू
वार सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श सो मं बु गु शु श र सो
नक्षत्र उ भ घ श त पू उ रे अ भ कृ रो मृ आ पुष्य श्ले म पू उ ह चि चि स्वा वि अनु ज्ये मू पू उ श्र
ताजु ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१२२२३२४ २५२६२७ २८ २९ ३० ३१ अ१ २ ३ ४ ५ ६

यजु ६.६५ का अर्थ— जो इस दौड़ते-उड़ते पक्षी के पंख, अत्यन्त इच्छुक बाज, शीघ्र चलते घोड़े के समान मार्ग में अनुकूल चलता है वह ऊर्जा से युक्त होता है । २०

अब आगे को ३ ऋचाओं से आहुति देता या अनुमन्त्रण करता है, दोनों समान हैं । यह इन दौड़ते अश्वों को बल देता, इनमें वीर्य धारण कराता है । ये ३ पृथिवियाँ हैं— एक यह और दो इससे परे, उन का ही इनसे उज्जयन करता है— । २१

१— शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षांसि सनेम्यस्मद् युयवन्नमीवाः ॥ यजु ६-१६

[नियमित, उत्तम अन्नयुक्त योद्धा-घोड़े मेघवत् बढ़े चोर-डाकुओं को निश्चेष्ट करते हुए, हमारे संग्रामों में सनातन सुख दें और हमारे रोगों (शत्रुओं) को दूर करें ।] २२

२— ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः ।
सहस्रसा मेधसाता सनिष्यवो महो ये धनं समिथेषु जभ्रिरे ॥ (यजु ९-१७)

[वे सब ज्ञानी, शास्त्र-श्रोता, प्रशंसित बुद्धिमान्, सहस्र-विद्या-ज्ञाता, दानी, भक्त, वीर राज-पुरुष और घोड़े हमारा आह्वान सुनें जो युद्धों में हमारा धन लगाया करते हैं ।] २३

३— वाजे वाजेवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥ (यजु ९-१८)

[हे सत्य के ज्ञाता, विज्ञ, अमर राजपुरुषो और घोड़ो ! तुम प्रत्येक युद्ध में हमें बचाओ, और यह मधुर रस पियो तथा तृप्त होकर विद्वानों के चले मार्गों से जाओ ।] २४

अब बृहस्पति के चरु (मीठे भात) को पास लाकर छूता है । वाजपेय-कर्ता अन्न को जीतता है क्योंकि यह 'अन्नपेय' है, अतः उसीसे इस गति को पहुँच कर छूता और अपने अधीन करता है । २५

यह पढ़कर छूता है— आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादिमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे ।
आ मा गन्तां पितरा मातरा चा मा सोमो अमृतत्वेन गम्यात् ॥ य ९-१९

अन्नका ऐश्वर्य, ये विश्वरूप द्यावा-पृथिवी, पिता-माता, अमृतत्वके साथ सोम(ये प्रजापति)मुझे मिलें ।२६

उस चरु को घोड़ों को देता है—

वाजिनो वाजजितो वाजं ससृवासो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत निमृजानाः ॥ (य ६-१९)

[हे अन्न-जयी आगे बढ़े हुए घोड़ो ! तुम निरन्तर शुद्ध होकर बृहस्पति का भाग लाओ ।]
पहले य.९-९ में सरिष्यन्तः(बढ़ते हुए) कहा, अब यहाँ ससृवांसः(बढ़ हुए) कहा क्योंकि वे अब आगे बढ़े हैं, अतः निमृजानाः भी कहा। पहले चरु दिया था कि मैं जीतूँ, अब दिया कि मैं जीत गया। २७

इन रथों में से एक में जो वैश्य या क्षत्रिय हो वह वेदि के उत्तर में बैठता है । अध्वर्यु-यजमान पूर्व द्वार से मधुग्रह लिये निकलकर उसके हाथ में रखते हैं । नेष्टा दूसरे द्वार से सुरा(औषधि)का ग्रह लाकर शाला में पैदल आकर उसे देते हुए कहता है कि इससे तेरे लिए यह खरीदता हूं । सत्य-श्री-ज्योति सोम है, अनृत-पाप-तम सुरा है । पहले को यजमान में, और दूसरे को वैश्य में धारण कराता है । उनसे वह जिस भोग की कामना करता है उसे पूरा करता है । अब इस सुवर्ण-पात्र-सहित मधुग्रह को ब्रह्मा के लिए देता हुआ अपने में अमर-आयु धारण करता है । सुवर्ण अमर-आयु है जिससे वह जिस भोग की कामना करता है उसे पाता है । २८

यह पञ्चम ब्राह्मण और पहला अध्याय समाप्त हुआ ।

शतपथ काण्ड ५ अध्याय २ ब्राह्मण १

यूप पर आरोहण

अब अध्वर्यु स्रुवा-आज्य-विलापनी लेकर आहवनीय-निकट आकर बारह आप्तियों का होम करता या यह मन्त्र (य ६-२०) पढ़ता है, दोनों एक ही बात हैं। १

आपये स्वाहा स्वापये स्वाहा अपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहा अहर्पतये स्वाहा अह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनंशिनाय स्वाहा विनंशिन आन्त्यायनाय स्वाहा आन्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहा अधिपतये स्वाहा ॥

बारह ही मास संवत्सर के हैं जो प्रजापति है जो यज्ञ है। अतः जो इसकी आप्ति और सम्पत् है उसे उज्जय करता, है उसे अपने में प्राप्त करता है।२

अब ६ क्लृप्तियों की आहुति देता या मन्त्र पढ़ता है, दोनों एक ही बात है—३

आयुर्यज्ञेन कल्पताम् प्राणो यज्ञेन कल्पताम् चक्षुर्यज्ञेन कल्पताम् श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम् पृष्ठं यज्ञेन कल्पताम् यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। (य ६-२१)

संवत्सर की ६ ही ऋतुएँ हैं, जो प्रजापति है, जो यज्ञ है। अतः इसकी क्लृप्ति या सम्पत्ति को ही इससे जीतता और अपने में धारण करता है। ४

यूप ८ सीढ़ियों का होता है, ८ अक्षरों का ही अग्नि के गायत्री छन्द का पाद है। इससे देवलोक को ही जीतता है। यूप १७ वस्त्रों से वेष्टित या गूथित होता है, प्रजापति १७वाँ है अतः इससे उसे जीतता है। ५

चषाल गेहूं से बना होता है। पुरुष प्रजापति का निकटतम है, वह छिल्का-रहित है, गेहूं औषधियों में पुरुष के निकटतम हैं उनमें छिल्का नहीं होता, इससे चषाल से मनुष्य-लोक को ही जीतता है। ६

यूप गर्तयुक्त होता है जिसका अग्र तीक्ष्ण नहीं होता। उसका देवता पितर हैं, इससे पितृ-लोक को ही जीतता है। यह १७ अरत्नियों का होता है, १७ वाँ प्रजापति है अतः प्रजापति को जीतता है। ७

अब नेष्टा यजमान-पत्नी को यज्ञ में लाने के लिए उसे रेशमी वस्त्र और चण्डातक (जाँघिया) देता है, जो दीक्षा-वस्त्रों के अतिरिक्त हैं। पत्नी यज्ञ का आधा जघन है, उसे यज्ञ के सामने बिठाता है। उस का नाभि के नीचे का भाग अपवित्र होता है। दर्भ पवित्र हैं, उनसे उसका अपवित्र भाग पवित्र कराके यज्ञ के सामने लाता है। अतः नेष्टा पत्नी लाते समय उसे दीक्षा-वस्त्रातिरिक्त वस्त्र पहनाता है। ८

अब यजमान निसेनी (लकड़ी की सीढ़ी) पर चढ़ता है। दक्षिण से उत्तर को चढ़े या उत्तर से दक्षिण? दक्षिण से उत्तर को चढ़े। इस प्रकार उत्तर की ओर होता है।९

चढ़ता हुआ यजमान पत्नी को बुलाता है— जाया! आओ, हम दोनों चढ़ें। वह कहती है— अच्छा, हम दोनों चढ़ें। यह इसलिए कि वह अपना आधा भाग है, जब तक न मिले तब तक सन्तान नहीं होती नर असम्पूर्ण रहता है, जभी जाया को पाता है तभी सन्तान होती और सम्पूर्ण होता है। मैं सम्पूर्ण हो कर यह गति करूँ अतः जाया को बुलाता है। १०

अब यूप की सीढ़ी पर चढ़ता है—

प्रजापतेः प्रजाः अभूम। (य ९-२१) [हम प्रजापति की प्रजा हों।

जो वाजपेय करता है वह प्रजापति की ही प्रजा होता है।११

अब गेहुओं को छूता है— स्वर्देवा अगन्म। (य ६-२१) [देव सुख पाते हैं।]

गेहूं इस लिए छूता है कि वे अन्न हैं जिन्हें वाजपेयी जीतता है, यह अन्नपेय है। अन्न जीता तो गति पाकर स्पर्श करता, अपने अधीन करता है। अतः गेहुओं को छूता है। १३

अब सिर यूप से ऊँचा हो जाने पर कहता है—

अमृता अभूम। (यजु ६-२१) [हम अमर हो गये] इससे देवलोक को ही जीतता है। १४

अब दिशाएँ देखता हुआ य ६-२२ मन्त्र जपता है—

अस्मे वो अस्त्विन्द्रियमस्मे नृम्णं उत क्रतुः। अस्मे वर्चांसि सन्तु वः॥

वाजपेयी इस सर्व = प्रजापति को जीतता है, इसका यश-वीर्य-इन्द्रिय लेकर अपने में रखता है। १५

अब इस पर ऊष-पुटों को फेंकते हैं। पशु ऊषा, अन्न पशु हैं। यह अन्न को ही जीतता है०। १६

ये दोने पीपल-पत्तों से बने होते हैं क्योंकि वह इन्द्र जब पीपल के नीचे बैठता है तब मरुतों से मन्त्रणा करता है, प्रजा फेंकती है, वे मरुत् हैं, प्रजा अन्न हैं अतः फेंकती हैं, १७ दोने होते हैं, १७वाँ प्रजापति है। १७

अब इस पृथिवी को देखता हुआ जपता है— नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्यै (य ६-२२)

अभिषेक करते हुए बृहस्पति से भूमि डरी कि यह महान् बनकर मुझे विदीर्ण न कर दे, वह भूमि से डरा कि यह मुझे कँपा न दे, अतः मित्रता करनी चाहिए। माता पुत्र को, पुत्र माता को नहीं मारते। १८

यह वाजपेय बृहस्पति का यज्ञ है, भूमि० (शेष पूर्ववत्)। १९

अब सोने पर चढ़ता है। वह अमर आयु है अतः उसमें स्थित होता है। २०

अब बकरे की खाल बिछाकर उसपर सोना रखकर उसपर चढ़ता है या इस(भूमि)पर। २१

अब इसके लिए गद्दी (कुर्सी) लाते हैं। वह ऊपर बैठे को जीतता है जो अन्तरिक्षस्थ को जीतता है। अतः ऊपर बैठे के पास प्रजा नीचे बैठती है। अतः इसके लिए गद्दी लाते हैं। २२

वह गूलर की होती है। अन्न ऊर्जा है, गूलर-ऊर्जा खाये अन्न के अवरोध के लिए है। उसे हविर्धान में आहवनीय के पास आगे रखता है। २३

बकरे की खाल फैलाता है। वह प्रजापति है, जिसकी ये प्रजा प्रत्यक्ष हैं अतः ये वर्ष में तीन बार दो-तीन बच्चे पैदा करती हैं। अतः यह इसे प्रजापति ही बनाता है। २४

वह फैलाता है- इयं ते राड् यन्तासि यमन ध्रुवोऽसि धरुण कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा।

[यह तेरा राज्य है; तू नेता और प्रजाओं का नियामक है, अटल धारक है, तुझे खेती-क्षेम-रयि-पोष के लिए श्रेष्ठ बनाता हूँ। [अध्वर्यु यजमान से ऐसा कहे] २५। ॐ अध्याय २ में ब्राह्मण १ समाप्त ॐ

प्रपाठक १, कण्डिका-संख्या ११७ समाप्त।

ब्राह्मण २ प्रपाठक २

नैवार-चरु, उज्जिति-होम, और स्विष्टकृद्याग

बार्हस्पत्य चरु का चल होता है। उसके अनिष्ट में ही स्विष्टकृद् होता है। अब उसको अन्न देता है। गूलर के पात्र में देता है। क्योंकि अन्न-गूलर ऊर्जा अन्नाद्य के अवरोध के लिए है। वह पहले पानी देता है, फिर दूध, तब याद करके सब अन्न। २

कोई १७ अन्न बताते हैं क्योंकि १७ वाँ प्रजापति है। किन्तु यह न करे क्योंकि प्रजापति का तो वह

सभी अन्न हैं, कौन है जो उसे रोक सके? अतः सब अन्न याद कर करके दें, एक भी न रोके । ३

जो अन्न नहीं देता उससे विरुद्ध बोले, न खाये, वह अच्छा अन्न नहीं पाता, आयु कम होती है। अब वह एकत्रित अन्न को स्रुवा से कुचल कर वाजप्रसवीय होम करता है, क्योंकि वह जिन के लिए होम करता है वे प्रेरणा देते हैं, यह प्रेरित होकर जय करता है । ४

वह इन मन्त्रों के द्वारा स्वाहान्त होम करता है—

वाजस्येमं प्रसवः सुषुवेऽग्रे सोमं राजानमोषधीष्वप्सु ।
ता अस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः ॥ ५
वाजस्येमां प्रसवः शिश्रिये दिवमिमा च विश्वा भुवनानि सम्राट् ।
अदित्सन्तं दापयति प्रजानन् स नो रयिं सर्ववीरं नि यच्छतु ॥ ६
वाजस्य नु प्रसव आ बभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः ।
सनेमि राजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्धयमानो अस्मे ॥ ७

सोमं राजानमवसे ऽग्निमन्वारभामहे । आदित्यान् विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ ८
अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय । वाचं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥ ९
अग्ने अच्छा वदेह नः प्रति नः सुमना भव । प्र नो यच्छ सहस्रजित् त्वं हि धनदा असि ॥ १०
प्र नः यच्छत्वर्यमा प्र पूषा प्र बृहस्पतिः । प्र वाग्देवी ददातु नः ॥ ११ (य नौ के २३-२९)

इसे शेष बचे से अभिषिक्त करता है । क्योंकि अन्नाद्य से ही, अतः उसे ही इसमें धारण कराता है— ।१२

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रिये दधामि ॥(३०)
देव के हाथों से नियन्ता वाणी-सरस्वती के ही नियन्त्रण में इसे रखता है । (तेरह)

कुछ लोग कहते हैं कि यहां वाचो के स्थान में विश्वेषां देवानां पढ़े । किन्तु ऐसा न करे, वही पढ़े । अब 'बृहस्पतेष्ट्वा साम्राज्येनाभि षिञ्चाम्यसौ' (य ९-३०) पढ़े, असौ के बदले नाम ले । अतः बृहस्पति का सायुज्य-सालोक्य प्राप्त कराता है । १४

अब घोषणा करे- सम्राडयमसौ सम्राडयमसौ, असौ के बदले नाम ले । अब देवों के लिए निवेदन- यह बड़ा वीर है, जिसका अभिषेक था तुममें से एक हो गया, रक्षा करो । ३ बार कहे, यज्ञ त्रिवृत् है ।१५

अब उज्जितियों का होम करे या मन्त्र पढ़े- दोनों एक ही बात हैं । वह य ९-३१-३४)पढ़े- १६
अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत्तमुज्जेषं... प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशं स्तोममुदजयत्तमुज्जेषम् ।

अग्नि ने १ अक्षर से प्राण को जीता, मैं भी जीतूँ, अश्विओंने २ से दुपाये मनुष्य, विष्णु ने ३से ३लोक सोम ने ४ से चौपाये पशु, पूषा ने ५ से ५ दिशाएँ, सविता ने ६से ६ऋतुएँ, मरुतो ने ७ से ७ ग्राम्य पशु, बृहस्पति ने ८ से गायत्री, मित्र ने ९ से त्रिवृत स्तोम, वरुण ने १०से विराट , इन्द्रने ११से त्रिष्टुप्, विश्वे देवाः ने १२से जगती, वसु-रुद्-आदित्य-अदिति -प्रजापति ने १३-१७ से स्तोम जीते, मैं भी इन्हें जीतूँ। क्योंकि १७ से १७ देवता जीते, १७ वां प्रजापति था, अतः यह भी इनसे उसे जीतता है । १७

अब कहे- अग्नि स्विष्टकृत् के लिए बोलो । क्योंकि दो आहुतियों के मध्य में यह कर्म है अतः यज्ञ ही है जिससे प्रजा पैदा हुई, पुनः पीछे पैदा होती हैं अतः मध्य से ही प्रजापति को जीतता है । आश्रावण करके कहे- अग्नि स्विष्टकृत् के लिए यज्ञ कर । वषट् करके होम करता है । १८

अब इडा को बुलाए, आचमन कर माहेन्द्र ग्रह ले, स्तोत्र पढ़े, स्तोत्र के प्रति झुकाये । शस्त्र के अन्त में उतरे । १९ । कुछ लोग बाद में भी कुछ करते हैं वैसा न करे । आत्मा-स्तोत्र और प्रजा-शस्त्र से कुटिल वह यजमान को ठगता और नाश करता है ।२०। अब इडा को लेते हैं ।२१॥ ब्राह्मण २ समाप्त ॥

अथर्व वेद काण्ड ५ सूची

…ठक	अनुवाक	सूक्त	मन्त्र	ऋषि	देवता	छन्द	महर्षि दयानन्द के अनुसार अनुवाक-विषय
…०	१	१-२	९-९	बृहद्दिवो अथर्वा	वरुण, इन्द्र	त्रिष्टुप् आनोन्द्र	ईश्वरप्रार्थना-कुष्ठाद्यनेकविध-
		३	११	,,	विश्वेदेवा:	,, १० जगती	रोगनाशार्थादि पदार्थविद्या
		४	१०	भृग्वङ्गिरा:	कुष्ठ	अनुष्टुप् ,,	,,
		५	९	अथर्वा	लाक्षा	,,	
…१	२	६	१४	,,	ब्रह्म सोमरुद्र अग्नि	,, पंक्ति ,,	ब्रह्म-
		७	१०	,,	प्रजापति नाता	,, ,,	ईश्वर-
		८	९	,,	इन्द्र ,,	,, ,,	प्रार्थनादि पदार्थविद्या
		९-१०	८-८	ब्रह्मा	प्रजापति वास्तोष्पति	,, बृहती ,,	
	३	११	११	अथर्वा	वरुण	शक्वरी त्रिष्टुप्	वरुण ईश्वर प्रार्थना [illegible]
		१२	११	अङ्गिरा:	जातवेदा:	,,	पदार्थ विद्या
		१३	,,	गरुत्मान्	विष तक्षक	[illegible] गायत्री ,, ,, ,, उष्णिक् पंक्ति	
		१४	१३	शुक्र	वनस्पति कृत्या	,, गायत्री अनु. उ.	
		१५	११	विश्वामित्र	वनस्पति ओषधि	,, ,	
१२	४	१६	,,	,,	आत्मा एकवृष	१-९ ११ त्रि १० जगती	
		१७	१८	मयोभू:	ब्रह्मजाया विश्वेदेवा:	,, अनुष्टुप्	वृष-
		१८	१५	,,	,, गवी	,, ,,	ईश्वरादि-
		१९	,,	,,	,,	,, ,,	पदार्थ विद्या
		२०	१२	ब्रह्मा	दुन्दुभि	त्रिष्टुप्	
		२१	,,	,,	,, पं० गा०	,, जगती ,,	
	५	२२	१४	भृगु, अङ्गिरा	तक्म-नाशन ,,	,,	अग्नि आदि रक्षणादि पदार्थविद्या
		२३	१३	कण्व	इन्द्र वैद्य	अनु०	
		२४	१७	अथर्वा	आत्मादि नाना	शक्वरी अतिजगती	
		२५	१३	ब्रह्मा	योनिगर्भ प्रजापति	अनु०	
		२६	१२	,,	वास्तोष्पति	विराट् जगती	
	६	२७	१२	,,	अग्नि	प० अ० ,, उ०	अग्न्यादि-यज्ञादि-
		२८	१४	अथर्वा	त्रिवृत् प्रजापति ,,	; त्रिष्टुप्	प्राणादि पदार्थ विद्या
		२९	१५	चातन	जातवेदा अग्नि ,,	,,	
		३०	१७	उन्मोचन	आयुष्काम: आत्मा आयु	प० अ० ,, बृ०	
		३१	१२	शुक्र	कृत्या	,,	
…ग ३	६	३१	३७६	पूर्वागत ९१४ सर्वयोग १२९०			

काण्ड ५ प्रपाठक १, अनुवाक१ (सूक्त १-५)

महर्षि के अनुसार विषय— अग्नीन्द्रेश्वरप्रार्थना-कुष्ठाद्यनेकविध रोग नाशादि पदार्थविद्या

सूक्त १। त्रित, इन्द्र, वरुण। आत्मोन्नति का उपदेश

९१५-१६ ऋधङ्मन्त्रो योनिं य आबभूवामृतासुर्वर्धमानः सुजन्मा। अदब्धासुर्भ्राजमानोऽहेव त्रितो धर्ता दाधार त्रीणि ।१। आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि। धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा यो वाचमनुदितां चिकेत ॥२

९१५- जो सत्य-मनन-कर्ता, अमृत-प्राण, बढ़ता सुजन्मा जीव मनुष्य-योनि पाता है वह अदम्य-प्राण होकर दिनसमान प्रकाशमान त्रित-धारक(मन-वाणी-शरीर-युक्त) होकर ३ (स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीर और नाम-स्थान-जन्म धामों) को धारण करता है। १

९१६- जो प्रथम श्रेष्ठ बनकर धर्मों को पालता, तब अनेक शरीरों को धारण करता और जो बिना-बताई वाणी जानता वह जीव माता की योनि में आता है। २

९१७-१८ यस्ते शोकाय तन्वं रिरेच क्षरद्धिरण्यं शुचयोऽनु स्वाः। अत्रा दधेते अमृतानि नामास्मे वस्त्राणि विश एरयन्ताम् ।३। प्र यदेते प्रतरं पूर्व्यं गुः सदःसद आतिष्ठन्तो अजुर्यम्। कविः शुषस्य मातरा रिहाणे जाम्यै धुर्यं पतिमेरयेथाम् ॥४

९१७- जो तेरा(पिता) दीप्ति के लिए अपना शरीर लगाता, वीर्याधान करता; अपनी वृत्तियाँ शुद्ध करता है, वह यहाँ(बालक में) अमृत(जीवन-बल-ज्ञान) देता है, प्रजा इसे निवास-वस्त्र दें। ६

९१८- ये(योगी) सभाओं में बैठकर जिस पूर्व-अजर-तारक ईश्वरको भजते हैं उसके पूजक पिता-माता! तुम उसी पालक पति का उपदेश प्रजा के लिए प्राप्त कराओ। ७

९१९-२० तदूषु ते महत् पृथुज्मन् नमः कविः काव्येनाकृणोमि। यत्सम्यञ्चावभि यन्तावभि क्षामत्रा मही रोधचक्रे वावृधेते ।५। सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामिदेकामभ्यंहुरो गात्। आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥६

९१९- हे विस्तृत-गति! तेरा वह महान् यश है जिसका ज्ञान कवि मैं वेद-काव्य से करता हूं और नमस्ते करता हूं, जिनने परस्पर मिले, सम्मुख गतिमान् दो जड़-चेतन यहाँ रथ-चक्रवत् बढ़ते हैं। ५

९२०- कवि ७ मर्यादाएँ बताते हैं उनमें से एक का भी कर्ता पापी होता है। आयु को रोकनेवाला स्व-उत्पादय के आश्रय में कर्मोंके विसर्जन पर ध्रुव स्थितियों(मोक्ष)में रहता है ।। [७ मर्यादाएँ — १.चोरी-२.व्यभिचार-३-४.ब्रह्म-गर्भ-हत्या-५.सुरापान-६.बार बार दुराचार-७.पाप कर झूठ बोलना (नि० ६.२७)]६

९२१-२२ उतामृतासुर्व्रत एमि कृण्वन्नसुरात्मा तन्वस्तत् सुमद्गुः। उत वा शक्रो रत्नं दधात्यूर्जया वा यत्सचते हविर्दाः ।७। उत पुत्रः पितरं क्षत्रमीडे ज्येष्ठं मर्यादमह्वयन्त्स्वस्तये। दर्शन्नु ता वरुण यास्ते विष्ठा आवर्व्रततः कृणवो वपूंषि ॥८

९२१-९२२ अमर-प्राण वृती मैं कर्म करता हुआ चलता हूँ, तब प्राण-आत्मा-शरीर उत्तम होता है

और समर्थ यज्ञकर्ता रत्न धारण करता एवं ऊर्जा से युक्त होता है। ७। और पुत्रबली पिता से धन माँगता है, वे मर्यादायुक्त बड़े को बुलाते हैं, हे वरुण! वे आपकी व्यवस्थाएँ देखें आप बार बार जन्म लेने वाले जीव के शरीरों को बनाते हैं। ८

९२३ अर्धा मर्धेन पयसा पृणक्ष्यर्धेन शुष्म वर्धसे असुर। अवि वृधाम शग्मियं सखायं वरुणं पुत्रमदित्या इषिरम्। कविशस्तान्यस्मै वपूंष्यवोचाम रोदसी सत्यवाचा ॥९

९२३- हे बली वरणीय! तू समृद्ध को समृद्धि से पूर्ण करता और बढ़ाता है, रक्षक-समर्थ-मित्र-श्रेष्ठ-रक्षक अदिति के प्रेरक की महिमा बढ़ायें, उसके लिए द्यौ-पृथ्वी में सत्य-वाणी से कवियों से प्रशंसित शक्तियों का कथन किया करें। ९

सूक्त २ इन्द्र। राष्ट्र को उन्नति का सन्देश।(यह सूक्त आगे २०-१०६ भी है)

९२४-९२५ तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः। सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः ॥१॥ वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति। अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥२

९२६-२७ त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः। स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥३॥ यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः। ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन् दुरेवासः कशोकाः ॥४

९२८-२९ त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि। चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥५॥ नि तद्दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे। आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि ॥६

९३०-३१ स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्तमाप्त्यानाम्। आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥७। इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः। महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद् विश्वमर्णवत् तपस्वान् ॥८

९३२ एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वावोचत् स्वां तन्वमिन्द्रमेव। स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च ॥ ९

वही सा भुवनों में बड़ा हो सकता है जिससे उग्र तेज प्रकट हो; वह उद्यत होकर शत्रुओं का नाश करता है; अतः सब प्रजा उससे हर्ष पाता है। १ (यह ऋ १०-१२०-१, य ३३-८० में भी है)

बल से बढ़ता हुआ शत्रु दासवृत्ति वाले को भय देता है; जब बली और निर्बल मिल कर रहते हैं तब वे पुष्ट होकर आनन्द में मग्न होते हैं। २

(हे इन्द्र!) जब ये प्रजाएँ तेरे लिए अपनी बुद्धि बहुत लगाती हैं तो ये शक्ति में दुगुनी-तिगुनी हो जाती हैं, तू मधुरता में अधिक मधुरता उत्पन्न कर, सुन्दर-मधुर को अधिक मधुर बना। ३

हे ओजस्वी शासक! निश्चय ही प्रत्येक युद्ध में धन जीतने वाले तुझसे विद्वान् आनन्द पाते हैं तू स्थिर बल फैला जिससे दुष्ट जन और शोक तुझे न सता सकें। ४

युद्धों में मिलने वाले लाभ देखकर हम तेरे साथ रहकर शत्रु-नाश करें। तेरे वचनों से मैं शास्त्र चलाऊँ और तेरे ज्ञान से अपनी गतियों को तेज करूँ। ५

जिस देश में छोटे बड़े मिलकर रहते हैं उसी की तू अन्न-बल से रक्षा करता है। हे मनुष्यो! तुम विजयिनी मातृभूमि को अच्छे प्रकार स्थापित रक्खो, इससे बहुत कर्म सिद्ध करो। ६

हे बली शासक! तू बहुत मार्गों वाले तेजस्वी श्रेष्ठतम आप्तों में आप्त का गुण-वर्णन कर। बहु महाबली बल से ही आदर्श होता है और पृथ्वी की समानता (सहन शक्ति) को प्राप्त करता है। ७

द्यौ के समान बड़ा अग्रणी उत्तम गतिशील विद्वान् ही शासक के लिए इन विज्ञानों को देता है। स्वराज्य-स्थापक पुरुष पृथ्वी-रक्षक महान् बल पाता है और वेगवान् तपस्वी होकर विश्व में घूमता है। ८

इस प्रकार महान् द्यौ के समान बड़ा अटल पुरुष अपने को इन्द्र ही कहता है। मातृभूमि-पोषक दो बहिनों के समान (भाषा और सभ्यता) उसे प्रेरणा देतीं और बढ़ाती हैं। ९

सूक्त ३। (विजय की कामना)

९३३-३४ ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम। मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ॥१॥ अग्ने मन्युं प्रतिनुदन् परेषां त्वं नो गोपाः परिपाहि विश्वतः। अपाञ्चो यन्तु निवता दुरस्यवोऽमैषां चित्तं प्रबुधां विनेशत् ॥२

९३५-३६ मम देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णुरग्निः। ममान्तरिक्षमुरुलोकमस्तु मह्यं वातः पवतां कामायास्मै ॥३॥ मह्यं यजन्तां मम यानीष्टाकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु। एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवा अभि रक्षन्तु मेह ॥४

९३७-३८ मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मय्याशीरस्तु मयि देवहूतिः। देवा होतारः सनिषन् न एतदरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः ।५। दैवीः षडुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वे देवास इह मादयध्वम्। मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ॥ ६

९३९-४० तिस्रो देवीर्महि नः शर्म यच्छत प्रजायै नस्तन्वे यच्च पुष्टम्। मा हास्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रधाम द्विषते सोम राजन् ।७। उरुव्यचा नो महिषः शर्म यच्छत्वस्मिन् हवे पुरुहूतः पुरुक्षु। स नः प्रजायै हर्यश्व मृडेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः ॥८

९४१-९४२ धाता विधाता भुवनस्य यस्पतिर्देवः सविताभिमातिषाहः आदित्या रुद्रा अश्विनोभा देवा पान्तु यजमानं निर्ऋथात् ॥९॥ ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामह एनान्, आदित्या रुद्रा उपरिस्पृशो न उग्रं चेत्तारमधिराजमक्रत ॥१०

**९४३. अर्वाञ्चमिन्द्रममुतो हवामहे यो गोजिद् धनजिदश्वजिद् यः।
इमं नो यज्ञं विहवे शृणोत्वस्माकमभूर्हर्यश्व मेदी ॥ ११**

हे अग्रणी शासक! युद्धों में मेरा तेज चमके, हम तुझे बढ़ाते हुए अपना शरीर पुष्ट करें, चारों दिशाएँ मुझे नमस्कार करें, तुझ अध्यक्ष के साथ हम संग्रामों को जीतें।१(कुछ भेद से ऋ १०.१२८ में)

हे अध्यक्ष! शत्रुओं के क्रोध को दूर करते हुए तुम हमारे रक्षक होकर हमें सब ओर से बचाओ। दुःखदायी हटाने-योग्य नीच दूर हों, घर में जागने वाले इन का चित्त नष्ट हो जाये। २

९३५ सब विद्वान, सेनापति के साथ सैनिक, सङ्गठन, नेता सभी युद्ध में मेरे हों; बड़े लोकों से युक्त अन्तरिक्ष मेरा हो, इस कामना के लिए वायु मुझे पवित्र करे । ३

९३६ मेरे अभीष्ट मुझे मिलें, मन का संकल्प सत्य हो, कोई पाप न करूँ, सब देव यहाँ मुझे बचायें।४

९३७ देव विद्वान् मुझे ज्ञान-धन भरपूर दें, मुझमें आशीर्वाद और देवों को बुलाने की शक्ति रहे, हमें दिव्य होता (दानी प्रजा) हमें दें, हम शरीर से नीरोग और अच्छे वीर हों। ५

९३८ (इस का उत्तरार्ध अ १-२०-१ में भी है) दिव्य ६ बड़ी दिशाएँ हमें विशाल करें, सब देव यहाँ हर्षित हों, हर्षित करें, विपत्ति-अयश हमें न मिले, जो द्वेष्य पाप हैं वे हमारे पास न आवें । ६

९३९ तीन देवियाँ (इडा-सुरस्वती-भारती मही, मन-शरीर-वाणी, अदिति-अनुमति-सरस्वती, अन्न-विद्या-मातृभूमि, माता-पत्नी-बहिन पुत्री) हमें बड़ा सुख दें और वह भी जो हमारी प्रजा तथा शरीर के लिए पोषक हो, हम प्रजा और शरीरों से न छूटें, हे सोम राजा! हम द्वेषी से दुःखी न हों । ७

९४० इस आवाहन में बार-बार पुकारा हुआ विशाल शक्तिशाली शासक हमें अन्नयुक्त घर-सुख दे, वह हरणशील अश्व(शक्ति)युक्त(ईश्वर-सेनापति)हमारी प्रजा को सुख दे, हे इन्द्र! हमें नष्ट नकरो। ८

९४१ जो धाता विधाता भुवन का पति प्रेरक अभिमान-नाशक (ईश्वर-सेनापति) है वह और आदित्य रुद्र-दोनों अश्विनी देव यज्ञकर्ता को दुःख से बचायें । ९

९४२ जो हमारे शत्रु हैं वे दूर हों, सेनापति-मन्त्री द्वारा इन्हें हटा दें, आदित्य-रुद्र-ऊपर को प्रजा हमारे उग्र चेतना-दायक को राजा बनायें । १०

९४३ जो गौ-धन-अश्वों का जीतने वाला है ऐसे प्रत्यक्ष शासक की हम दूर से भी प्रशंसा करते हैं, वह हमारे इस यज्ञ की विशेष आह्वान पर सुने । हे हरणशील शक्तियुक्त! तू हमारा स्नेही हो । ११

सूक्त ४ ; कुष्ठ औषधि [मन्त्र ९४४-९५३]

९४४.यो गिरिष्वजायथा वीरुधां बलवत्तमः । कुष्ठेहि तक्मनाशन तक्मानं नाशयन्नितः ॥१

९४५. सुपर्णसुवने गिरौ जातं हिमवतस्परि । धनैरभि श्रुत्वा यन्ति विदुर्हि तक्मनाशनम् ॥ २

९४६. अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि । तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥ ३

९४७. हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि । तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥ ४

हिरण्ययाः पन्थान आसन्नरित्राणि हिरण्यया,नावो हिरण्ययीरासन्याभिःकुष्ठं निरावहन् ॥५

९४९. इमं मे कुष्ठ पूरुषं तमा वह तं निष्कुरु । तमु मे अगदं कृधि ॥ ६

९५०.देवेभ्यो अधिजातोऽसि सोमस्यासि सखा हितः,स प्राणाय व्यानाय चक्षुषे मे अस्मैमृड ।,

९५१. उदङ् जातो हिमवतः स प्राच्यां नीयसे जन,तत्रकुष्ठस्य नामान्युत्तमानि विभेजिरे ॥८

९५२.उत्तमो नाम कुष्ठास्युत्तमो नाम ते पिता ।तक्मं च सर्वं नाशय तक्मानं चारसं कृधि ॥९

९५३. शीर्षामयमुपहत्यामक्ष्योस्तन्वोरपः । कुष्ठस्तत्सर्वं निष्करद् दैवं समह वृष्ण्यम् ॥ १०

जो पहाड़ों पर उत्पन्न होता, औषधियों में सब से अधिक बलवान् है यह रोग-नाशक कुष्ठ(कूट औषधि) ! तू यहाँ से तक्मा (ज्वर-रोग) को नष्ट करता हुआ आ । १

गरुड़ के उत्पादक पर्वत पर हिमालय के परे तुझे सुनकर लोग धन के साथ जाते हैं और तक्मा के नाशक (कूट) को जानते और पाते हैं । २

९४६— यहां से तीसरे द्यौ में जो देव-सदन पीपल है वहां देव अमृत से भरे कूट को पाते हैं। ३
सुनहरी किरणों से बँधी सोने की सूर्य-नौका द्यौ में चलती है वहाँ देव अमृतका पोषक कूट पाते हैं।४
मार्ग, डाँडें, नावें सब सुनहरी होती हैं जिन से कूट लाते हैं। ५
हे कूट! तू मेरे इस पुरुष के पास आकर उसे लाभ पहुँचा और नीरोग कर। ६
तू देवों के लिए उत्पन्न, सोम का हितकारी सखा तू मेरे इस(रोगी)के प्राण-व्यान-चक्षु को सुख दे।७
हिमालय से उत्तर में पैदा कुष्ठ पूरब के जनों तक ले जाया जाता है वहाँ उस के नाम उत्तम हैं।८
हे कुष्ठ!तू और तेरा पिता उत्तम नामक है, तू सब रोग का नाश कर और ज्वर को दूर कर।९
सिर का रोग, आँखों की कमजोरी, शरीर का दोष सबको कूट, दिव्य बल बढ़ाकर, दूर करता है।१०

सूक्त ५ । लाक्षा औषधि [९५४-९६२]

रात्री माता नभः पितार्यमा ते पितामहः, सिलाची नाम वा असि सा देवानामसि स्वसा ।१
यस्त्वा पिबति जीवति त्रायसे पुरुषं त्वम् । भर्त्री हि शश्वतामसि जनानां च न्यञ्चनी ।२
वृक्षं वृक्षमा रोहसि वृषण्यन्तीव कन्यला । जयन्ती प्रत्यातिष्ठन्ती स्परणी नाम वा असि ।३
यद् दण्डेन यदिष्वा यद्वारुर्हरसा कृतम् । तस्य त्वमसि निष्कृतिः सेमं निष्कृधि पूरुषम् ।४
भद्रात् प्लक्षान्निस्तिष्ठस्यश्वत्थात् खदिराद्धवात् । भद्रान्न्यग्रोधात्पर्णात्सा न एह्यरुन्धति ।५
हिरण्यवर्णे सुभगे सूर्यवर्णे वपुष्टमे । रुतं गच्छासि निष्कृते निष्कृतिर्नाम वा असि ।६
हिरण्यवर्णे सुभगे शुष्मे लोमशवक्षणे । अपामसि स्वसा लाक्षे वातो हात्मा बभूव ते ।७
सिलाची नाम कानीनोऽजबभ्रु पिता तव । अश्वो यमस्य यः श्यावस्तस्य हास्नास्युक्षिता ।८
अश्वस्यास्नः संपतिता सा वृक्षां अभिसिष्यदे । सरा पतत्रिणी भूत्वा सा न एह्यरुन्धति ।९

९५४ तेरी माता रात्रि, पिता आकाश और पितामह सूर्य है, तू सिलाची नाम की(लाख)है जो देवों की स्वसा (स्वयं गति करने देने वाली, बहिन के तुल्य) है। १
९५५ जो तुझे पीता है वह जीता है, तू जनों की रक्षक-पोषक और सब रोगों को दबाने वाली है। २
९५६ पुरुष की अभिलाषिणी कन्या के तुल्य तू प्रत्येक वृक्षपर चढ़ती, विजयी-प्रतिष्ठित, 'स्परणी' है।३
९५७ जो घाव डंडा, बाण या रगड़ से हुआ हो,तू उसे भरती है, तू इस (घायल) को अच्छा कर। ४
९५८ उत्तम प्लक्ष-पीपल-खैर-बबूल-बरगद-ढाक से निकलती, घाव भरनेवाली वह हमें प्राप्त हो।५
९५९ सोनेके तुल्य पीली चमकती सूर्यवत् लाल, शरीर-हितकारी रोग-नाशक 'निष्कृति' तू घाव भर।६
९६० सुनहरे रंग की, सुन्दर, बलशालिनी, सूक्ष्म रोम-युक्त हे लाक्षा! तू पानी की स्वसा (अपना रस छोड़ने वाली, बहिन के समान) है किन्तु तेरा शरीर वायु है(तू वायु से पुष्ट होती है)। ७
९६१ तेरा नाम सिलाची है, दीप्ति-पुञ्ज सूर्य तेरा पिता है और बकरी आदि पशुओं का पोषक वृक्ष भी तेरा पिता है। ईश्वर का बनाया जो सूर्य नाना रंग-रूपोत्पादक है उसके रस से तू सींची जाती है।८
९६२ तू सूर्य की किरणों से तप्त होकर वृक्षों से बाहर आती है। हे घाव-भरने वाली औषधि! वृक्ष से टपकने और बहने वाली तू हमें प्राप्त हो। ९

यह दशम प्रपाठक और पहला अनुवाक समाप्त हुआ।

प्रपाठक ११, अनुवाक २, सूक्त ६ से १० तक

महर्षि दयानन्द के अनुसार विषय — ब्रह्म-ईश्वर-प्रार्थनाद्यनेकविध पदार्थविद्या

सूक्त ६। सोम-रुद्र [ब्राह्मण-क्षत्रिय]

९६३ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥ १
[यह मन्त्र पहले अ ४-१-१ में, यजु १३-३ और साम ३२१ में भी है]

अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे । वीरान्नो अत्र मा दभन् तद्व एतत्पुरो दधे ॥ २
[पहले ४-७-७ में भी]

सहस्रधार एव ते समस्वरन् दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः ।
तस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवे ॥ ३ [ऋ९.७३.४ में भी]

९६६ पर्यू षु प्र धन्वा वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तदध्यर्णवेनेयसे सनिस्रसो नामासि त्रयोदशो मास इन्द्रस्य गृहः ॥ ४

९६७ न्वेतेनारात्सीरसौ स्वाहा । तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सुमृडतं नः ५

९६८ अवैतेनारात्सीरसौ स्वाहा । तिग्मा० [शेष ५ के समान] ६

९६९ अपैतेनारा० [शेष ५ के समान] ७

९७० मुमुक्तमस्मान् दुरितादवद्याज्जुषेथां यज्ञममृतमस्मासु धत्तम् ॥ ८

९७१ चक्षुषो हेते मनसो हेते ब्रह्मणो हेते तपसश्च हेते ।
मेन्या मेनिरस्यमेनयस्ते सन्तु ये ऽस्माँ अभ्यघायन्ति ॥ ९

९७२ यो ऽस्माँश्चक्षुषा मनसा चित्त्याकूत्या च यो अघायुरभिदासात् ।
त्वं तानग्ने मेन्यामेनीन् कृणु स्वाहा ॥ १०

९७३. इन्द्रस्य गृहोऽसि । तं त्वा प्रपद्ये तं त्वा प्रविशामि सर्वगुः सर्वपुरुषः सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मे ऽस्ति तेन ॥ ११ । ९७४. इन्द्रस्य शर्मासि० । १२ । ९७५. इन्द्रस्य वर्मासि० । १३

९७६ इन्द्रस्य वरूथमसि० । १४ ॥ [अन्तिम ३ मन्त्रों का शेष ११ के समान]

९६३ ज्ञानी सबसे पहले उत्पन्न ब्रह्माण्ड और इसके मध्यस्थ कान्तिमान् लोकों को देखता है; वह इस जगत् की निर्मात्री आधारभूत मूल व्यवस्थाएँ, सद्-असद् (सृष्टि-प्रकृति) के मूल कारण विचारता है ।१

९६४ श्रेष्ठ ज्ञानी जो कर्म करें वे यहाँ हमें कष्ट न दें, यह मैं [परमात्मा] तुम्हारे आगे रखता हूं ।२

९६५ सहस्र-धारणा-युक्त प्रकाशमय सुखद स्थान में ही वे मधुर-भाषी शान्त जन एकस्वर से कहते हैं—उस शासक के पाश-लिये पकड़नेवाले दूत कभी आँख बन्द नहीं करते; पाश लेकर पद-पद पर रहते हैं । ३

९६६ शत्रु-नाशक इन्द्र अन्न देने के समय दुष्टोंको दूर रक्खे, समुद्र द्वारा भी आक्रमण करने से उसका नाम 'सनिस्रस' है । १३वाँ मास उसका घर है, १२ राजमंडल जीतकर वह इन्द्र बनता है । ४

९६७ हे इन्द्र! तू निश्चय ही इस प्रकार सिद्धि पा, यह उत्तम वचन ; तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र-युक्त सुसेव्य सोम और रुद्र इस राष्ट्र में हमें सुखी रक्खें । ५

९६८ ऐसे ही तू सिद्धि पा– यह सुवचन है । तीक्ष्ण......[शेष पूर्ण मन्त्र के समान] ६

९६९ ऐसे ही शत्रु को दूर भगा– यह सुवचन है । तीक्ष्ण......[,,] ७

९७० सोम-रुद्र निन्दनीय बुरे गुणों-कष्टों-दुर्व्यसनों से छुड़ायें, सङ्गठन पालें, अमर ज्ञान-अभय दें । ८

९७१ हे इन्द्र! तू आँख-मन-ज्ञान-तप -शस्त्र का शस्त्र है । आक्रामक निःशस्त्र हो जायें । ९

९७२ हे अग्नि! जो हमें आँख-मन-ज्ञान-संकल्प से दास बनायें उन्हें अपने शस्त्रसे निःशस्त्र कर । १०

९७३ तू इन्द्र पद ले रहा है, मैं तेरी शरण हूं सब गति-बल जो मेरा है उस के साथ तेरी शरण हूं ।११

९७४–७६ तू इन्द्र का आश्रय-कवच-ढाल है, मैं गौ-तन-मन-धन से तेरे पास आता हूं । ११–१४

सूक्त ७ [१० मन्त्र- ९७७-९८६] अराति [अदानशीलता और संग्रह]

९७७ आ नो भर मा परि ष्ठा अराते मा नो रक्षीर्दक्षिणां नीयमानाम् ।
नमो वीर्त्साया असमृद्धये नमो अस्त्वरातये ॥ १

यमराते पुरोधत्से पुरुषं परिरापिणम् । नमस्ते तस्मै कृण्मो मा वनिं व्यथयीर्मम ॥ २

प्र णो वनिर्देवकृता दिवा नक्तं च कल्पताम् अरातिमनुप्रेमो वयं नमो अस्त्वरातये ॥ ३

सरस्वतीमनुमतिं भगं यन्तो हवामहे । वाचं जुष्टां मधुमतीमवादिषं देवानां देवहूतिषु ॥ ४

यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या मनोयुजा । श्रद्धा तमद्य विन्दतु दत्ता सोमेन बभ्रुणा ॥५

९८२ मा वनिं मा वाचं नो वीर्त्सीरुभाविन्द्राग्नी आ भरतां नो वसूनि ।
सर्वे नो अद्य दित्सन्तोऽरातिं प्रति हर्यत ॥ ६

९८३ परोपेह्यसमृद्धे वि ते हेतिं नयामसि । वेद त्वाहं निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते ॥ ७

९८४.उत नग्ना बोभुवती स्वप्नया सचसे जनम्,अराते चित्तं वीर्त्सन्त्याकूतिं पुरुषस्य च ॥ ८

९८५.या महती महोन्माना विश्वा आशा व्यानशे । तस्यै हिरण्यकेश्यै निर्ऋत्या अकरं नमः॥९

९८६. हिरण्यवर्णा सुभगा हिरण्यकशिपुर्मही । तस्यै हिरण्यद्रापयेऽरात्या अकरं नमः ॥ १०

९७७ हे अराति ! हमें पूर्ण भर, चिन्ता में न डाल, हमारी लायी दक्षिणा को न रख, उस ईर्ष्यालु असमृद्धि और अदानशीलता को दूर से नमस्कार तथा वज्र हो (अर्थात् वह नहीं चाहिए) । १

९७८ हे अराति! जिस बड़बड़ानेवाले को तू आगे रखती है उस तेरे पुरुषको नमः, मेरी वृत्ति न छीन ।२

९७९ हमारी जो वृत्ति विद्वान् बनायें वह दिन-रात बनी रहे, हम अदानी से कहें कि कृपणताको छोड़ ।

९८० ऐश्वर्य पाकर भी हम विद्या और सुमति को पास बुलाते रहें, विद्वानों के आह्वान के अवसर पर मैं उनकी प्रिय वाणी बोला करूँ । ४

९८१ मैं जिससे मन से ज्ञानमय वाणी से माँगूँ उस में भर्ता ईश्वर की दी हुई श्रद्धा बनी रहे । ५

९८२ (हे स्वामिन्) हमारी वृत्ति और वाणी को न रोक, शासक और मन्त्री हमारे निवास और वस्त्र हमें देते रहें, तुम सभी कृपणता को सदा के लिए ही त्याग दो । ६

९८३ गरीबी ! दूर हट, हम तुझ पर वज्र गिरायें। मैं कृपणता को अबल-कर्त्री, पीडक जानता हूं। ७
९८४ हे अराति ! तू नङ्गी हो कर जनों को आलस्य -युक्त और चित्त-बुद्धि को मन्द करती है। ८
९८५ बड़ी-विशाल होने के कारण दिशाओं में फैली, सुनहरी बाल-युक्त पाप-वृत्ति को दूर से नमः। ९
९८६ हस्तेरा सुवर्ण वर तुज्य, दर्शनीय, बड़ी, सुनहरे वस्त्र-ढकी, सुवर्ण से पाप फैलाने वाली अराति (अदानशीलता कृपणता कंजूसी) के लिए मैं वज्र-प्रहार करूं। १०

सूक्त ८। इन्द्र। शासक-सेनापति के कर्तव्य। ९८७ से ९९५ तक

९८७ वोरुङ्क्ष्वैनेऽभेन देवेभ्य आज्यं वह। अग्ने तां इह मादय सर्वा आयन्तु मे हवम्॥ १
९८८ इन्द्रा याहि मे हवमिदं करिष्यामि तच्छृणु। इम ऐन्द्रा अतिसरा आकूतिं सं नमन्तु मे। तेभिः शकेम वीर्यं जातवेदस्तनूवशिन्॥ २
९८९ यदसावमुतो देवा अदेवः संश्चिकीर्षति। मा तस्याग्निर्हव्यं वाक्षीद्धवं देवा अस्य मोप गुर्ममैव हवमेतन॥ ३॥ अति धावतातिसरा इन्द्रस्य वचसा हत। अविं वृक इव मथ्नीत स वो जीवन् मा मोचि प्राणमस्यापि नह्यत॥ ४
यममी पुरो दधिरे ब्रह्माणमपभूतये। इन्द्र स ते अधस्पदं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे॥५
९९२ यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे। तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि॥ ६॥यानसावतिसरांश्चकार कृणवच्च यान्। त्वं तानिन्द्र वृत्रहन् प्रतीचः पुनरा कृधि यथामुं तृणहां जनम्॥ ७
यथेन्द्र उद्वाचनं लब्ध्वा चक्रे अधस्पदम्। कृण्वेऽहमधरांस् तथामूं्छश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ ८
९९५ अत्रैनानिन्द्र वृत्रहन्नुग्रो मर्माणि विध्य। अत्रैवैनानभि तिष्ठेन्द्र मेद्यहं तव। अनु त्वेन्द्रा रभामहे स्याम सुमतौ तव॥ ९

९८७ हे अग्नि(अग्रणी प्रधानमन्त्री) ! तू तेजस्वी वज्र की सहायता से विद्वानों को घी आदि भोग्य प्राप्त करा, इन्हें यहाँ प्रसन्न कर। वे मेरे सङ्गठन में आयें। १
९८८ हे इन्द्र (सेनापति) ! तू मेरे इस सङ्गठन में आ, मैं जो करूँ, सुन। ये जो अग्रगामी पुरुष हैं मेरे अनुसार झुकें। हे शरीर को वश में रखनेवाले वस्तुज्ञाता ! इन उपायों से हम बल बढ़ायें। २
९८९ हे देवो ! जो देव न होकर विरोध जगह से कुछ करना चाहता है उसे राजा अन्न न पहुंचाये, देव उसकी पुकार न सुनें, मेरे ही आदेश को सुनें-मानें। ३
९९० हे सैनिको, तेजी से दौड़ो, सेनापति के वचन से मारो, जैसे भेड़िया भेड़ को, वैसे ही तुम शत्रु को मथ डालो। वह जीता बचकर न जा सके, इस प्राण को भी बाँध लो (नाश करो)। ४
९९१ हे इन्द्र ! ये शत्रु जिस ब्रह्मा को विनाश-पराजय के लिए सामने करके रखते हैं वह तेरे पाँव के नीचे हो; मैं उसे मृत्यु के लिए सौंपता हूं। ५
९९२ यदि शत्रुओं ने विद्वानों को आगे करके आक्रमण किया हो और विज्ञान को कवच बनाया हो तथा शरीर-रक्षक कवच धारण कर जो बकें, तो उस सबको तुम व्यर्थ कर दो। ६

९९३ हे इन्द्र ! इस शत्रु ने जिन्हें अग्रगामी बनाया उन्हें तू पीछे कर जिससे मैं उन्हें मार सकूँ । ७
९९४. प्रतापी राजा के समान मैं गड़गड़ानेवाले शत्रुओं को पकड़कर सदा के लिए पाँव के नीचे दबालूँ ८।
९९५ हे शत्रु-नाशक इन्द्र! यहाँ उग्र होकर आक्रमण कर; इन शत्रुओं के मर्मों पर प्रहार कर, मैं तेरा मित्र होकर रहता हूं। हे इन्द्र ! हम तेरे अनुकूल कार्य आरम्भ करते हैं, तेरी सुमति में रहें। ९

सूक्त ९ । प्रजापति । (द्यावा-पृथिवी रक्षा करें)

९९६-१००१ दिवे स्वाहा ।१। पृथिव्यै स्वाहा ।२। अन्तरिक्षाय स्वाहा । ३
अन्तरिक्षाय स्वाहा । ४ । दिवे स्वाहा । ५ । पृथिव्यै स्वाहा । ६
२ सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणो ऽन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् ।
अस्तृतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं निदधे द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय ॥७
३ उदायुरुद्बलमुत् कृतमुत् कृत्यामुन्मनीषामुदिन्द्रियम् । आयुष्कृदायुष्पत्नी
स्वधावन्तौ गोपा मे स्तं गोपायतं मा । आत्मसदौ मे स्तं मा मा हिंसिष्टम् ॥८

९९६-१००१ द्यौ-भूमि-अन्तरिक्ष-उनकी शुद्ध वायु-सूर्य-पृथिवी की वस्तुओं से स्वास्थ्य के लिए सुवचन।१-६
२ सूर्य मेरी आँख है; वायु प्राण, अन्तरिक्ष आत्मा, पृथिवी शरीर है। मैं 'अस्तृत'(अमर) नाम हूं। वह मैं अपने को रक्षार्थ द्यावा-पृथिवी के लिए सौंपता हूं। ७
३ मेरी आयु-बल-कार्य-कर्तव्य-बुद्धि-इन्द्रियों को उत्तम बनाओ। आयु-वर्धक सूर्य तथा आयु-पालक भूमि दोनों स्वधा(अन्न-जल-जीवन-शक्ति)से पूर्ण होकर रक्षा करें, कभी मेरा नाश न करें। ८

सूक्त १० । ब्रह्म (ईश्वर, वेद, ज्ञान) । ८ मन्त्र १००४–१०११ तक

१००४ अश्मवर्म मे ऽसि यो मा प्राच्या दिशोऽघायुरभिदासात् । एतत्स ऋच्छात् ॥१
५ ,, दक्षिणाया ,, २
६ ,, प्रतीच्या ,, ३
७ ,, उदीच्या ,, ४
८ ,, ध्रुवाया ,, ५
९ ,, ऊर्ध्वाया ,, ६
१० ,, दिशामन्तर्देशेभ्यो ,, ७
११ बृहता मन उपह्वये मातरिश्वना प्राणापानौ । सूर्याच्चक्षुरन्तरिक्षाच्छ्रोत्रं पृथिव्याः शरीरम् । सरस्वत्या वाचमुप ह्वयामहे मनोयुजा ॥ ८

१००४-१०१० यह(ज्ञान)मेरा पत्थर का दृढ़ कवच है । जो पापी पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर-नीचे-ऊपर की दिशाओं तथा उनके मध्य-स्थानों से मुझपर आक्रमण करे वह स्वयं नाशको प्राप्त हो ।१-७
१०११ मैं बड़े ज्ञान के साथ मनः-शक्ति प्राप्त करूँ । हम वायु से प्राण-अपान, भूमि से शरीर, मनो-योग से वेद-वाणी और विद्या से अपनी वाणी को प्राप्त करें। ८

अनुवाक ३ (सूक्त ११-१५)

महर्षि के अनुसार विषय— वरुणेश्वर प्रार्थना-गणिताद्यनेकविध पदार्थ-विद्या

सूक्त ग्यारह । ब्रह्म । [१०१२-२२]

१०१२ कथं महे असुरायाब्रवीरिह कथं पित्रे हरये त्वेष-नृम्णः।
पृश्निं वरुण दक्षिणां ददावान् पुनर्मघ त्वं मनसाचिकित्सीः ॥ ३

१३ न कामेन पुनर्मघो भवामि सं चक्षे कं पृश्निमेतामुपाजे ।
केन नु त्वमथर्वन् काव्येन केन जातेनासि जातवेदाः ॥ २

१४ सत्यमहं गभीरः काव्येन सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः ।
न मे दासो नार्यो महित्वा व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये ॥ १

१५ न त्वदन्यः कवितरो न मेधया धीरतरो वरुण स्वधावन् ।
त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ स चिन्नु त्वज्जनो मायी बिभाय ॥ ४

१६ त्वं ह्यङ्ग वरुण स्वधावन् विश्वा वेत्थ जनिमा सुप्रणीते ।
किं रजस एना परो अन्यदस्त्येना किं परेणावरमसुर ॥ ५

१७ एकं रजस एना परो अन्यदस्त्येना पर एकेन दुर्णशं चिदर्वाक् ।
तत्ते विद्वान् वरुण प्रब्रवीम्यधोवचसः पणयो भवन्तु नीचैर्दासा उपसर्पन्तु भूमिम् ॥ ६

१८ त्वं ह्यङ्ग वरुण ब्रवीषि पुनर्मघेष्ववद्यानि भूरि ।
मो षु पणींरभ्ये३तावतो भून्मा त्वा वोचन्नराधसं जनासः ॥ ७

१९ मा मा वोचन्नराधसं जनासः पुनस्ते पृश्निं जरितर्ददामि ।
स्तोत्रं मे विश्वमा याहि शचीभिरन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ॥ ८

२० आ ते स्तोत्राण्युद्यतानि यन्त्वन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ।
देहि नु मे यन्मे अदत्तो असि युज्यो मे सप्तपदः सखासि ॥ ९

२१ समा नौ बन्धुर्वरुण समा जा वेदाहं तद्यन्नावेषा समा जा ।
ददामि तद् यत् ते अदत्तो अस्मि युज्यस्ते सप्तपदः सखास्मि ॥१०

१०२२. देवो देवाय गृणते वयोधा विप्रो विप्राय स्तुवते सुमेधाः । अजीजनो हि वरुण स्वधावन्नथर्वाणं पितरं देवबन्धुम् । तस्मा उ राधः कृणुहि सुप्रशस्तं सखा नो असि परमं च बन्धुः ॥११

१०१२ हे वरुण ! यहाँ तेजो-बली तू बड़े असुर (प्राणी); दुःख-हर्ता के लिए कैसे बचन बोलता है? पृथ्वी-अन्न की शक्ति देनेवाला, नाना सम्पत्ति का ईश ! तू मन से कैसे विचार करता है ?१

१३ [वरुण—] मैं कामना से ही बहुत धनी नहीं होता, इस भूमि का पालन करता हूं । हे देव! तुम किस काव्य-विधान द्वारा सब पदार्थों के ज्ञाता हो जाते हो ? २

१०१४ [विद्वान्—] सत्य ही मैं वेद-काव्य-विधान से पदार्थ-ज्ञ होता हूं। कोई दास या आर्य मेरा यह व्रत नष्ट नहीं कर सकता जा मैं अपनी महिमा से धारण करता हूं। ३

१५ हे स्वयं-धारक! तुमसे भिन्न दूसरा कोई अधिक श्रेष्ठ कवि तथा बुद्धि-धीर नहीं है। तू सब लोकों को जानता है अतः कपटी तुम से डरता है। ४

१६ हे प्रिय, स्वधा-सम्पन्न, नसुनीति-कार्यकारी वरुण! तू सब उत्पन्नों को जानता है। हे ज्ञानी! इस लोक के परे दूसरा क्या है और उससे उतर कर क्या है? ५

१७ [वरुण—] इस लोक से परे दूसरा एक (ब्रह्म) है और उतर कर जो (प्रकृति) है वह भी नाश नहीं होती। इस स्वरूप का ज्ञाता मैं कहता हूं कि दुष्ट व्यवहार-कर्ताओं की वाणी नीची हो और दास नीच दशा पाकर भूमि पर सरकते रहें। ६

१८ [विद्वान्—] हे वरुण! तुम ठीक कहते हो कि बार बार धन पानेवाले लोभियों में बहुत निन्दनीय दोष होते हैं, उनको भी हानि न हो। लोग तुम्हें धन-हीन न कहें। ७

१९ [वरुण—] लोग मुझे धन-हीन न कहें, तुझे बार-बार पृथ्वी-अन्न देता हूं, तू मनुष्य-युक्त सब दिशाओं में अपनी शक्तियों से मेरे सब स्तोत्र प्राप्त कर। ८

२० [विद्वान्—] हे वरुण! तेरे स्तोत्र सब पुरुषों की दिशाओं में उत्तम प्रकार फैलें, जो मुझे नहीं दिया वह (मोक्ष) दें, क्योंकि तू मेरे शिरस्थ ७ प्राणों द्वारा पाने-योग्य बन्धु है। ९

२१ हे वरुण! हम दोनों समान बन्धु हैं, स्थिति समान है; अतः जो अभी तक मैंने नहीं दिया वह (स्व) देता हूं; मैं तेरा सप्तपदी सखा हूं। (दस)

२२ स्तोता को अन्न-दाता, विप्र को सुमेधाप्रद, स्वधायुक्त वरुण! तू देव-बन्धु पालक को स्थिर योगी बनाता है, उसे उत्तम प्रशंसनीय धन दे, तू हमारा परम बन्धु सखा है। (ग्यारह)

सूक्त १२। जातवेदाः-बर्हि-प्रजा-उषासानक्तादव्या होतारा-३ देवियाँ

१०२३ समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान् यजसि जातवेदः।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान् त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः॥ १

२४ तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान् मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः॥ २

२५ आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान् यक्षीषितो यजीयान्॥ ३

२६ प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम्।
व्युप्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम्॥ ४

२७ व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः॥ ५

२८ आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने॥ ६

१०२९ दव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥ ७

३० आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वतीः स्वपसः सदन्ताम् ॥ ८

३१ य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद् भुवनानि विश्वा ॥
तमद्य होतरिषितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥ ९

३२ उपावसृजत्मन्या समञ्जन् देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥ १०

३३ सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रशिष्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः ॥ ११

१०२३ मनुष्य के घर में सदा प्रदीप्त, गतियुक्त, उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान हे अग्नि! तू देवों को सङ्गठित करता है। सूर्यवत् तेजस्वी क्रियाशील तू उन्हें यहाँ ला, तू पदार्थों को सब जगह पहुंचाने वाला शब्द-कर्ता तथा उत्तम चेतना-दायक है। १

२४ शरीर को न गिरने देनेवाले हे अग्नि (तापक्रम-जठराग्नि)! सत्य नियमों के साधक मार्गों को मधुरता से प्रकट करता हुआ सुन्दर लपट-युक्त तू भोजनको स्वादिष्ठ कर। अपने कार्यों से हमारे काम और यज्ञको समृद्ध करता हुआ अन्य देवों के साथ मिलकर सृष्टि-यज्ञ सम्पन्न कर। २

२५ हे सुप्रयुक्त स्तुत्य प्रशस्य अग्नि! तू वसुओं के साथ प्रकट हो, देवों का होता (शक्ति-दाता) महान् हमारा अभीष्ट तू यज्ञ करता हुआ सृष्टि को सुसङ्गत कर। ३

२६ पूर्वाह्न में इस पृथ्वी को तेज से ढाँकने के लिए पूरब में सूर्य प्रकट होकर श्रेष्ठतम प्रकाश को फैलाता है; वह पृथ्वी और देवों को सुखकारी होता है। ४

२७ योग्य पत्नियाँ जैसे पति का आदर करती हैं वैसे ही प्रजा महान्, मनोहर द्वारों का आश्रय लें। ५

२८ उत्तम चलनेवाले समीपस्थ दिन-रात हमारे घर में दिव्य-सेवनीय शोभा धारण करनेवाले हों। ६

२९ प्रख्यात सुवाणी वाले दिव्य दो होता (अग्नि-आदित्य) मनुष्य का यज्ञ पूरा करने हेतु निर्माण करते हुए, कर्म-प्रेरक होकर पूर्व दिशा की ज्योति को अपने शासन से बताते हैं। ७

३० हमारे यज्ञ (सङ्गठन) में भारती (मातृभूमि), यहाँ चिताती हुई, मनुष्य-युक्त इडा (मातृभाषा) शीघ्र प्रतिष्ठित हो। सरस्वती (विद्या-संस्कृति)-सहित ये तीनों देवियाँ इस सुखद काम में सुकर्मियों को मिलें। ८

३१ हे होता (अर्थ-मन्त्री)! जो त्वष्टा देव (शिल्पी) उत्पादक द्यावा-पृथिवी और सब भुवनों को रूपों से शोभित करता है उसे तू प्रेरित सुसङ्गठक विद्वान् होकर यहाँ सदा आदर दिया कर। ९

३२ आत्मशक्ति से सम्यक् गति करता हुआ तू देवों को ऋतुअनुसार अन्न-भोग्य वस्तुएँ दे। वनस्पति, शमिता (वायु) और दिव्य अग्नि ये मधु-घी से हव्य को स्वादु, एवं पेट्रोल से मार्ग को सुखद करें। १०

१०३३ अग्नि शीघ्र प्रकट होकर शिल्प को सम्पन्न करता और देवों का अगुआ होता है, इस सच्चे होता के शासन-वचन में विद्वान् सुवचन से सम्पन्न शिल्प का उपभोग करें। ११

सूक्त तेरह । प्रजापति । सर्प-विष-चिकित्सा । १०३४-४४

१०३४ ददिर्हि मह्यं वरुणो दिवः कविर्वचोभिरुग्रैर्नि रिणामि ते विषम् ।
खातमखातमुत सक्तमग्रभमिरेव धन्वन्नि जजास ते विषम् ॥ १

३५ यत् ते अपोदकं विषं तत् त एतास्वग्रभम् ।
गृह्णामि ते मध्यममुत्तमं रसमुतावमं भियसा नेशदादु ते ॥ २

३६ वृषा मे रवो नभसा न तन्यतुरुग्रेण ते वचसा बाध आदु ते ।
अहं तमस्य नृभिरग्रभं रसं तमस इव ज्योतिरुदेतु सूर्यः ॥ ३

३७. चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि विषेण हन्मि ते विषम्, अहे म्रियस्व मा जीवीः प्रत्यगभ्येतु त्वा विषम्

३८ कैरात पृश्न उपतृण्य बभ्र आ मे शृणुतासिता अलीकाः ।
मा मे सख्युः स्तामानमपि ष्ठाताश्रावयन्तो नि विषे रमध्वम् ॥ ५

३९ असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च ।
सात्रासाहस्याहं मन्योरवज्यामिव धन्वनो वि मुञ्चामि रथाँ इव ॥ ६

४० आलिगी च विलिगी च पिता च माता च, विद्म वः सर्वतो बन्ध्वरसाः किं करिष्यथ ॥ ७

४१ उरुगूलाया दुहिता जाता दास्यसिक्न्या । प्रतङ्कं दद्रुषीणां सर्वासामरसं विषम् ॥ ८

४२. कर्णा श्वावित्तदब्रवीद् गिरेरवचरन्तिका, याः काश्चेमाः खनित्रिमास्तासामरसतमं विषम्।

४३ ताबुवं न ताबुवं न घेत् त्वमसि ताबुवम् । ताबुवेनारसं विषम् ॥ १०

४४ तस्तुवं न तस्तुवं न घेत् त्वमसि तस्तुवम् । तस्तुवेनारसं विषम् ॥ ११

१०३४ द्यौ का कवि वरुण (वरणीय-दोष-निवारक ईश्वर, विद्वान् वैद्य) मुझे यह ज्ञान देता है — (हे साँप!) मैं तेरा विष उग्र वचन और वच औषधि से दूर करूँ। मांस में घुसे, न घुसे, और ऊपर लगे विष को मैं निकालूँ, तेरा विष का, मरुस्थल में जल के समान, नाश हो । १

३५ तेरा जल सुखानेवाला और इन नाडियों में से तेरा बड़ा-मध्यम-कम-भयज विष ले लूं। २

३६ मेरा शब्द आकाश में फैली गर्जना के समान वली है। उग्र वचन से मैं तुझे तथा तेरे विष को मनुष्यों तथा मुख्य औषधियोंकी सहायतासे दूर करूँ, रोगी अँधेरे से निकले सूर्य बन् चमके । ३

३७ अपने चक्षु से तेरा चक्षु तथा जहर से जहर नष्ट करदूँ । तू मर; जहर लौटकर तुझे पहुँचे ।४

३८ हे कैरात(नाग)-पृश्नि(कबरा)-उपतृण्य(घास वाला)-बभ्रु(भूरा)-काला-अलीक नामक साँपो! मेरी बात सुनो— मेरे सखा के हाते में मत रुको। खटखट सुनकर अपने घर में ही चुप बैठो। ५

३९ काले-भूरे-जल-स्थल-वाली-क्रोधी साँपके जहर-रथ मैं वैसे ही हटाऊँ जैसे धनुष से डोरी। ६

४० चिपटने तथा टेढ़ा चलने वाली सर्पिणी, इसके जनक-माता-भाई को हम जानें। वे जहर से रहित होकर क्या कर सकते हैं ? ७

१०४१ बहुत हिंसक नागिन उरुगूला(बड़ी गुदायुक्त) की पुत्री तथा असिक्नी को काटनेवाली सर्प-जाति पैदा होती हैं, उन सब खुजली-दाह के उत्पादकों का कष्ट-दायक विष निर्बल हो जाय । ८ *

४२ कान वाली, श्वाचित् (कुत्ते द्वारा ढूंढ़कर पायी जाने वाली), बोलने वाली, पहाड़ से नीचे ढालू खोदी भूमि में रहने वाली जो भी सर्प-जातियाँ हैं उनका विष समाप्त हो जाय। ९

४३ ताबुव सर्प के समान ताबुव(कड़वा तुम्बा) अपने समान सर्प-विष की औषधि है जिससे विष अरस हो जाता है। (दस)

४४ तस्तुव के समान हो तस्तुव औषधि है जिससे विष नीरस किया जाय। (ग्यारह)

सूक्त १४ । प्रजापति । कृत्या [घातक क्रिया] को हटाना

१०४५.सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्नसा,दिप्सौषधे त्वं दिप्सन्तमव कृत्याकृतंजहि ॥१
४६,अव जहि यातुधानानव कृत्याकृतं जहि। अथो योअस्मान्दिप्सति तमु त्वं जह्योषधे ॥२
४७.रिश्यस्येव परीशासं परिकृत्य परि त्वचः। कृत्यांकृत्याकृते देवा निष्कमिव प्रतिमुञ्चत ॥३
४८.पुनःकृत्यां कृत्याकृते हस्तगृह्य पराणय। समक्षमस्मा आधेहि यथा कृत्याकृतं हनत् ॥४
४९.कृत्याः सन्तु कृत्याकृते शपथः शपथीयते, सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः॥५
५०.यदि स्त्री यदि वा पुमान् कृत्यां चकार पाप्मने,तामु तस्मै नयामस्यश्वमिवाश्वाभिधान्या॥
५१. यदि वासि देवकृता यदि वा पुरुषैः कृता। तां त्वा पुनर्णयामसीन्द्रेण सयुजा वयम् ॥७
५२. अग्ने पृतनाषाट् पृतनाः सहस्व । पुनः कृत्यां कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि ॥८
५३ कृतव्यधनि विध्य तं यश्चकार तमिज्जहि। न त्वामचक्रुषे वयं वधाय सं शिशीमहि॥ ९
५४.पुत्रइव पितरङ्गच्छ स्वज इवाभिष्ठितो दश,बन्धमिवावक्रामी गच्छ कृत्येकृत्याकृतं पुनः॥
५५ उदेणीव वारण्यभिस्कन्दं मृगीव। कृत्या कर्तारमृच्छतु ॥ ११
५६.इष्वा ऋजीयः पततु द्यावापृथिवी तं प्रति,सा तं मृगमिव गृह्णातु कृत्या कृत्या कृतं पुनः।
५७.अग्निरिवैतु प्रतिकूलमनुकूलमिवोदकम्। सुखो रथमिव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥१३

१०४५ गरुड़ तुझे पाता है, सुअर तुझे नाक से खोदता है, (यह अंश २-२७-२ में भी है।) हे पाठा औषधि! नाशक का नाश कर और हिंसक को मार। १

४६ हे, औषधि(बम)! यातना-कारियों, कृत्या(हिंसक-क्रिया)को, जो हमें मारता है उसको तू मार।२

४७ हे विजयी सैनिको! जैसे हिरन पशु की त्वचा के चारों ओर काट कर वश में करते हैं वैसे ही हिंसक जन के साथ उपाय करके निश्चेष्ट कर छोड़ दो।३

४८ फिर शस्त्र हाथ में लेकर हिंसक को हाथ से पकड़ कर बन्दी रक्खो या दूर छोड़ दो, इस को सामने दिखा दो कि हिंसक कैसे मारा जाता है। ४

४९ हिंसक की हिंसा हो, गालियाँ लौटा दो, हिंसा हिंसक के पास सुखद रथ के समान पुनः घूमे।५

५० चाहे स्त्री चाहे पुरुष जो भी पाप के लिए हिंसा करता है इसे रस्सी से घोड़े के समान बाँध दे।६

५१ देवों या पुरुषों द्वारा की गयी घातक क्रिया को हम सहायक इन्द्र(बिजली-सेनापति)द्वारा हटादें।७

५२ हे युद्ध-जेता अग्रणी! तू युद्ध जीत, हम हिंसक की घातक क्रिया(बम)घातक पर ही लौटादें।८

५३ हे घातक-नाशक सेना! घातक को बींध और जीत,हम अघातक के वध की प्रेरणा नहीं देते।९

५४ घातक-क्रिया वैसे ही हिंसक के पास जाय जैसे पुत्र पिता के पास, लिपटने वाले साँप-समान वह शत्रु को डस ले, वह घातक की ओर वैसे ही पुनः लौटे जैसे नियम तोड़ने वाला बन्धनको पाताहै। १०

५५ हथिनी-सिंहिनी-मृगी के समान घातक की क्रिया उसी पर पहुँचे। ११

५६ हे द्यौ-पृथिवी! घातक प्रयोग कर्ता के ही पास बाण-समान गिरे और मृग-समान पकड़े। १२

५७.कृत्या शत्रुपर आग और सिवार जलक समान पहुँचे, सुखद रथ-समान वह कर्ता को ही लौटे।१२

सूक्त १५। ओषधि। ऋतावरी-मधु। १०५८-१०६८

१०५८.एका च मे दश च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ १

५९ द्वे च मे विंशतिश्च मे० (पूर्ववत्)। २। ६० तिस्रश्च मे त्रिंशच्च मे०। [पूर्ववत्]।३

६१ चतस्रश्च मे चत्वारिंशच्च मे०,,।४। ६२ पञ्च च मे पञ्चाशच्चा मे० [,,]॥ ५

६३ षट् च मे षष्टिश्चा मे० ,,॥ ६॥ ६४ सप्त च मे सप्ततिश्चा मे० ,,॥ ७

६५ अष्ट च मे ऽशीतिश्च मे० ,,॥ ८॥ ६६ नव च मे नवतिश्चा मे० ,,॥ ९

६७ दश च मे शतं च मे० ,,॥ १०

६८ शतं च मे सहस्रं चापवक्तार ओषधे। ऋतजाते ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ११

१०५८ हे सत्योत्पन्न, सत्य-पालक ऋतावरी और शहद औषधि! तू मेरे लिए मधुर और सुखदायक हो, चाहे तू एक और मेरे निन्दक अपवक्ता दस हों। १

५९ ... दो और बीस हों। २

६० ...तीन और तीस हों। ३

६१ चार और चालीस हों। ४

६२-पाँच और पचास हों। ५

६३ छः और साठ हों। ६

६४ सात और सत्तर हों। ७

६५. आठ और अस्सी हों। ८

६६. नौ और नब्बे हों। ९

६७ चाहे दस और दस गुने सौ हों, औषधि (बम) दस और अपवक्ता (शत्रु) सौ हों। १०

१०६८ और चाहे मेरी औषधियाँ सौ, तथा अपवक्ता हजार हों, हे ऋत-जाता ऋतावरी, मधुला औषधि! तू मेरे लिए मधुर (ज्ञान-आनन्द) कर। ११

इस सूक्त में एक दस आदि और उनकी दस गुनी, हजार तक संख्या बताने से गणित का मूल भी है।

—ॐ—

साहित्य-समीक्षा

वेदार्थपारिजात-खण्डनम्— लेखक आचार्य वीरेन्द्रमुनि शास्त्री एम० ए०, मूल्य २०) ग्रन्थ पठनीय है। करपात्री के कुतर्कों का समुचित उत्तर दिया गया है। (सार्वदेशिक २७-८-८९)

अनुपम भगवद्गीता— सम्पूर्ण, ईश्वर के सौ नाम, मूल ७०श्लोकी गीता दोहा-चौपाइयों में, मूल्य ४), पठनीय और संग्रहणीय, पता- लेखक आचार्य चन्द्र भूषण शास्त्री,आ.स.गणेशगंज लखनऊ

समाचार

प्रवेश-सूचना

महर्षि-स्मारक ट्रस्ट टङ्कारा संचालित अन्तरराष्ट्रिय उपदेश महाविद्यालय में प्रवेश १जुलाईसे होगा भोजनादि सब निःशुल्क। प्रवेश के इच्छु १६ से २० वर्ष के अविवाहित मेटिक या समकक्ष नियमावली और प्रवेशपत्र मगा सकते हैं-ओमप्रकाश शास्त्री एम.ए.प्राचार्य अ.उ.महावि.टङ्कारा,राजकोट,गुज.

—आर्ष गुरुकुल आबू पर्वत में सामवेद-पारायण यज्ञ २३ से २८ मई ९० तक हुआ।

—आर्यसमाज बैङ्गलोर में रजत-जयन्ती और पाणिनि-कन्या-महाविद्यालय वाराणसी में उत्सव तथा वेद-सुम्मेलन ७-९ अप्रैल १९९० तक हुआ।

—चैत्र शुक्ल १ और ५ को नव संवत्सरोत्सव और आर्यसमाज-स्थापन मनाया गया। आर्डनैन्स फैक्टरी येदुमेलारम(मेदक-आन्ध्र)में १३मा.से२५ अ० तक रहके बी.शा. ने २७-३-९०को आर्यसमाज स्थापित की। १०-५-९० को द.बाल० लख.में स्वा० सत्यप्रकाश ने संस्कृत-भवन, पुस्तकालय,शोधसं० - शिला०क्रिया।

—आ०स० महावीरगंज लख० में जलसा और मङ्गल-मेला तेरह-पन्दरह मई को हुआ।

—विश्व वेदपरिषद्-गोष्ठी ९-५-९० में निर्णय हुआ कि यजुर्वेद अ० २५ में ४७ ही मन्त्र हैं,४८ के मुद्रक प्रकाशक- वैदि. य. अजमेर, सार्व०, दयानन्द-सं०, आर्षसा०प्र०ट्रस्ट आगे अपनी भूल सुधारें।

—कश्मीर- पंजाब की दशा भयानक है। गृहमन्त्री के सम्बन्ध आतंकवादियों से बताये गये।

—द्वारिका के शंकराचार्य नजरबन्द। अयोध्या-राममन्दिर-शिलान्यास न होने देंगे -मुख्यमन्त्री यू.पी०

—श्री सुभाष विद्यालंकार ५ मई से गुरुकुल कांगड़ी के नये कुलपति नियुक्त हुए। बधाई!

—सुन्दनगर-कोटड़ा-अजमेर में ४से६मई तक प.हरिप्रसाद शर्मा,श्रीजगमोहन ने सफल वृष्टियज्ञ किया। राज.आ.० प्र० सभा की शताब्दी अठारह -२० मई तक जयपुर में मनायी गयी।

—आर्यसमाज अलमोड़ा-उत्सव ६-८ जून तक होगा।

शोक-समाचार

नीचे अंकित आर्यों के निर्वाण पर हार्दिक दुःख व्यक्त है—

स्वामी रामेश्वरानन्द [९३] गुरुकुल घरौंडा करनाल ८-५-९०
डा०दु खनराम पटना [९०]पूर्व प्रधान सार्व० आ०प्र० स० दिल्ली
प० ईश्वरचन्द्र दर्शनाचार्य बंबई। २१-४-९०
प० रुद्रदत्त शर्मा अमृतसर[८८] २८-३-९०
श्री जगदीश चन्द्र मल्होत्रा आ०वि०मंदिर बंबई १०-३-९०
श्री श्याममुनि आर्य के पुत्र श्री प्रेमचंद्र आर्य भरथना रेल-दुर्घटना १४-४-९०
म. जगन्नाथ आर्य शहजादपुर महेन्द्रगढ [७०]

पृ २४ वर्ष १४, अङ्क५-६, वैशाख-ज्येष्ठ २०४७ ❋वेदज्योति❋ मई-जून ९० ६९२१/६२१ डाक लख२०१

श्रीमन् ! नमस्ते, आपका वर्ष ८९-९० को पूर्ण हो चुका है, कृपया वार्षिक शुल्क शीघ्र भेजिये। इसके मिलने पर ही अगला अंक भेजा जायेगा। अंकों को सँभाल कर रखिये, फिर न मिल सकेंगे। ...दस्य विशेषतः आजीवन संरक्षक अथर्ववेद के प्रकाशन में कृपया आर्थिक सहायता दें।

...वेदका अनर्थ (१६)

वेदमें जालबद्ध मछलियों और अपाला की कथा नहीं

मई ९० के वेदप्रदीप में स्वा. गङ्गेश्वरानन्द ने ऋ ८-६७-५ में जालबद्ध मछलियों और ८-९१ में अपाला की कथा कही है जिनका मन्त्रोंमें कहीं कुछ वर्णन नहीं, आदि सृष्टि के वेदमें हो भी नहीं सकता-

जीवान्नो अभि चेतनादित्यसः पुरा हथात् । कद्धस्थ हवनश्रुतः ॥ (८-६७-५)

'हे आदित्यो! हमको मारने से पहले ज्ञान दो' यह तो मोह-जाल में फँसे मनुष्य बोल रहे हैं। मछलियाँ संस्कृत नहीं बोल सकतीं, सूक्तर्षि भी नर ही हैं जिनका नाम इस सूक्त ने पड़ा, मछलियाँ नहीं। दूसरी अपाला-कथा भी वेदमें नहीं। 'जम्भ-सुत मुखमें दबाये सोम औषधिसे जीव पुष्ट होताहै। अपाला विनब्याही पालक-रहित स्त्री अपने रथ [निम्नाङ्ग] -अन प्राण-हृदय] -युग [जोड़े में इन्द्रिय आँख आदि] छिद्रों के दोष दूर कर पवित्र होती है यह न समझ, अनर्थ कर दिया कि वह रथ-गाड़ी और जुए के छेद में से निकली। अपाला शब्द-युक्त-मन्त्र-द्रष्ट्री होने से ऋषि नाम भी वही पड़ा-

खे रथस्य खे ऽनसः खे युगस्य शतक्रतो । अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्व्यकृणोः सूर्यत्वचम् ॥

— मुद्रक आदर्श प्रेस, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६; दूरभाष ७३५०१

सेवा में सं श्री सुभाष विद्यालङ्कार कुलपति गुरुकुल वि... गुरुकुल कांगड़ी

ऋग्वेद

ओ३म्

यजुर्वेद

वर्ष १४
अंक ७

जुलाई
१९९०

उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार

वर्ष १४ अङ्क ७, आषाढ-श्रावण(शुचि-नभः) संवत् २०४७ वि०, प० गुरुदत्त विद्यार्थी शताब्दी

वेद-मानव-सृष्टि-संवत् १ ९६ ०८ ५३ ०९१, दयानन्दाब्द १६६

शुल्क वार्षिक ३०), आजीवन ३००), विदेश में २५ पौंड, ५० डालर

सम्पादक -- आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री एम. ए. काव्यतीर्थ, उपाध्यक्ष विश्व वेद परिषद्

सहायक—विमला शास्त्री, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष ७३५०१

देहली कार्यालय-श्री रुञ्जयकुमार, मन्त्री, बी६ हितकू, वसन्तविहार, नई दिल्ली ५७, दू० ६०१४५२

....

वेद-मानव-सृष्टि-संवत् १९६०८५३०९१

प० गुरुदत्त विद्यार्थी-निर्वाण-शताब्दी-वर्ष

जन्म २६-४-१८६४
निर्वाण १८-३-९०

वेदर्षि वेदाचार्य स्वामी सर्वानन्द सरस्वती- अध्यक्ष विश्व वेदपरिषद्
आपने आबू पर्वत पर २८-५-९० को आर्ष गुरुकुल प्रचलित किया।

सत्यार्थप्रकाश-मन्त्र-व्याख्या

क्रमांक ५७। ऋषि-प्रजापति परमेष्ठी, देवता-भाववृत्तम्, छन्द-त्रिष्टुप्, स्वर-धैवत

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।

यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥

ऋ० म० १०। सूक्त-१२९। मं०-७॥

महर्षि दयानन्द — हे 'अङ्ग' = मनुष्य! जिससे यह विविध सृष्टि प्रकाशित हुई है, जो धारण और प्रलय करता है। जो इस जगत् का स्वामी, जिस व्यापक में यह सब जगत् उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय को प्राप्त होता है, सो परमात्मा है। उसको तू जान, और दूसरे को सृष्टि कर्त्ता मत मान।

सत्यार्थ प्रकाश -अष्टम समुल्लास

वेद में धातु-विज्ञान

श्री छैलबिहारीलाल गोयल, हाथरस

वेदों में अनेक; धातुओं का उल्लेख हुआ है किन्तु हमारे भारत में संस्कृत भाषा को बनाये रखने की सरकारी शिक्षानीति में इसका स्थान रखने के लिये अनुरोध करनेवाले तो अनेक व्यक्ति है किन्तु इसमें क्या गुण हैं इसे प्रमाण-सहित सरकारी तन्त्र के सम्मुख रखने वाला एक भी व्यक्ति नहीं।

संस्कृत के ही मन्त्रों में ऋषि-देवता-छन्द-स्वर होते हैं। ऋषि अर्थ-द्रष्टा, देवता विषय, छन्द वर्ण का मापक ढाँचा, स्वर उदात्त-अनुदात्त-स्वरित अक्षरों के ऊँचे-नीचे-मध्य में बोलने की ध्वनि है, ७ विभक्तियों से अनेक अर्थ होते हैं। अनेक नये शब्द लोप-आगम-विकार-विलय से बन जाते हैं।

अल्प-प्राण महा-प्राण भी अक्षरोंकी विशेषता है। परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी ४प्रकारकी वाणी आत्मा-हृदय-मन-मुख से बोली जाती है। पाणिनि के गुरु महेश्वर के १४ सूत्रों से बने ४२ प्रत्याहार व्याकरण में परम सहायक हैं। पुनरुक्त मन्त्रों के अलग-अलग अर्थ है। [शुनं हुवेम० आदि एक ही मन्त्र सोलह बार आया है, पाठकों के जिज्ञासा-पत्र आने पर सोलह अर्थ-सहित बताया जायगा]।

विद्वानोंका कार्य तो केवल जानकर बतलाना भर है। निघण्टु में गतियों के ही एक सौ बाईस नाम हैं, जल के एक सौ हैं। इनका भेद जानने-योग्य है।

वैदिक इण्डैक्स मेकडानल और कीथ ने ८-९ वर्ष के श्रमके बाद सन् १२ में प्रकाशित की। इसमें की गयी वैदिक शब्द-व्याख्या विदेशी जनों को कितनी कठिन होगी? इस में सैकड़ों विदेशों नाम है जो वेदाध्ययन में अपना जीवन समर्पित कर गये। परन्तु यहाँ एक भी पूर्ण वेद-कोष न बन सका।

अगर वि०वै० शोध-सं० साधु आश्रम होशयारपुर की 'चतुर्वेद वैयाकरण पद-सूची' और 'वैदिक इण्डैक्स' के द्वारा कुछ ही कार्य करें तो कुछ विद्वान् महीने में ही यह कोष बन जायगा।

ॐ वाजपेय यज्ञ ॐ

—वीरेन्द्र सरस्वती

वाजपेय यज्ञ यजुर्वेद अ० ९ के मन्त्र १-३४, शतपथ – काण्ड ५ और कात्यायन श्रौत-सूत्र के अ० चौदह में वर्णित है । इसके अधिकारी तीनों द्विज हैं अत: वे, विशेषत: वाजपेयी इसे अवश्य करें ।

इसका उद्देश्य वाज(अन्न-सोम)पीकर,वीर्य धारण कर बृहस्पति(विद्वान)की उच्च दिशा तक पहुंचना और इन्द्र (सम्राट्)बनना है । आज्याहुतियों से लेकर दक्षिणा तक सोलह विधियाँ पहले बताई हैं ।

इसमें सत्तरह संख्या का बहुत महत्त्व है— दीक्षा-ग्रह-पशु-यूप-चरु-परिमिति-शरावे-वस्त्र- काष्ठ-दुन्दुभि-वीणा-मन्त्र-आहुति-उज्जिति सभी सत्तरह हैं । अन्तिम प्रजापति (यज्ञ-आत्मा-ईश्वर) के लिए है । मैत्रायणी संहिता में बताया गया है—

सप्तदश पुरुष:— चत्वारि अङ्गानि, शिरो-ग्रीवम्, आत्मा, वाक् सप्तमो, दश प्राणा: ।

पुरुष के १७ भाग हैं— २ हाथ, २ पैर, सिर-गरदन, आत्मा, वाणी, दस प्राण (प्राण-अपान-व्यान-समान-उदान-नाग-कूर्म-कृकल-देवदत्त-धनञ्जय) ।

शतपथ (दस-चार-एक-सत्तरह) में संवत्सर और प्राण को प्रजापति बताकर उसकी सोलह कलाएँ सोलह अक्षर बताये और सत्तरहवाँ प्रजापति का ही गिनाया है । संवत्सर में ८ सविता की और ८ विश्वकर्मा की, ये सोलह कलायें, और प्राण में लोम-त्वचा-रक्त-मेद:-मांस-स्नायु-अस्थि-मज्जा इन ८ के दो-दो अक्षर मिलकर सोलह कला-अक्षर हैं, ये अन्न का अभिहरण करके सत्तरहवें प्राण को पुष्ट करती हैं । प्रजापति की सोलह कलाएँ यजु ८-३६, बा०१६-५ और प्रश्नोपनिषद् में भी बताई हैं।

सत्तरह देवों द्वारा सत्तरह साधनों और छन्दों से उज्जितियांका वर्णन रोचक है। महर्षि दयानन्द ने वेद भौतिक-दैविक बताकर बहुत उत्तम भाष्य किया है जिसके बताने से पूर्व छन्द बताये जाते हैं —

वैदिक छन्द: परिचय

क्रमसंख्या	१	२	३	४	५	६	७	निचृत् भुरिक् विराट् स्वराट्
	गायत्री	उष्णिक्	अनुष्टुप्	बृहती	पंक्ति	त्रिष्टुप्	जगती	१ अक्षर कम १ अधिक २ कम २ अधिक
१ आर्षी	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८	(४-४ बढ़ते हैं)
२ दैवी	१	२	३	४	५	६	७	एक-एक अक्षर बढ़ता है
३ आसुरी	१५	१४	१३	१२	११	१०	९	,, कम होता जाता है
४ प्राजापत्या	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२	४-४ बढ़ते हैं
५ याजुषी	६	७	८	९	१०	११	१२	एक—एक अक्षर बढ़ता है
६ साम्नी	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४	२-२ बढ़ते हैं
७ आर्ची	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६	तीन-तीन बढ़ते हैं
८ ब्राह्मी	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२	६-६ बढ़ते हैं

आर्षी में अतिजगती ५२, शक्वरी ५६, अतिशक्वरी ६०, अष्टि ६४; अत्यष्टि ६८, धृति ७२,और अतिधृति ७६, और कृति ८०,प्रकृति ८४, आकृति ८८, विकृति ९२, संस्कृति ९६, अभिकृति १००, और उत्कृति १०४ नामक छन्दों में चार-चार अक्षरों की बढ़ती होती है।

एक समान अक्षरों के होने से सन्देह होने पर मन्त्र का देवता निर्णायक होता है।

१७ उज्जिति

अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत्तमुज्जेषम् अश्विनौ द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयतां तानुज्जेषम् विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रींल्लोकानुदजयत्तानुज्जेषम् सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदजयत्तानुज्जेषम् ॥

पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिश उदजयत्ता उज्जेषम् सविता षडक्षरेण षड् ऋतूनुदजयत्तानुज्जेषम् मरुतः सप्तदशाक्षरेण सप्त ग्राम्यान् पशूनुदजयन् तानुज्जेषम् बृहस्पतिः अष्टाक्षरेण गायत्रीमुदजयत्तामुज्जेषम् ॥

मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृतं स्तोममुदजयत्तमुज्जेषम् वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्तामुज्जेषम् इन्द्रः एकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयत्तामुज्जेषम् विश्वेदेवाः द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयन् तामुज्जेषम् ॥

वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदश स्तोममुदजयन् तमुज्जेषम् रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशं स्तोममुदजयन् तमुज्जेषम् आदित्याः पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदश स्तोममुदजयन् तमुज्जेषम् अदितिः षोडशाक्षरेण षोडशं स्तोममुदजयत्तमुज्जेषम् प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशं स्तोममुदजयत्तमुज्जेषम् ॥

यजुर्वेद अध्याय ९, मन्त्र ३१–३४

महर्षि दयानन्द-भाष्य — अग्नि के समान राजा जैसे 'ओं' इस ईश्वर के व्यापक एकाक्षर शब्द से, एवं इस एक अक्षर वाली दैवी गायत्री छन्द के समान, प्राण के समान प्रजाजन को उत्कृष्ट नीति से ऊँचा उठाता है वैसे उसे मैं भी उत्कृष्ट नीति से ऊँचा उठाऊँ। अश्विनौ(सूर्य–चन्द्रमा) के समान राजा और राजपुरुष २ अक्षरवाले दैवी उष्णिक छन्द के समान जिन २ पैरों वाले मननशील मनुष्यों को ऊँचा उठाते हैं वैसे उन्हें मैं भी ऊँचा उठाऊँ। विष्णु(परमेश्वर) के समान न्यायकारी सर्वप्रधान पुरुष जैसे ३ अक्षर वाले दैवी अनुष्टुप् छन्द के समान जिन नाम–जन्म–स्थान रूप दर्शनीय लोकों को उन्नत करता है वैसे उन्हें मैं भी उन्नत करूँ। सोम(ऐश्वर्येच्छुक)न्यायाधीश जैसे ४ अक्षर वाले दैवी बृहती छन्दके समान जिन ४ पैरोंवाले हरिण आदि आरण्य पशुओंको बढ़ाताहै वैसे उन्हें मैं भी बढ़ाऊँ।

ये उपमालङ्कार महीधरोव्वट ने नहीं दिये। स्वामी विद्यानन्द विदेह ने प्रजापति के १७ अक्षर कलाएं बताई हैं — सत्–चित्–आनन्द–शक्ति,–ज्ञान–व्याप्ति–पवित्रता–प्रकाश, –वर्च–कर्तृत्व–स्नेह–दया,–न्याय–दान–ईशत्व–मोक्ष और प्राजापत्य(प्रजापति की दैवी सम्पदा)। पहली ४ इस मन्त्र में बतायी हैं। अग्नि–अश्विनौ–विष्णु–सोम का अर्थ क्रमशः प्राणाग्नि–मस्तिष्क–हृदय–चित्त–वीर्य क्रिया है।

मन्त्र ३२. महर्षि-भाष्य— पूषा(वन्द्र)के समान पोषक राजा जैसे पञ्चाक्षर दैवी पंक्ति छन्द के समान पूर्व–पश्चिम–उत्तर–दक्षिण चार और ऊपर–नीचे की एक अर्थात् ५ दिशाओं को जीतता है वैसे मैं भी उन्हें जीतूं। सविता(सूर्य)के समान राजा जैसे षडक्षर दैवी त्रिष्टुप् के समान जिन वसन्त आदि ६ ऋतुओंको उत्कृष्ट बनाता है वैसे मैं भी उन्हें बनाऊँ। मरुतः(वायुओं)के समान सभ्यजन तुल्य ७ अक्षर के दैवी जगती के समान ७ ग्राम्य पशुओं(गौ–घोड़ा–भैंस–बकरी–भेड़–उष्ट्र–गधा)को बढ़ाऊँ। बृहस्पति (विद्वान्)के समान सभाध्यक्ष तुल्य मैं ८ अक्षरों के याजुषी अनुष्टुप् छन्द के समान गायत्री(स्तोता की रक्षक राजनीति) को उन्नत करूँ। लुप्त उपमा अलंकार है। महीधरोव्वट ने पूर्वार्द्ध देव माने हैं।

विदेह ने ५–८ कलाओं से पूषा(मन)–सूर्य–मरुतः(प्राण)–वरेण्य भर्ग को विजय करना बताया है। ७ ग्राम्य पशु हैं काम–क्रोध–लोभ–मोह–ईर्ष्या–द्वेष–कुसंस्कार।

मन्त्र ३३. महर्षि दयानन्द— सब प्राणियों के मित्र राजा के समान मैं ९ अक्षरों के याजुषी बृहती छन्द द्वारा त्रिवृत् स्तोम(ज्ञान–कर्म–उपासना तीनों से युक्त स्तुति-योग्य विद्वान्)को बड़ा करूँ। वरुण (सभापति)के समान मैं दस अक्षरों के याजुषी पंक्ति तथा विराट् छन्द से नीति को महान् करूँ।

इन्द्र [परमैश्वर्यवान् राजा के समान मैं ११ अक्षरों के आसुरी पंक्ति तथा त्रिष्टुप् छन्द से प्रतिपादित नीति को उत्कृष्ट करूँ। सब विद्वान् सभासदों के समान मैं १२ अक्षरों के साम्नी गायत्री तथा जगती छन्द से प्रतिपादित नीति को समुन्नत करूँ।

महीधरोव्वट ने पौराणिक देवता मानकर साधारण अर्थ किया है।

श्री विदेह ने ६-१२ कलाओं से मैत्री-कर्म-साधना-आत्मा-इन्द्रियों द्वारा त्रिवृत् स्तोम [सौहार्द-सेवा समता]-विशेष दीप्ति-त्रिष्टुभ [निर्व्यसन-निर्लोभ-निष्पाप ये ३ प्रशंसाएं] -जगती की जय बताई।

मन्त्र ३४. महर्षि-भाष्य— वसु [२४ वर्षीय ब्रह्मचारी विद्वान्] के समान मैं १३ अक्षरों के आसुरी अनुष्टुप् छन्द के समान तेरहवें स्तोम [स्तुतियोग्य १३ पदार्थ दस प्राण-जीव-महत्तत्व-अव्यक्त] को जय करूँ। रुद्र [४४ वर्षीय] के समान मैं चौदह स्तोम [दस इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि-चित्त-अहङ्कार] को विजय करूँ। आदित्य [अड़तालीस वर्षीय ब्रह्मचारी] के समान मैं १५ अक्षरों के आसुरी गायत्री छन्द के समान १५ स्तोम [स्तुति-योग्य चार वेद-चार उपवेद-६ अङ्ग-क्रिया-कौशल] को जय करूँ। अदितिन [अखण्डित, सभाध्यक्ष राजा की पत्नी के समान मैं १६ अक्षरों के साम्नी अनुष्टुप् छन्द के समान षोडश स्तोम [१६ पदार्थ प्रमाण-प्रमेय-संशय-प्रयोजन-दृष्टान्त-सिद्धान्त-अवयव-तर्क-निर्णय-वाद-जल्प-वितण्डा-हेत्वाभास-छल-जाति-निग्रहस्थान] का जानकर जय करूँ। प्रजापति [सबका रक्षक सज्जन नरेश एवं प्रजा के पालक राजा के समान मैं १७ अक्षरों के निचृद् आर्ची गायत्री छन्द के समान १७ स्तोम [प्रशंसनीय पदार्थ ८ वर्णाश्रम-श्रवण-मनन-निदिध्यासन-साक्षात्कार-चार प्रकार का पुरुषार्थ (अप्राप्त की इच्छा, प्राप्त की रक्षा, रक्षित की वृद्धि, बढ़ाये का सत्कर्म में व्यय) और मोक्ष का जय करूँ।

महीधरोव्वट ने वसु आदि देवों द्वारा सामवेद के १३-१७ स्तोमों की उज्जिति बताई है।

श्री विदेह ने पूर्वोक्त १३-१७ कलाओं से जिन ५ स्तोमोंको विजय करना बताया वे निम्नलिखित हैं—त्रयोदश- ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, मन बुद्धि, चित्त। चतुर्दश- दिन, रात, १२ मास। पंचदश- दस इन्द्रियाँ, ५ विषय। षोडश- १६ कलाएँ। सप्तदश- १६ कलाएँ और १७वीं कला पूजा की रक्षा।

इसमें यह असङ्गति रही कि साधन-साध्य लक्ष्य दोनों ही वही एक ही कलाएँ हैं।

उव्वट-महीधर का अर्थ स्पष्ट नहीं है क्योंकि देवता-छन्द का विवरण स्पष्ट नहीं है। महर्षि दयानन्द सरस्वती का भाष्य स्पष्ट और उपयोगी है। चारों मन्त्र गूढ़, रहस्यमय और विचारणीय हैं।

—*—

शतपथ काण्ड ५ अध्याय २ ब्राह्मण ३

ॐ राजसूय यज्ञ ॐ

[पवित्रेष्टि, अनुमतीष्टि, आग्रयणेष्टि, चातुर्मास्य-विधिः]

१- अध्वर्यु पहले पवित्रेष्टि में पूर्णाहुति करता है —सर्वं वै पूर्णं। मैं सब को लेकर यज्ञ करूँ, उसमें आशीर्वाद देता है। सर्व वर है। उसे लेकर यज्ञ करूँ। यदि चाहे तो यह आहुति दे, अथवा इसका आदर न करे। १

२- दूसरे दिन अनुमति के लिये हवि अष्टादश कपाल की आहुति देता है। शमीपर पीसेजाने वाले जो चावल गिर जाते हैं या जो पिसे हुये चावल हैं उन्हें स्रुवा में साथ-साथ रखता है। २

अब अन्वाहार्य पचन से अंगारा ले दाहिनी ओर जाता और खोदे हुये गड्ढे या उसर को पाता और अग्नि का समाधान कर आहुति देता है—

एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व स्वाहा (यजु ९.३५)

यही भूमि निर्ऋति है। जिसे वह पाप से लेता है, उसे ही वह लेता है।, यहाँ पृथिवी का जो नैर्ऋत रूप है उसे ही शान्त करता है। अतः यजमान को निर्ऋति नहीं पकड़ती। अपना खोदा या उसर का गर्त ही इसके लिये निर्ऋति है। ३

३- अब बिना प्रतीक्षा के फिर लौटते हैं, अगले दिन अनुमति इष्टि में अष्टाकपाल पुरोडाश से यज्ञ करता है। वह जो कर्म कर सकता है या करना चाहता है तदर्थ यह अनुमति है, वह इसे ही इस लिए प्रसन्न करता है कि इससे अनुमत होकर यज्ञ करूँ। ४

पुरोडाश ८ कपालों का होता है क्योंकि गायत्री ८ अक्षरों की है, वही यह पृथिवी है, दोनों के लिए समान हवि की आहुति है। उसकी दक्षिणा वस्त्र है। वानप्रस्थ में सब वस्त्रों सहित नहीं जाता, उन्हें छोड़कर ही मुक्त होता है। इस प्रकार इस याज्ञिक को बन्धन नहीं रहता। ५

फिर अगले दिन अग्नि-विष्णु का ११ कपालों का पुरोडाश बनाता और यज्ञ करता है। अग्नि सब देवता है जिन में सब देवताओं के लिए होम करता है। अग्नि यज्ञ का अवरार्ध है विष्णु परार्ध। इस प्रकार सब देवों और यज्ञों को लेकर राजसूय करूँ अतः आग्नावैष्णव एकादशकपाल पुरोडाश है, इसकी दक्षिणा सुवर्ण है, [illegible], प्रोक्षणार्थ सुवर्ण है, दोनों आग्नेय, अतः दक्षिणा सोना है।६

४. अब अगले दिन अग्नि-सोम के लिए ११ कपालों का पुरो० बनाता है जिससे इष्टिके अनुसार यज्ञ करता है। इससे जैसे इन्द्र ने वृत्र मारा और विजय पाई थी, वैसे यह शत्रु मारता और विजय पाता है कि मैं जीते-अभय-अदुष्ट राष्ट्रमें यज्ञ करूँ। अतः अग्नी-षोमीय एकादश-कपाल पुरो० है जिसकी दक्षिणा छुट्टा बैल है चन्द्र-समान जिसे पूर्णिमामें पाते और अमावास्यामें छोड़ते हैं अतः वह दक्षिणा है।७

५- अब फिर अगले दिन इन्द-अग्नि का १२ कपालों का पुरो० बनाता है जिस से इष्ट्यनुसार यज्ञ करता है। जब इन्द्र ने वृत्र मारा तब भय से इसका वीर्य कम हो गया जिसे उस हवि से फिर पाया, वैसे ही यह भी इस हवि से अपने में फिर लाता है। मैं अग्नि तेज और वीर्य इन्द्र दोनों लेकर यज्ञ राजसूय करूँ अतः ऐन्द्राग्न द्वादश कपाल पुरो० लेता है। इसकी दक्षिणा आर्षभ अनड्वान् है, वह भार वहन करने से आग्नेय और अण्डकोषों से ऐन्द्र है अतः दक्षिणा है। ८

प्रपाठक १२, अनुवाक ४ सूक्त १६ से २१ तक

महर्षि दयानन्द के अनुसार विषय- वृष ईश्वरादि पदार्थविद्या

सूक्त १६ । आत्मा । आत्मा का बल १०६९-७९

१०६९ यद्येकवृषो ऽसि सृजारसो ऽसि ॥ १॥ ७० यदि द्विवृषो ऽसि सृ० (पूर्ववत्) २
७१ यदि त्रिवृषोऽसि० ॥३॥ ७२ यदि चतुर्वृषोऽसि० ॥४। ७३ यदि पञ्चवृषोऽसि० ॥५
७४ यदि षड्वृषोऽसि० ॥६॥ ७५ यदि सप्तवृषोऽसि० ॥७॥ ७६ यद्यष्टवृषोऽसि ॥ ८
७७ यदि नववृषोऽसि० ॥९॥ ७८ यदि दशवृषोऽसि० ॥१०॥ ७९ यद्येकादशोऽसि सोऽपोदकोऽसि ॥११

१०६९ यदि तू एक वृष (प्राण-इन्द्रिय) वाला है तो बल बढ़ा, तू अभी अरसु है । १
१०७०-७८ यदि तू दो तीन-चार-पाँच-छः-सात-आठ-नौ या दस वृष (प्राण-इन्द्रिय) वाला है तब भी बल बढ़ा, तू अभी अरसु है । २-१०
७९ यदि तू ११वाँ (शुद्ध) आत्मा है तो तू अपोदक (जल में असङ्ग के समान, मुक्त) है । ११

सूक्त १७ । विश्वेदेवा । ब्रह्म-जाया (वेद-व्यवस्था, ब्राह्मण-सभा, मन्त्रि-परिषद्, राष्ट्रसभा)
विभिन्नार्थ- श्री क्षेमकरण- वेदविद्या, सातवलेकर- गुरुपत्नी; जयदेव शर्मा- प्रकृति, मन्त्र-परिषद्, वैद्यनाथ शास्त्री- वाणी, सायण- ब्राह्मण की पत्नी ।

१०८० तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा ।
वीडुहरास्तप उग्रं मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतस्य ॥ १
८१ सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय ॥ २
८२ हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेति चेदवोचत् ।
न दूताय प्रहेया तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥ ३
८३ यामाहुस्तारकैषा विकेशीति दुच्छुनां ग्राममवपद्यमानाम् ।
सा ब्रह्मजाया वि दुनोति राष्ट्रं यत्र प्रापादि शश उल्कुषीमान् ॥ ४
८४ ब्रह्मचारी चरति वेविषद् विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम् ।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः ॥ ५
८५ देवा वा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसा ये निषेदुः ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्यापनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥ ६
८६ ये गर्भा अवपद्यन्ते जगद्यच्चापलुप्यते, वीरा ये तृह्यन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिनस्ति तान् ॥
८७ उत यत्पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः, ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत्स एव पतिरेकधा ॥ ८
८८ ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो न वैश्यः । तत्सूर्यः प्रब्रुवन्नेति पञ्चभ्यो मानवेभ्यः ॥ ९
८९ पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या अददुः । राजानः सत्यं गृह्णाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥ १०

९० पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकिल्विषम्, ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वोरुगायमुपासते ।।११
९१ नास्य जाया शतवाही कल्याणी तल्पमाशये, यस्मिन्राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या।
९२ न विकर्णः पृथुशिरास्तस्मिन् वेश्मनि जायते । यस्मिन् राष्ट्रे०(पूर्ववत्)।।१३
९३ नास्य क्षत्ता निष्कग्रीवः सूनानामेत्यग्रतः । यस्मिन्०।। १४
९४ नास्य श्वेतः कृष्णकर्णो धुरि युक्तो महीयते । यस्मि० ।। १५
९५ नास्य क्षेत्रे पुष्करिणी नाण्डीकं जायते बिसम् । यस्मिन्० ।। १६
९६ नास्मै पृश्निं वि दुहन्ति येऽस्या दोहमुपासते । यस्मिन्० ।। १७
१०९७ नास्य धेनुः कल्याणी नानड्वान्त्सहते धुरम् ।
विजानिर्यत्र ब्राह्मणो रात्रिं वसति पापया ।। १८

१०८० ब्रह्म के प्रति पाप होने पर ईश्वर से उत्पन्न मुख्य तेजस्वी सुखद देवता सूर्य- समुद्र-वायु- उग्र तप (अग्नि)-जल-आकाश (दण्ड-विधान) बोला करते हैं । १

८१ फिर प्रेरक मुख्य राजा, क्रोध न करते हुए, वेद-व्यवस्था दे, मित्र न्यायाधीश अनुकूल हों होता (अर्थमन्त्री) उसे हाथ (अधिकार) में रक्खे । २

८२ इसे राजा अधिकार में ही रक्खे जिसे 'ब्रह्मजाया' कहा है । यह सताने वाले उग्र के लिए देने-योग्य नहीं, तभी क्षत्रिय का राष्ट्र रक्षित रहता है । ३

८३ गाँवों में बँटी जिस बुरी सूचना देनेवाली सभा को लोग तारनेवाली, क्लेश-निवारक कहते हैं वह राष्ट्र को दुःखी करती है यदि उसका मुखिया चचंल और उग्र हो । ४

८४ ब्रह्मचारी सेवा करता हुआ विचरता है, वह विद्वानों का एक अङ्ग होता है, उस के द्वारा मन्त्री राजा से बुलायी सभा को अपने अधिकार में रखता है जैसे यज्ञ में जुहू(चमची) को रखते हैं । ५

८५ इस परिषद् में ७ विद्वान् अपने तप से बैठकर वहन करते हैं, हटाई जाने पर यह भयानक होकर राष्ट्र-आकाश में दुःख-पूर्ण स्थिति उत्पन्न करती है । ६

८६ जो गर्भ गिराते, जगत् नष्ट करते, और जो वीर परस्पर लड़ते हैं उन्हें यह सभा दण्ड देती है । ७

८७ इस दशावरा परिषद् के कम से कम भी दस पति(पालक सदस्य) हों किन्तु वस्तुतः तो पति एक ब्रह्मा (प्रधानमन्त्री) ही है जो उन पर अधिकार रखता है । ८

८८ सभापति ब्राह्मण ही हो; क्षत्रिय-वैश्य नहीं । यह सूर्य(परमात्मा) ५ मानवों से कहता है । ९

८९ इस ब्रह्म-सभा को कभी देव कभी मनुष्य और सत्य-ग्राही राजा चलाते हैं । [दस]

९० फिर ब्रह्म-सभा को देकर देवोंसे निष्पाप करा पृथ्वीका अन्न बाँटकर प्रजा प्रभु को भजती है ।११

९१ इसकी सैकड़ों कार्य करने वाली कल्याणी स्त्री प्रतिष्ठा नहीं पाती जिस राष्ट्र में ब्रह्म शक्ति वेद-व्यवस्था अज्ञान-मूर्खता से रोक दी जाती है । [बारह]

९२ इसके घर में विशेष श्रुतिशील-विशाल-सिर पुरुष पैदा नहीं होता जिस०[पूर्ववत्] (तेरह)

९३ इसका क्षत्रिय गले में सोने की माला पहनकर धनिकों के आगे नहीं आता जिस०,, [चौदह]

९४ इसका श्यामकर्ण सफेद घोड़ा धुरे में जुता महत्त्व नहीं पाता जिस० ।[पन्द्रह]

१०९५ इसके क्षेत्र में पोखर नहरें-तालाब और उनमें कमल-बिस (भसींडा) नहीं होता जिस० ।१६
९६ इसके लिए पृथिवी से अन्न-उत्पादक ठीक प्रकार से अन्न नहीं उगा पाते जिस० ।१७
९७ न इसकी गौ कल्याणी होती, और न बैल जुए का भार सह पाता है जहाँ ब्राह्मण (वेदज्ञ) जाया (वेद-विद्या-परिषद्) के बिना पापी प्रजा के साथ रात में रहता है । १८

सूक्त १८ । गो या ब्राह्मण । ब्राह्मण की गौ (वाणी और भूमि (१०९८ से १११२ तक)

१०९८. नैता ते देवा अददुस्तुभ्यं नृपते अत्तवे । मा ब्राह्मणस्य राजन्य गां जिघत्सो अनाद्याम् ।१
९९. अक्षद्रुग्धो राजन्यः पाप आत्मपराजितः । स ब्राह्मणस्य गामद्यादद्य जीवानि मा श्वः ।२
११००. आविष्टिताघविषा पृदाकूरिव चर्मणा । सा ब्राह्मणस्य राजन्य तृष्टैषा गौरनाद्या ।३

१ निर्वै क्षत्रं नयति हन्ति वर्चोऽग्निरिवारब्धः वि दुनोति सर्वम् ।
यो ब्राह्मणं मन्यते ऽन्नमेव स विषस्य पिबति तैमातस्य ॥ ४

२ य एनं हन्ति मृदुं मन्यमानो देवपीयुर्धनकामो न चित्तात् ।
सं तस्येन्द्रो हृदयेऽग्निमिन्ध उभे एनं द्विष्टो नभसी चरन्तम् ।५

३ न ब्राह्मणो हिंसितव्योऽग्निः प्रियतनोरिव, सोमो ह्यस्य दायाद इन्द्रो अस्याभिशस्तिपाः ६
४ शतापाष्ठां निगिरति तां न शक्नोति निःखिदन्, अन्नं यो ब्रह्मणां मल्वः स्वाद्वद्मीति मन्यते ७

५ जिह्वा ज्या भवति कुल्मलं वाङ् नाडीका दन्तास्तपसाभिदिग्धाः ।
तेभिर्ब्रह्मा विध्यति देवपीयून् हृद्बलैर्धनुर्भिर्देवजूतैः ॥ ८

६ तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो यामस्यन्ति शरव्यां न सा मृषा ।
अनुहाय तपसा मन्युना चोत दूरादभि भिन्दन्त्येनम् ॥ ९

७. ये सहस्रमराजन्नासन्दशशता उत । ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराभवन् ।१०
८. गौरेव तान् हन्यमाना वैतहव्याँ अवातिरत् । ये केसरप्राबन्धायाश्चरमाजामपेचिरन् ।११
९. एकशतं ता जनता या भूमिर्व्यधूनुत । प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन् । १२

१० देवपीयुश्चरति मर्त्येषु गरगीर्णो भवत्यस्थिभूयान् ।
यो ब्राह्मणं देवबन्धुं हिनस्ति न स पितृयाणमप्येति लोकम् ॥ १३

११ अग्निर्वै नः पदवायः सोमो दायाद उच्यते । हन्ताभिशस्तेन्द्रस्तथा तद्वेधसो विदुः ॥ १४
१२ इषुरिव दिग्धा नृपते पृदाकूरिव गोपते । सा ब्राह्मणस्येषुर्घोरा तया विध्यति पीयतः ॥ १५

१०९८ हे राजन ! वे विद्वान् तेरे लिए यह पृथिवी खाडालने के लिए नहीं देते, हे राजन्य ! तू ब्रा० की न खाने-योग्य गौ (पशु-वाणी-भूमि) का नाश न कर । १
९९ इन्द्रिय-द्रोही, ज्वारी, पापी, स्वयं पराजित वह यदि ब्राह्मण की गौ ले तो आज जिये, कल नहीं ।२
११०० हे राजन ! यह ब्राह्मण की गौ नाश करने-योग्य नहीं, प्रत्युत विषैली-प्यासी, केंचुल-ढकी नागिन-समान है । ३

११०१ जो उस ब्राह्मण को अपना अनाज ही मानता है यह मानो साँप का विष पीता है, जो क्षत्र-तेज का [illegible] आग के समान सब नाश कर देता है। ४

२ जो विद्वानों का हिंसक, धन-लोभी इसे कोमल मान कर अज्ञान से मारता है उसके हृदय में इन्द्र आग लगाता और द्यावा-पृथ्वी दोनों इस विचरते हुए से द्वेष करते हैं। ५

३ प्रिय शरीर को अग्नि के समान ब्राह्मण अहिंसनीय है; सोम इसका बन्धु, इन्द्र रक्षक है। ६

४ जो तीव्र यह जानता है कि मैं ब्राह्मणोंका अन्न स्वाद से खालूँ वह सैकड़ों विपत्तियाँ निगलता है इसे पचा नहीं सकता। ७

५ ब्राह्मण [चतुर्वेदी] की जीभ धनुषकी डोरी, वाणी वाण-दण्ड, तप से तेज दाँत वाण होते हैं। वह देव-सेवित, हृदय-शक्ति रूपी धनुषों से देव-पीडकों को बेधता है। ८

६ तीक्ष्ण वाण-युक्त, अस्त्र-सम्पन्न ब्राह्मण जो वाण-धारा फेंकते हैं वह मिथ्या नहीं होती, वे तप और मन्यु से पीछा करके दूर से ही इस शत्रु को छेद डालते हैं। ९

७ जो हजारों पर राज्य करें और हजारों हों वे दान-पदार्थ-खाऊ ब्राह्मण--गौ खाकर हारते हैं। १०

८ वेदज्ञ की न मानी गयी वाणी ही विद्वानों के पदार्थ हड़पने वाले इन दुष्टों का नाश करती है जो मोक्षेच्छुक चिति और अन्तिम अजा (परमात्मोपदेश) को भी पचा जाते हैं (नहीं मानते)। ११

९ चाहे वे जनता के सैकड़ों व्यक्ति हों किंतु भूमि उनको हिला देती है, वो ब्राह्मणी पूजाकी हिंसा करके बिना सम्भावना के ही हार जाते हैं। १२

१० विद्वानों का पीडक जो मनुष्यों में विचरता है वह जहर पिये हुए के समान केवल हड्डियोंवाला रह जाता है। देवबन्धु वेदज्ञ का हिंसक पितृयान लोक (पुनः मनुष्य योनि) भी नहीं पाता। १३

११ ज्ञानी समझते हैं कि विद्वान् हमारा पथ-दर्शक है, सोम बन्धु कहाता, ईश्वर अपवादी-नाशक है। १४

१२ हे पुरुषों-गौओं के पति! ब्राह्मणका मन बड़ा भयानक है, विष-बुझे वाण और सर्पिणी के समान है जिससे वह सताने वालों का नाश करता है। १५

सूक्त १९। ब्राह्मण की गौ (पशु-भूमि-वाणी) १५ मन्त्र

१११३. अतिमात्रमवर्धन्त नोदिव दिवमस्पृशन्, भृगुं हिंसित्वा सृञ्जया वैतहव्याः पराभवन्। १

१४. ये बृहत्सामानमाङ्गिरसमार्पयन्ब्राह्मणं जनाः, पेत्वस्तेषामुभयादमविस्तोकान्यावयत्। २

१५. ये ब्राह्मणं प्रत्यष्ठीवन्ये वास्मिञ्छुल्कमीषिरे, अस्नस्ते मध्ये कुल्यायाः केशान्खादन्त आसते। ३

१६. ब्रह्मगवी पच्यमाना यावत्साभि विजङ्गहे, तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा। ४

१७. क्रूरमस्या आशसनं तृष्टं पिशितमस्यते, क्षीरं यदस्याः पीयते तद्वै पितृषु किल्बिषम्। ५

१८ उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति, परा तत्सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते। ६

१९ अष्टापदी चतुरक्षी चतुःश्रोत्रा चतुर्हनुः।
द्व्यास्या द्विजिह्वा भूत्वा सा राष्ट्रमव धूनुत ब्रह्मज्यस्य। ७

२० तद्वै राष्ट्रमा स्रवति नावं भिन्नामिवोदकम्, ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति तद्राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना। ८

२१ तं वृक्षा अपसेधन्ति छायां नो मोपगा इति। यो ब्राह्मणस्य सद्धनमभि नारद मन्यते। ९

२२ विषमेतद्देवकृतं राजा वरुणोऽब्रवीत्। न ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा राष्ट्रे जागार कश्चन। १०

११२३.नवैव ता नवतयो या भूमिर्व्यधूनुत,प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन् ।। ११
२४ यां मृतायानुबध्नन्ति कूद्यं पदयोपनीम् । तद्वै ब्रह्मज्ञ ते देवा उपस्तरणमब्रुवन् ।। १२
२५ अश्रूणि कृपमाणस्य यानि जीतस्य वावृतुः। तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ।। १३
२६ येन मृतं स्नपयन्ति श्मश्रूणि येनोन्दते । तं " " ' ।।१४
२७ न वर्षं मैत्रावरुणं ब्रह्मज्ञमभिवर्षति । नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नयते वशम् ।।१५

१११३ शत्रु-जेता होकर भी दानभक्षी पहले अधिक बढ़कर द्यौ तक छू लेते हैं किंतु भृगु (ज्ञानी) की हिंसा करके पराजित हो जाते हैं । १

१४ जो बड़े साम-गायक, ज्ञानी, अङ्ग-रस प्राण के तुल्य वेदज्ञ को सताते हैं उनकी उन्नति को सर्प-पति ईश्वर रोकता और बच्चों को हिंसक पशु दो जबड़ों के बीच में चबा डालता है । २

१५ जो वेदज्ञ पर थूकते उसे बाहर निकालते या कर लगाते वे लोभी रक्त-धारा में क्लेश भोगते और केश-क्लिष्ट पदार्थ खाते हैं । ३

१६ ब्रह्म-वाणी दुःख पाकर संतप्त हुई जबतक तड़पती है तबतक राष्ट्र के तेज का समूल नाश करती है वहाँ वीर ऐश्वर्यशाली पैदा नहीं होता । ४

१७ वेदज्ञ की हिंसा क्रूरता, खण्डन तृषातुल्य दाहक, उपदेश-दुग्ध नाश करने पर पाप-जनक हैं । ५

१८ वह उग्र-अभिमानी राजा है जो वेदज्ञ की हिंसा का इच्छुक है, जहाँ वह पीडित किया जाता है वह राष्ट्र नाश हो जाता है । ६

१९ वह **ब्रह्मशक्ति-गौ ८** अमात्य-पैर, ४ वर्ण-आँख, ४ आश्रम-कान, ४ प्रकारकी सेना-जबड़ों युक्त २(ज्ञान-कर्म)रूपी मुखयुक्त, और २ दूतरूपी जिह्वायुक्त होकर अपने नाशक के राष्ट्र को कँपा देती है । ७

२० जहाँ वेदज्ञ की हिंसा करते हैं वह कर्म राष्ट्र को बहा देता है जैसे पानी टूटी नाव को, और दरिद्रता घेर लेती है । ८

२१ हे नरों के आश्रय दाता ! वेदज्ञ के सच्चे धनका नाश करता है उसे क्षत्रिय- वृक्ष हटा देते हैं कि तू हमारी छाया में न आ । ९

२२ राजा वरुण कहता है— यह इन्द्रिय-कृत विष है । वेदज्ञ की गौ हड़पकर देशमें कोई नहीं बचता ।१०

२३ वे ९९(असंख्य) पापी हैं जिनको भूमि कँपाती है जो वेदज्ञ प्रजा की हिंसा कर निश्चय हारते हैं। ११

२४ हे ब्रह्म-नाशक ! विद्वान् तुझे उसी काँटेदार बिछौने का दण्ड बताते हैं जो पैरों को दुःखद काँटेदार बेड़ी फाँसी के लिए बाँधी जाती है । १२

२५ हे ब्रह्म-नाशक ! कलपते हारे हुए के जो आँसू बहते हैं वही विद्वान् तेरे लिए बताते हैं । १३

२६ हे वेद-घाती ! जिससे मरे को नहलाते, दाढ़ी-मूछ भिगोते, वही जल देव तुझे बताते हैं ।१४

११२७ मित्र-वरुण (वायु-सूर्य, हाइड्रोजन-आक्सीजन) से हुई वर्षा ब्रह्म-घाती पर न बरसे, न इसके लिए समिति सुसमर्थन करती और न वह मित्र को वश में ला पाता है १५

सूक्त २० । दुन्दुभि । ढोल-नगाड़ा-सेनापति । ११२८-३९

११२८ उच्चैर्घोषो दुन्दुभिः सत्वनायन् वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिः ।
वाचं क्षुणुवानो दमयन्त्सपत्नान्त्सिंह इव जेष्यन्नभि तंस्तनीहि ।। १

२९ सिंह इवास्तानीद् द्रुवयो विबद्धो अभिक्रन्दन्नृषभो वासितामिव ।
वृषा त्वं वध्रयस्ते सपत्ना ऐन्द्रस्ते शुष्मो अभिमातिषाहः ॥ २

३० वृषेव यूथे सहसा विदानो गव्यन्नभि रुव संधनाजित् ।
शुचा विध्य हृदयं परेषां हित्वा ग्रामान् प्रच्युता यन्तु शत्रवः ॥ ३

३१ संजयन् पृतना ऊर्ध्वमायुर्गृह्या गृह्णानो बहुधा वि चक्ष्व ।
दैवीं वाचं दुन्दुभ आ गुरस्व वेधाः शत्रूणामुप भरस्व वेदः ॥ ४

३२ दुन्दुभेर्वाचं प्रयतां वदन्तीमाशृण्वती नाथिता घोषबुद्धा ।
नारी पुत्रं धावतु हस्तगृह्यामित्री भीता समरे वधानाम् ॥ ५

३३ पूर्वो दुन्दुभे प्र वदासि वाचं भूम्याः पृष्ठे वद रोचमानः ।
अमित्रसेनामभि जञ्जभानो द्युमद् वद दुन्दुभे सूनृतावत् ॥ ६

३४ अन्तरेमे नभसी घोषो अस्तु पृथक् ते ध्वनयो यन्तु शीभम् ।
अभि क्रन्द स्तनयोत्पिपानः श्लोककृन्मित्रतूर्याय स्वर्धी ॥ ७

३५ धीभिः कृतः प्र वदाति वाचमुद्धर्षय सत्वनामायुधानि ।
इन्द्रमेदी सत्वनो नि ह्वयस्व मित्रैरमित्राँ अव जङ्घनीहि ॥ ८

३६ संक्रन्दनः प्रवदो धृष्णुषेणः प्रवेदकृद् बहुधा ग्रामघोषी ।
श्रेयो वन्वानो वयुनानि विद्वान् कीर्तिं बहुभ्यो वि हर द्विराजे ॥ ९

३७ श्रेयः केतो वसुजित् सहीयान्त्संग्रामजित् संशितो ब्रह्मणासि ।
अंशूनिव ग्रावाधिषवणे अद्रिर्गव्यन्दुन्दुभे अधि नृत्य वेदः ॥ १०

३८ शत्रूषाण्नीषाडभिमातिषाहो गवेषणः सहमान उद्भिद् ।
वाग्वीव मन्त्रं प्र भरस्व वाचं सांग्रामजित्यायेषमुद् वदेह ॥ ११

३९ अच्युतच्युत् समदो गमिष्ठो मृधो जेता पुरएतायोध्यः ।
इन्द्रेण गुप्तो विदथा निचिक्यद्धृद्द्योतनो द्विषतां याहि शीभम् ॥ १२

११२८ ऊँची ध्वनि-युक्त, लकड़ी की बनी दुन्दुभि बल बढ़ाती है, शत्रु दबाती, विजय चाहती हुई शेर के समान गरजती रहे। १

२९ पेड़ से बनी विशेष प्रकार से बँधी तू शेर के समान गरजती जैसे गौ के लिए साँड, तू बली, वैसे तेरे रिपु निर्बल, तेरा बल उनका नाशक है। २

३० झुन्ड में बल से जाने जाते साँड के समान भूमि पर अधिकार चाहता और धन जीतता हुआ तू गरज और शत्रु-हृदय शोक-युक्त कर, वे गाँव छोड़कर गिरते हुए भागें। ३

३१ (हे सेनापति !) तू ऊँचा घोष करता, संग्राम जीतता, ग्राह्य पदार्थ लेता हुआ अनेक प्रकार से निरीक्षण कर और दिव्य वाणी बोल तथा विधाता बनकर दुष्टों का धन छीन ला। ४

११३२ दुन्दुभि की गूँजती ध्वनि सुनकर जागी घबराई रिपु-नारी युद्ध में शस्त्र-प्रहार से डरी बच्चे को हाथ से पकड़कर भाग जाय। ५

३३ हे दुन्दुभि ! तू युद्ध से पहले बजायी जाती है, भूमि पर शोभित होकर ध्वनि कर, दुष्ट-सेना को भग्न करती स्पष्ट-सत्य-वाणी-युक्त सन्देश दे। ६

३४ आकाश-पृथ्वी दोनों के मध्य तेरा घोष अलग अलग शीघ्र फैले, बढ़नेवाला यशस्वी होकर मित्र-हितार्थ सम्पन्न होती हुई गरज। ७

३५ बुद्धि से बनी तू घोषकर वीरों के हथियार उठा; सेनापति को सुखद तू प्रभावित कर, वीरों को बुलाकर साथियों द्वारा दुष्टों का नाश करा। ८

३६ अच्छी ध्वनि-कर्ता,गरजने वाला, निडर-सेनायुक्त, सचेतक, बहुधा ग्राम में घोषक,कल्याण-कर्ता कर्मों का ज्ञाता सेनापति २ राजाओं के युद्ध में अनेक वीरों को कीर्ति दे। ९

३७ कल्याण-ज्ञानप्रद, धन-जेता, बली, युद्ध-जेता तू ज्ञान से तीक्ष्ण है। सिल पर सोम कुचलने वाले पत्थर के समान, भूमि चाहता तू धन पाकर नाच। १०

३८ शत्रुजेता, विजयी; अभिमानि-वशीकर्ता, भूमि-इच्छुक; सहनशील, तोड़-फोड़ करने वाला तू सब जगह वैसे ही ध्वनि भर जैसे श्रोताओं में वक्ता उपदेश भरता है; संग्राम-जयार्थ इच्छा को बोल।११

३९ दृढ़ों को गिरानेवाला, मद-सहित, गतियुक्त, युद्ध-जेता, अग्रगामी, सेनापति से रक्षित, न रुकने वाला, कर्तव्यों का ज्ञाता, दुष्टों को चौंकाने वाला दुन्दुभि शीघ्र जाये। १२

सूक्त २१। देव-सेना । दुन्दुभि

११४० विहृदयं वैमनस्यं वदामित्रेषु दुन्दुभे ।
विद्वेषं कश्मशं भयममित्रेषु नि दध्मस्यवनान् दुन्दुभे जहि ॥ १

४१.उद्वेपमाना मनसा चक्षुषा हृदयेन च,धावन्तु बिभ्यतोमित्राः प्रत्रासेनाज्ये हुते ।। २

२ वानस्पत्यः संभृतः उस्त्रियाभिर्विश्वगोत्र्यः । प्रत्रासममित्रेभ्यो वदाज्येनाभिघारितः ॥३

४३ यथा मृगाः संविजन्त आरण्याः पुरुषादधि ।
एवा त्वं दुन्दुभेअमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥ ४

४४ यथा वृकादजावयो धावन्ति बहु बिभ्यतीः । एवा० (पूर्ववत्) ॥ ५

४५ यथा श्येनात् पतत्रिणः संविजन्ते अहर्दिवि सिंहस्य स्तनथोर्यथा । एवा० ।। ६

४६ परामित्रान् दुन्दुभिना हरिणस्याजिनेन च । सर्वे देवा अतित्रासन्ये संग्रामस्येशते ।। ७

४७ यैरिन्द्रः प्रक्रीडते पद्घोषैश्छायया सह । तैरमित्रास्त्रसन्तु नोमी ये यन्त्यनीकशः ॥ ८

४८ ज्याघोषा दुन्दुभयोभि क्रोशन्ति या दिशः । सेनाः पराजिता यतीरमित्राणामनीकशः।।९

४९ आदित्य चक्षुरादत्स्व मरीचयोनु धावत । पत्सङ्गिनीरा सजन्तु विगते बाहुवीर्ये ॥ १०

५०. यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् ।
सोमो राजा वरुणो राजा महादेव उत मृत्युरिन्द्रः॥ ११

११५१ एता देवसेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः । अमित्रान् नो जयन्तु स्वाहा ।। १२

११४० हे दुन्दुभि ! तू शत्रुओं में हृदय की व्याकुलता, मन की ग्लानि और फूट बोल(पैदा कर),उन में द्वेष-कशमश-भय उत्पन्न कर, इन्हें नीचे गिराकर मार । १

४१ घी का होम करने पर वे घबराहट से मन-आँख-हृदय से डरकर भाग जायें । २

४२ लकड़ी का बना, रस्सियों से बँधा, सब प्रकार भूमि-रक्षक, घी (तेल) से सींचा दुन्दुभि तू शत्रुओं में भय को बोल (पैदा करें) । ३

४३ जैसे जङ्गली हिरन पुरुष से भय-भीत होकर भागते हैं ऐसे ही हे दुन्दुभि ! तू शत्रुओं पर गरज, उन्हें भय दे और उनके चित्तों को मोहित कर । ४

४४ जैसे बकरी-भेड़ें भेड़िए से अधिक डरती हुई भागतीं हैं ऐसे ही० [पूर्ववत्] । ५

४५ जैसे पक्षी आकाश में दिन में और पशु शेर की गर्जना से भाग जाते हैं ऐसे ही० । ६

४६ जो संग्राम में नाचते हैं वे ता विजयी हिरन के चर्म से मढ़ो दुन्दुभि द्वारा शत्रु दूर भगा देते हैं ।७

४७ छा जानेवाली सेना के साथ सेनापति पैरों के घोषों द्वारा युद्ध का खेल करता है उनसे हमारे वे वैरी भीत हों जो पंक्तियाँ बनाकर चलते हैं । ८

४८ प्रत्यञ्चा के घोष और नगाड़े जिन दिशाओं में ललकारें वहाँसे शत्रु-पंक्तियाँ हारकर भागें । ९

४९ हे सूर्यगत सेनापति ! तू वैरियों के चक्षु ले ले, किरणों के समान सैनिको ! तुम पीछे दौड़ो। उनका बाहों का बल घटते जाने पर उनके पैरों में बेड़ियाँ डाली जायें । १०

५० हे पृथ्वी को माता मानने वाले उग्र सैनिको ! तुम सेनापति के साथ रहकर वैरियों को मारो। वही सोम राजा, वरुण राजा, महादेव, (वैरियों की) मृत्यु और इन्द्र है । ११

५१ ये सूर्य-पताका-युक्त, समान-चित्त विजयी सेनाएँ हमारे वैरियों को जीतें । यह सुवचन है । १२

अनुवाक ५, (सूक्त २२ से २६ तक)

महर्षि दयानन्द के अनुसार विषय— अग्नि आदि पदार्थविद्या और [गर्भ] रक्षण

सूक्त २२ । वैद्य । तक्मा (ज्वर)

११५२ अग्निस्तक्मानमप बाधतामितः सोमो ग्रावा वरुणः पूतदक्षाः ।
वेदिर्बर्हिः समिधः शोशुचाना अप द्वेषांस्यमुया भवन्तु ॥ १

५३ अयं यो विश्वान् हरितः कृणोष्युच्छोचयन्नग्निरिवाभिदुन्वन् ।
अधा हि तक्मन्नरसो हि भूया अधा न्यङ्ङधराङ् वा परेहि ॥ २

५४ यः परुषः पारुषेयोऽवध्वंस इवारुणः । तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परासुवा ॥३

१^१५५ अधराञ्चं प्रहिणोमि नमः कृत्वा तक्मने। शकम्भरस्य मुष्टिहा पुनरेतु महावृषान् ॥४
५६ओको अस्य मूजवन्त ओको अस्य महावृषाः,यावज्जातस्तक्मंस्तावानसि बल्हिकेषुन्योचरः॥५
५७.तक्मन्व्याल विगद व्यङ्ग भूरि यावय,दासीं निष्टक्वरीमिच्छ तां वज्रेण समर्पय। ६
५८.तक्मन्मूजवतो गच्छ बल्हिकान्वा परस्तराम्,शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं तां तक्मन्वीवधूनुहि ॥७
५९ महावृषान् मूजवतो बन्ध्वद्धि परेत्य। प्रैतानि तक्मने ब्रूमो अन्यक्षेत्राणि वा इमा ॥ ८
६० अन्यक्षेत्रे न रमसे वशी सन्मृडयासि नः। अभूदु प्रार्थस्तक्मा स गमिष्यति बल्हिकान्॥९
६१ यत्त्वं शीतोऽथो रूरः सह कासावेपयः। भीमास्ते तक्मन्हेतयस्ताभिः स्म परि वृङ्धि नः ॥१०
६२ मा स्मैतान्त्सखीन्कुरुथा बलासङ्कासमुद्युगम्,मास्मातोऽर्वाङैः पुनस्तत्त्वा तक्मन्नुप ब्रुवे॥११
६३ तक्मन्भ्रात्रा बलासेन स्वस्रा कासिकया सह,पाप्मा भ्रातृव्येण सह गच्छामुमरणं जनम्॥१२
६४ तृतीयकं वितृतीयं सदन्दिमुत शारदम्। तक्मानं शीतं रूरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकम् ॥१३
६५ गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः। प्रैष्यन्जनमिव शेवधी तक्मानं परिदद्मसि ॥१४ १५

११५२ अग्नि (ईश्वर, ज्ञानी वैद्य, यज्ञाग्नि, शरीराग्नि), सोम (चन्द्र, गिलोय आदि औषधि), ग्रावा (पीसने की सिल, यूरेनियम, गन्धक, संखिया), वरुण (जल, औषधि), पवित्र-बलशाली हों, वेदि, कुश, जलती समिधाएँ यहाँ से तक्मा(ज्वर)को दूर करें और इससे द्वेष (रोग)दूर हों। १

५३ हे तक्मा! यह तू सबको जलाता, शोक-युक्त करता हुआ अग्निवत् तपाता, हरा-पीला करता है, तू हल्का हो, नीचे उतर, दूर हो। २

५४ जो पोरुओं में कठोर, आग के समान लाल ध्वंसक है उसे विश्वधावीर्य [वैद्य-सूर्य-प्रतिरोध (अतीस ऐकोनाइट नैप) , नीचा करके दूर करे। ३

५५ मैं(वैद्य)तक्मा को नमः(वज्र, अभ्रक)देकर नीचे उतारता हूं। शक्तिशालीको मुट्ठियों से हिंसक, शाकाहारी की मुट्ठीसे मरनेवाला यह बड़ी वर्षाके देशमें जाए, युह बलवानों को भी फिर आजाता है ।४

५६ इसका घर मूजवाले, बड़ी वर्षावाले देश हैं, हे तक्मा! तू जब से हुआ तासे बल्ख में भी गोचर है। ५

५७ हे साँप के समान, अङ्ग विकृत करने वाला, बहुत बोलने(प्रलाप कराने)वाला तक्मा! तू दूर जा, तू निर्लज्ज दासी (पीडक मच्छर जाति) को चाह, उसे वज्र से मार, काकजङ्घा-अभ्रक से दूर हो। ६

५८ हे तक्मा! तू मूज-घास के देश या दूर बलख में जा, हे तक्मा! तू घूमने-काटनेवाली (मच्छर-जाति)को चाह, उसे विशेष कँपा, तू शूद्रा (फूलप्रियंगु औषधि) की चाह (उससे दूर हो)। ७

५९ महावृष्टि-मूज वाले बँधे स्थान में दूर जाकर अपने बन्धुओं को खा, हम तक्मा के लिए ये और इनसे अन्य (गरम) क्षेत्र भी बताते हैं। ८

६० तू (मनुष्य से)अन्य क्षेत्र में नहीं रमता, वशमें होकर हमें सुखी कर, तक्मा चालू होगया तो बलवानों पर भी जायेगा। ९

६१.जो तू शीत हो या रूक्ष, खाँसी के साथ कँपाता है, तक्मा! तेरी चोटें भयंकर हैं उनसे हमें बचा ।१०

६२ हे तक्मा! तुझसे कहता हूं कि कफ-खांसी-क्षय को सखा न बना, अतः फिर पास न आ। ११

६३ हे तक्मा! भाई कफ, बहिन खाँसी, भतीजे पापी (चर्मरोग) के साथ उस गन्दे जन के पास जा। १२

६४ तिजारी, चौथिया, सब दिनके, शरद् के, शीत, पित्त, ग्रीष्म, वर्षा के तक्मा का नाश कर। १३

६५ हम तक्मा को बाहर जानेवाले जन और कोष के समान, गन्धारी दुर्गन्धित, मूजवाले, अङ्ग (कमजोर), मगध (दोषी-कुपथ्यकारी) जनों-देशों को देते हैं, गन्धपलासी [कचूर], गिलोय, बोल और पिप्पली से दूर करते हैं। १४

सूक्त २३। वैद्य। ११६६ से ११७८ तक १३ मन्त्र। रोग-जन्तु-नाश

११६६. ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती, ओतौ मइन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमिं जम्भयतामिति। १

६७ अस्येन्द्र कुमारस्य क्रिमीन् धनपते जहि। हता विश्वा अरातय उग्रेण वचसा मम॥ २

६८ यो अक्ष्यौ परिसर्पति यो नासे परिसर्पति, दतां यो मध्यं गच्छति तं क्रिमिं जम्भयामसि॥ ३

६९ सरूपौ द्वौ विरूपौ द्वौ कृष्णौ द्वौ रोहितौ द्वौ, बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च गृध्रः कोकश्च ते हताः॥ ४

७० ये क्रिमयः शितिकक्षा ये कृष्णाः शितिबाहवः, ये के च विश्वरूपास्तान्क्रिमीन्जम्भयामसि॥ ५

१ उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा, दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्चप्रमृणन्क्रिमीन्॥ ६

७२. येवाषासः कष्कषास एजत्काः शिपवित्नुकाः, दृष्टश्च हन्यतां क्रिमिरुतादृष्टश्च हन्यताम्॥ ७

७३ हतो येवाषः क्रिमीणां हतो नदनिमोत। सर्वान्निमष्मषाकरं दृषदा खल्वाँ इव॥ ८

७४ त्रिशीर्षाणं त्रिककुदं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम्। शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः॥ ९

७५ अत्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत्, अगस्त्यस्य ब्रह्मणा संपिनष्म्यहं क्रिमीन्॥ १०

७६ हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः, हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा॥ ११

७७ हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः, अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः॥ १२

७८ सर्वेषांच क्रिमीणां सर्वासांच क्रिमीणाम्, भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम्॥ १३

११६६ मेरे लिए द्यावापृथिवी, विद्या-जलधारा, विद्युत् और अग्नि चुने हैं कि क्रिमि-नाश करें। १

६७ हे धनपति इन्द्र (वैद्य), तू इनके कुमार के क्रिमियों को मार, मेरी तेज वच औषधि से सब शत्रु मरें। २

६८ जो आँखों-नाक पर झपटता और दाँतों के मध्य जाता है ऐसे क्रिमि का हम नाश करें। ३

६९ दो समान-रूप के, दो भिन्न-रूप, दो काले, दो लाल (नर-नारी), भूरा, भूरे कान वाला, गिद्ध मेंड़िया और चकवे के समान सब क्रिमि मारे जायें। ४

७० जो क्रिमि नीली कमर के, काले, नीली बाँह के, और अनेक रंगों के हैं उनका नाश करें। ५

७१ अदृष्ट क्रिमि-हन्ता सबका देखा पूर्वमें प्रकट सूर्य देखे न देखे सब क्रिमियों को मारता है। ६

७२ सरक सरक कर घिसट-घिसट कर चलनेवाले, कम्प-युक्त, मूल जघन से वस्तु पकड़ने वाले, ये देखे-अनदेखे सब क्रिमि मार दिये जायें। ७

७३ क्रिमियों में तेज चलने वाला, नादकर्ता भी मारा जाय, शिल से चनों के तुल्य सबको पीस दूँ। ८

७४. ३ सिर, ३ ककुद वाले, चितकबरे, सफेद क्रिमिका नाश करूँ, इसकी पसुलियाँ तोड़ दूं, सिर काटदूं। ९

७५ हे क्रिमियो, अग्नि-वायु-सूर्य की शक्ति से; ईश्वर के वेद-ज्ञान से तुम्हें मारता हूं। १०

७६ इनका राजा और घर-निर्माता-माता-भाई-बहिन सबका नाश किया जाय। ११

७७ इसके सेवक-साथी-छोटे अण्डे सब मार दिये जायें। १२

११७८ मैं सब क्रिमियो-क्रिमि-स्त्रियों का सिर पत्थर से तोड़ता और मुख आग से जलाता हूं। १३

सूक्त २४ । ८ अवसरों पर १७ से रक्षा की प्रार्थना

११७९ सविता प्रसवानामधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यांस्वाहा ॥ १

८० अग्निर्वनस्पतीनामधिपतिः स० [पूर्ववत्] ॥ २

८१ द्यावा-पृथिवी दातॄणामधिपत्नी ते मावतम्० ॥ ३

८२ वरुणोऽपामधिपतिः० ॥ ४

८३ मित्रा-वरुणौ वृष्ट्याधिपती तौ० ॥ ५

८४ मरुतः पर्वतानामधिपतयस्ते मावन्तु । अ० ॥ ६

८५ सोमो वीरुधामधि० ॥ ७

८६ वायुरन्तरिक्षस्याधि० ॥ ८

८७ सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः० ॥ ९

८८ चन्द्रमा नक्षत्राणाम० ॥ १०

८९ इन्द्रो दिवोऽधिप० ॥ ११

९० मरुतां पिता पशूनाम० ॥ १२

९१ मृत्युः प्रजाना० ॥ १३

९२ यमः पितॄणाम० ॥ १४

९३ पितरः परे ते मावन्तु० ॥ १५

९४ तता अवरे ते० ॥ १६

९५ ततस्ततामहास्ते० ॥ १७

११७९. सविता परमात्मा, उत्पन्न हुए पदार्थों का स्वामी १ इस ब्रह्मयज्ञ में, २ इस यज्ञकर्म में, ३ इस पुरोधा(नेतृत्व) में, ४ इस प्रतिष्ठा में, ५ इस चिन्तन में, ६ इस संकल्प में, ७ इस आशीर्वाद में, ८ इस देव-सभा में, मेरी रक्षा करें। यह सुवचन है। १

८० वनस्पतियों का स्वामी अग्नि इस० (शेष पूर्ववत्) । २

८१ दाताओं के स्वामी द्यावा-पृथिवी इस० । ३

८२ जल का स्वामी वरुण (समुद्र-मेघ) इस० । ४

८३ वृष्टि के अधिपति मित्र-वरुण (हाइड्रोजन-आक्सीजन) इस० । ५

८४ पर्वतों के अधिपति मरुत् इस० । ६

८५ वनस्पतियों का अधिपति सोम० । ७

८६ अन्तरिक्ष का अधिपति वायु० । ८

८७ आंखों का अधिपति सूर्य० । ९

८८ नक्षत्रों का स्वामी चन्द्रमा० । १०
८९ द्यौ का स्वामी इन्द्र [बिजली]० । ११
९० पशुओं [इन्द्रियों] का स्वामी, मरुतों [प्राणों] का पिता [जीवात्मा]० ।१२
९१ प्रजाओं का अधिपति मृत्यु [परमात्मा]० । १३
९२ पितरों का अधिपति यम [राजा, न्यायाधीश० । १४
९३ बड़े श्रेष्ठ पितर (पिता-माता दादा-दादी आदि)० । १५
९४ अवर तत [पुत्र आदि]० । १६
९५ तत-तत मह [पौत्र, मित्र]० । १७

सूक्त २४

११९६ पर्वताद्दिवो योनेरङ्गादङ्गात्समाभृतम्, शेपो गर्भस्य रेतोधाः सरौ पर्णमिवादधत् ॥१
९७ यथेयं पृथिवी मही भूतानाङ्गर्भमादधे । एवा दधामि ते गर्भं तस्मै त्वामवसे हुवे ॥२
९८ गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति । गर्भं ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्रजा ॥३
९९ गर्भं ते मित्रावरुणौ गर्भं देवो बृहस्पतिः, गर्भं त इन्द्रश्चाग्निश्च गर्भं धाता दधातु ते॥४
१२००. विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु, आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥५
१ यद्वेद राजा वरुणो यद्वा देवी सरस्वती, यदिन्द्रो वृत्रहा वेद तद्गर्भकरणं पिब ॥६
२ गर्भो अस्योषधीनाङ्गर्भो वनस्पतीनाम्, गर्भो विश्वस्य भूतस्य सो अग्ने गर्भमेह धाः ॥ ७
३ अधि स्कन्द वीरयस्व गर्भमा धेहि योन्याम् । वृषासि वृष्ण्यावन् प्रजायै त्वा नयामसि ॥८
४ वि जिहीष्व बार्हत्सामे गर्भस्ते योनिमाशयाम्, अदुष्टे देवाःपुत्रं सोमपा उभयाविनम् ॥९
५ धातः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः । पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥१०
६ त्वष्टः श्रेष्ठेन० ॥ ११ ॥ ७ सवितः० ॥ १२ ॥ ८ प्रजापते०॥ १३ [पूर्ववत्]

सूक्त २५ । ११९६-१२०८ = १३ मन्त्र । गर्भ-विज्ञान (एम्ब्रयोलाजी)

११९६ गर्भ के वीर्य का धारक पुरुष पर्वत आदि की ओषधि, आकाश के मेघ-वायु-सूर्य-प्रकाश से और अपने अङ्ग-अङ्ग से एकत्रित वीर्य का, आकाश में सूर्य और बाण में चंख के तुल्य, आधान करे । १
९७ जैसे विशाल पृथ्वी प्राणियों को गर्भ में रखती है वैसे पत्नी गर्भ को, वह उसकी रक्षा करें । २
९८ हे अन्न-ज्ञान-युक्त पत्नी ! तू गर्भ-धारण कर, पोषक दोनों मातृ-पितृ-अंश तुझ में गर्भ रक्खें ।३
९९ प्राण-अपान-सूरज-बिजली-वायु-अग्नि-परमात्मा तेरे गर्भ की रक्षा करें । ४
१२०० विष्णु (व्यापक ईश्वर और रक्त) योनि समर्थ बनाये, रूप-निर्मात्री शक्ति रूपों को बनायें पालक पति वीर्य-सिञ्चन करे और पोषक माता की प्राणशक्ति गर्भ-धारण करायें । ५
१ हे स्त्री! जिसे वर पति, विदुषी पत्नी, रोग-नाशक वैद्य जानते हैं उस गर्भद ओषधि का पान कर ।६
२ हे अग्नि ! तू ओषधि-वनस्पति-सब जगत् का गर्भ-धारक आश्रय है, तू यहाँ गर्भ धारण करा । ७८
३ हे वीर ! उठ खड़ा हो, वीरता से योनि में गर्भ-स्थापना कर, तुझ बली को सन्तानार्थ बढ़ाते हैं ।
४ हे बृहत्साम-गायिका स्त्री ! तू उद्योग कर, तेरी योनि में गर्भ स्थिर हो, सोम-पालक देव तुझे दोनों का पालक पुत्र दें । ९
५-८ हे धाता-त्वष्टा-सविता-प्रजापति [पति] तू पत्नी की दो गवीनी [नाड़ियों] में दसवें मास पैदा होने के लिए रक्षक पुत्र का आधान कर । १०-१३

सूक्त २६ । १२ मन्त्र १२०६ से १२२० तक । विद्वान् । यज्ञ-योग

१२०६ **यजूंषि यज्ञं समिधः स्वाहाग्निः प्र विद्वानिह वो युनक्तु ॥ १**
१० **युनक्तु देवः सविता प्रजानन्नस्मिन् यज्ञे महिषः स्वाहा ॥ २**
११ **इन्द्र उक्थामदान्यस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥ ३**
१२ **प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः ॥ ४**
१३ **छन्दांसि यज्ञे मरुतः स्वाहा मातेव पुत्रं पिपृतेह स्वाहा ॥ ५**
१४ **एयमगन् बर्हिषा प्रोक्षणीभिर्यज्ञं तन्वानादितिः स्वाहा ॥ ६**
१५ **विष्णुर्युनक्तु बहुधा तपांस्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ७**
१६ **त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा अ० [पूर्ववत्] ॥ ८**
१७ **भगो युनक्त्वाशिषो न्वस्मा अस्मिन्यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥ ९**
१८ **सोमो युनक्तु बहुधा पयांस्यस्मिन्यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ १०**
१९ **इन्द्रो युनक्तु बहुधा वीर्याण्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ११**
२० **अश्विना ब्रह्मणा यातमर्वाञ्चौ वषट्कारेण यज्ञं वर्धयन्तौ ।**
२१ **बृहस्पते ब्रह्मणा याह्यर्वाङ् यज्ञो अयं स्वरिदं यजमानाय स्वाहा ॥ १२**

१२०९ ये यजुर्मन्त्र और समिधाएँ हों, ज्ञानी विद्वान् तुम्हें यज्ञ में नियुक्त करे । १
१० महान् देव सविता (ईश्वर-विद्वान्) तुम्हें जानता हुआ इस यज्ञ में नियुक्त करे । २
११ विशेष विद्वान् सुयोग्य इन्द्र (जीवात्मा-राजा)) इस यज्ञ में आनन्द-दायक स्तुतियाँ प्रयुक्त करे । ३
१२ हे शिष्टो! यहाँ अपनी अपनी पत्नियों के साथ योगयुक्त हो सुवचन से यज्ञमें ज्ञान लाओ । ४
१३ जैसे माता पुत्र को पूर्ण करती है वैसे ऋत्विज यज्ञ में सुवचन से छन्दों को पूर्ण करें । ५
१४ यह अदिति माता बर्हि-प्रोक्षणियों के साथ यज्ञ-विस्तार करती हुई आती है । योगमें अदिति विवेक-ख्याति ब्रह्म-साक्षात्कार और आनन्द-धाराओं के साथ आती है । ६
१५ विष्णु (ईश्वर-व्याप्तीमय पुरुष) यज्ञ में अनेक तपों को संयुक्त करे । ७
१६ यज्ञ में सुयोग्य त्वष्टा (एंजीनियर) विविध रूपों को बहुधा युक्त करे । यह सुवचन है । ८
१७ सुयोग्य ज्ञानी भग [ऐश्वर्यशाली] इस यज्ञ में हमारे लिए अपने आशीर्वाद प्रयुक्त करे । ९
१८ इस यज्ञ में सुयोग्य सोम [प्रेरक ऋत्विज् अनेक अन्न-दूध प्रयुक्त करे, यह सुवचन है । १०
१९ इस यज्ञ में सुयोग्य इन्द्र [राजा-बिजली] सब प्रकार से शक्ति प्राप्त कराये, यह सुवचन है । ११
२० हे अश्विओ [सुकर्म में लगे अध्यापक-उप!] तुम देशको ज्ञान-कर्म से यज्ञको बढ़ाते हुए सामने उपस्थित होओ । हे बृहस्पति ! तुम वेद के साथ आओ, यह यज्ञ यजमान के लिए स्वर्ग है ।
(ये ११ शक्तियाँ योग, सृष्टि और देशोन्नयन में भी सहायक हैं ।) १२

अनुवाक ६ सूक्त२७ से ३१ तक

महर्षि-दयानन्दानुसार अनुवाक-विषय- अग्न्यादि यज्ञादि प्राणादि पदार्थविद्या

सूक्त २७ । १२ मन्त्र, अग्नि [ईश्वर - विद्वान् - यज्ञाग्नि]

१२२१ ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचींष्यग्नेः ।
द्युमत्तमा सुप्रतीकः ससूनुस्तनूनपादसुरो भूरिपाणिः ॥ १

२२ देवो देवेषु देवः पथो अनक्ति मध्वा घृतेन ॥ २

२३ मध्वा यज्ञं नक्षति प्रैणानो नराशंसो अग्निः सुकृद्देवः सविता विश्ववारः ॥३

२४ अच्छायमेति शवसा घृता चिदीडानो वह्निर्नमसा ॥ ४

२५ अग्निः स्रुचो अध्वरेषु प्रयक्षु स यक्षदस्य महिमानमग्नेः ॥ ५

२६ तरी मन्द्रासु प्रयक्षु वसवश्चातिष्ठन् वसुधातरश्च ॥ ६

२७ द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रतं रक्षन्ति विश्वहा ॥ ७

२८ उरुव्यचसाग्नेर्धाम्ना पत्यमाने आ सुष्वयन्ती
यजते उपाके उषासानक्तेमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥ ८

२९ दैव्या होतार ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वयाभि गृणत गृणता नः स्विष्टये ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तामिडा सरस्वती मही भारती गृणाना ॥ ९

३० तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु । देव त्वष्टा रायस्पोषं विष्य नाभिमस्य ॥ १०

३१ वनस्पतेऽव सृजा रराणः । त्मना देवेभ्यो अग्निर्हव्यं शमिता स्वदयतु ॥ ११

३२ अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेदः । इन्द्राय यज्ञं विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥१२

१२२१ इस अग्नि की प्रदीपक शक्तियाँ शुद्ध-तीव्र-उत्तम-ऊँचे जानेवाली होती हैं । वह अतिप्रकाश-युक्त, बड़ी प्रतीतिवाला, प्रेरक शक्तियों के साथ, शरीर न गिरानेवाला, जीवन-दाता, बहु-शक्ति है । १

२२ देवों में मुख्य वह अग्नि मधुर तेज से मार्गों को प्रकट करता है । २

२३ नरों से प्रशंसनीय, सुकर्मा, प्रेरक, सबको स्वीकार्य यह मधुरता से यज्ञ बढ़ाता चलता है । ३

२४ जिसके गुण कहे जाते हैं वह अग्नि अहिंसक कार्यों में बल-जल-अन्न के साथ सुचालित है ।४५

२५ यह अग्नि अहिंसक कर्मों में गति-प्रयोक्ता है, इसकी महिमा समझ कर विद्वान् प्रयोग करें ।

२६ यह अग्नि सुखद प्रयोगों में तारक है, सब वसु और उनकी धारक शक्तियाँ इसके साथ हैं । ६

२७ दिव्य द्वार (साधन) और सब देव अनुकूल होकर इस (अग्नि) के व्रत की रक्षा करते हैं । ७

२८ बहुत व्यापक अग्नि के तेजसे रक्षक बने हुए, अच्छे प्रकार परस्पर सङ्गत हुए, दिन-रात हमारे इस अहिंसक यज्ञ और सङ्गठन की रक्षा करें । ८

२९ दिव्य-गुण-युक्त दान-शील जनो! तुम हमारा अध्वर उन्नत करके जिह्वा से अग्नि का वर्णन करो हमारे सु-कार्य की प्रशंसा करो । ३ देवियाँ इडा-सरस्वती-मही भारती (अन्न-बुद्धि-बड़ी विद्या, ज्ञान-कर्म-उपासना, माता-बहिन-पुत्री-पत्नी) इस यज्ञ में गुण वर्णन करती हुई विराजें । ९

३० हे देव शिल्पी एञ्जीनियर! तू हमें वह तत्काल रक्षक अद्भुत अन्न-पोषण और उसका केन्द्र खोल ।१०

३१ हे सेवनीय स्वामी! तू दानी होकर दे, शामक आग स्वयं देवों के लिए हव्य स्वादु करे । ११

२ हे जातवेद अग्नि! तू इन्द्र के लिए यज्ञ कर, सब देव यह हवि सेवन करें । १२

सूक्त २८ । प्रजापति । १४ मन्त्र, १२३३-४६ (दीर्घायु-प्राप्ति)

१२३३ नव प्राणान्नवभिः सं मिमीते दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
हरिते त्रीणि रजते त्रीण्ययसि त्रीणि तपसाविष्ठितानि ॥ १

३४ अग्निः सूर्यश्चन्द्रमा भूमिरापो द्यौरन्तरिक्षं प्रदिशो दिशश्च ।
आर्तवा ऋतुभिः संविदाना अनेन मा त्रिवृता पारयन्तु ॥ २

३५ त्रयः पोषास्त्रिवृति श्रयन्तामनक्तु पूषा पयसा घृतेन ।
अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम् ॥ ३

३६ इममादित्या वसुना समुक्षतेममग्ने वर्धय वावृधानः ।
इममिन्द्र संसृज वीर्येणास्मिन् त्रिवृच्छ्रयतां पोषयिष्णु ॥ ४

३७ भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृदग्निः पिपर्त्वयसा सजोषाः ।
वीरुद्भिष्टे अर्जुनं संविदानं दक्षं दधातु सुमनस्यमानम् ॥ ५

३८ त्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्यमग्नेरेकं प्रियतमं बभूव सोमस्यैकं हिंसितस्य परापतत् ।
अपामेकं वेधसां रेत आहुस्तत् ते हिरण्यं त्रिवृदस्त्वायुषे ॥ ६

३९ त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । त्रेधामृतस्य चक्षणं त्रीण्यायूंषि तेऽकरम् ॥ ७

४० त्रयः सुपर्णास्त्रिवृता यदायन्नेकाक्षरमभिसंभूय शक्राः ।
प्रत्यौहन् मृत्युममृतेन साकमन्तर्दधाना दुरितानि विश्वा ॥ ८

४१ दिवस्त्वा पातु हरितं मध्यात्त्वा पात्वर्जुनम् । भूम्या अयस्मयं पातु प्रागाद् देवपुरा अयम् ॥ ९

४२ इमास्तिस्रो देवपुरास्तास्त्वा रक्षन्तु सर्वतः । तास्त्वं बिभ्रद्वर्चस्व्युत्तरो द्विषतां भव ॥ १०

४३ पुरं देवानाममृतं हिरण्यं य आबेधे प्रथमो देवो अग्रे ।
तस्मै नमो दश प्राचीः कृणोम्यनु मन्यतां त्रिवृदाबधे मे ॥ ११

४४ आ त्वा चृतत्वर्यमा पूषा बृहस्पतिः । अहर्जातस्य यन्नाम तेन त्वाति चृतामसि ॥ १२

४५ ऋतुभिष्ट्वार्तवैरायुषे वर्चसे त्वा । संवत्सरस्य तेजसा तेन संहनु कृण्मसि ॥ १३

४६ घृतादुल्लुप्तं मधुना समक्तं भूमिदृंहमच्युतं पारयिष्णु ।
भिन्दत् सपत्नानधरांश्च कृण्वदा मा रोह महते सौभगाय ॥ १४

१२३३ सौ वर्ष की आयु के लिए ईश्वर ६ प्राण ९ अङ्गों से जोड़ता है, ३ आँख-कान-नाक हरित सोने सत्व में, ३ मुख-जीभ-हाथ रजत रजः में, ३ उपस्थ-गुदा-पाद लौह तमः में तप से स्थित हैं । १५
यज्ञोपवीत के ३ तार इसीलिए सोने-चाँदी-ताँबे के होते हैं । —सम्पादक

१२३४ अग्नि-सूर्य-चन्द्र-भूमि-जल-द्यौ-अन्तरिक्ष- ४ दिशा-उपदिशा- ६ ऋतु के साथ बारह मास इस त्रिवृत् योग से मुझे पार लगायें । २

३५ तीन पोषक तत्त्व तीन प्राण-यज्ञोपवीत में बने रहें, पोषक (ईश्वर-राज्याधिकारी) हमें दूध-घी से भरपूर करें; अन्न-पशु-पुरुषों की बहुतायत हो, सभी यहाँ स्थिर रहें । ३

३६ हे आदित्यो ! इसे धन से सींचो, हे अग्नि ! तू स्वयं बढ़ता हुआ इसे बढ़ा, इन्द्र (बिजली) वीर्य से पुष्ट करे। पोषक त्रिवृत् (धन-रत्ती-रोचकता तथा यज्ञोपवीत) बने रहें । ४

३७ सबकी पोषक भूमि सुवर्ण से रक्षा करे, प्रिय अग्नि ताँबेसे पूर्ण करे, तथा ओषधियाँ रजत से तुझमें सुन्दर बल धारण करायें । ५

३८ यह हिरण्य तीन तरह से उत्पन्न है- १. अग्नि का प्रियतम है, २. निचोड़े सोम से निकलता है; ३. जल का सार वीर्य है, वह तेरी आयु बढ़ाये । ६

३९ जलती आग से युक्त, वीर्य-रक्षक की तिगुनी आयु होती है, अमृत का दर्शन ३ तरह (विद्या-शिक्षा-परोपकार) से होता है, मैं तुझे तीन आयु देता हूँ । ७

४० जब समर्थ तीन (इन्द्रिय-मन-आत्मा) तथा तीन तरह के योगी (ज्ञान-ध्यान-कर्म) युक्त त्रिगुण से एक ब्रह्म-बल से मोक्ष पाते हैं तब सब दुरित ढँकते हुए परमात्माश्रय से मृत्यु वश में कर लेते हैं । ८

४१ सुवर्ण-रजत-अय तुझे द्यौ-आकाश-भू, सिर-धड़-नीचे के अङ्ग से बचायें । यह जीवात्मा इस तीनों देव-नगरों में गमन करता है । ९

४२ ये तीनों नगर रक्षा करें, उन्हें धारण करता हुआ तेजस्वी तू शत्रुओं पर विजयी हो । १०

४३ देवों का पुर अमृत हिरण्य जो प्रख्यात देव ईश्वर सर्गारम्भ में बाँधता है, उसे दस दिशाओं में नमस्कार करता हूं वह त्रिवृत् (ओम्) अनुमति दे, मैं उसे और यज्ञोपवीत को धारण करता हूं । ११

४४ अर्यमा पूषा-बृहस्पति ईश्वर मुझे नियमबद्ध करे, सूर्य के तेज से तुझे बाँधते हैं । १२

४५ ऋतुओं-मासों द्वारा आयु-तेज के लिए हम तुझे सूर्य के तेज से संयुक्त करते हैं । १३

४६ घी-प्रकाश-युक्त मधुरता से व्याप्त, भू के समान दृढ़, अटल, पार पाने में समर्थ, तू शत्रुओं को भेदता और नीचा करता हुआ बड़े सौभाग्य के लिए मुझ [ब्रह्म-आचार्य-यज्ञोपवीत का] आश्रय ले १४

सूक्त २९ । १५ मन्त्र [१२४७-६१] अग्नि । रोग-निवारण

१२४७ पुरस्ताद् युक्तो वह जातवेदो ऽग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम् ।
त्वं भिषग् भेषजस्यासि कर्ता त्वया गामश्वं पुरुषं जयेम ॥ १

४८ तथा तदग्ने कृणु जातवेदो विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ।
यो नो दिदेव यतमो जघास यथा सो अस्य परिधिष्पताति ॥ २

४९ यथा सो अस्य परिधिष्पताति तथा तदग्ने कृणु जातवेदः, विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ॥ ३

१२५० अक्ष्यौ निविध्य हृदयं निविध्य जिह्वा नितृन्द्धि प्र दतो मृणीहि ॥
पिशाचो अस्य यतमो जघासाग्ने यविष्ठ प्रति तं शृणीहि ॥ ४

'आभि' के द्वारा त्सिमर और हिलेब्राण्ट ने सोम में पूर्व मिलाया जाने वाला दूध बताया है, जिसे व्हिटने ने एक यन्त्र बताया है जो पानी को चारों तरफ से दबा कर प्रयुक्त होता है जिसका शुद्ध अर्थ जानने योग्य है। रथ नाम से वायुयान-जलयान आदि का वेदों में अनेकत्र उल्लेख है जिनमें प्रयुक्त होने वाली अयः-लोहा-श्याम-हिरण्य-लोहित-ताँबा-रजस आदि अनेक धातुओं का भी उल्लेख है—

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्च मे श्यामञ्च मे लोहञ्च मे सीसञ्च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पताम् ॥ य १८-१३

विद्वानों से प्रार्थना है कि वे एक बार पुनः अध्ययन करके वेद की विवेचना कर आर्यसमाज के तीसरे नियम को सत्य प्रमाणित करें।

वेद की जटिलताओं को बनाना मनुष्य के लिए सम्भव न होने से यह ईश्वर-रचित ही सिद्ध है।

पृ.२४ वर्ष १४, अङ्क ७ आषाढ-श्रावण २०४७ ❀ वेदज्योति ❀ जुलाई ९० ६९२१/६२१ डाक लखनऊ

श्रीमन्! नमस्ते, आपका वर्ष ७-९० को पूर्ण हो चुका है, कृपया वार्षिक शुल्क शीघ्र भेजिये उसके मिलने पर ही अगला अंक भेजा जायेगा। अंकों को सँभाल कर रखिये, फिर न मिल सकेंगे। सभी सदस्य, विशेषतः आजीवन संरक्षक अथर्ववेद के प्रकाशन में कृपया आर्थिक सहायता दें।

समाचार

--शाखा विश्व वेदपरिषद् चण्डीगढ की वार्षिक सभा ३-६-९० को हुई जो स्वामी आनन्दबोध सरस्वती, वेदाचार्य वेदर्षि व्यास योगी द्वारा सम्पोषित की गयी, मन्त्री आशुराम आर्य ने रिपोर्ट पढ़ी।
--जून के अन्त में आये भूकम्प से ईरान में पचास हजार से अधिक मरे, भारत ने एक करोड़ सहायता दी।
--आन्ध्र में जून के आरम्भ में आये समुद्री तूफान से लाखों हताहत हुए, केन्द्र ने पर्याप्त सहायता की।
—अयोध्या में राम-मन्दिर अब अक्टूबर से बनेगा।
—तपोवन, रामगढ़ और आर्य समाज श्रृंगारनगर लखनऊ में जून में योग-शिविर लगे।
—लखनऊ जिला उपसभा के चुनाव में अधिकारी पूर्ववत् रहे।
--आर्यसमाज महानीरगंज लखनऊ का उत्सव मई में, और नैनीताल अल्मोड़ा के जून में सम्पन्न हुए।
--वेदर्षि वेदाचार्य रामनाथ वेदालंकार को ३० पू० शासन से २५०००) पुरस्कार मिला, हार्दिक बधाई!
—आर्यसमाज सान्ताक्रुज बम्बई के सत्रह जून के चुनाव में श्री रामचन्द्र प्रधान, श्री विश्वभूषण मन्त्री हुए।

सार्वदेशिक सभा के त्रिसूत्री आन्दोलन में सभी भाग
गौहत्या बन्द करो, अंग्रेजी हटाओ, शराब के ठेके उठाओ, वीरेन्द्रमु

वैदिक दैनन्दिनी भाद्रपद २०४७ विक्रम

भा कृ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ १० ११ १२ १३ १४ ३० शु १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ ११ १२ १३ १४ १५
वार मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु
न. ध श त पू उ रे अ भ कृ रो मृ आ पु न पु श्ले म पू उ ह चि स्वा वि अ ज्ये मू पू उ श्र
अग. ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ सि १ २ ३ ४

प्रेषक। मुद्रक आदर्श प्रेस, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६ दूरभाष ७२५०१

सेवा में

लाइब्रेरियन
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
(हरिद्वार)

वर्ष १४
अंक ८
भाद्रपद

अगस्त
१९९०

उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार
वर्ष १४ अङ्क ८, भाद्रपद (नभस्य) संवत् २०४७ वि०, प० गुरुदत्त विद्यार्थी शताब्दी
वेद–मानव–सृष्टि–संवत् १ ९६ ०८ ५३ ०९१, दयानन्दाब्द १६६
शुल्क वार्षिक ३०), आजीवन ३००), विदेश में २५ पौंड, ५० डालर

सम्पादक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री एम. ए. काव्यतीर्थ, उपाध्यक्ष विश्व वेद परिषद्
सहायक–विमला शास्त्री, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष ७०५०१
देहली कार्यालय–श्री सञ्जयकुमार, मन्त्री, बी९ हिल व्यू, वसन्तविहार, नयीदिल्ली५७, दूर० ६०१४५२

श्रावणी ६-८-९० से कृष्णाष्टमी १४-८-९० तक वेदसप्ताह

वेद ही जग में हमारा ज्योति जीवन–सार है। वेद ही सर्वस्व प्यारा पूज्य प्राणाधार है॥ १
श्रावणी का श्रेष्ठ उत्सव पुण्य–पावन पर्व है। वेद का स्वाध्याय–वैभव आज तो सुख सर्व है।
वेदपाठी आर्यजन का दिव्य दिन दातार है॥ २॥ वेद ही०
वेद का पाठन–पठन हो वेद–वाद–विवाद हो। वेद–हित जीवन–मरण हो वेद–हित आह्लाद हो॥
आर्य–जन का वर्ष भर व्रत विश्व–वेद–प्रचार है॥ ३॥ वेद ही०
विश्वभर को आर्य करना वेद का सन्देश है। मृत्यु से किञ्चित् न डरना ईश का आदेश है।
सृष्टि–सागर में हमारा वेद ही पतवार है! वेद ही स्वामी सखा सब वेद ही परिवार है॥४॥

सत्यार्थप्रकाश–मन्त्र–व्याख्या

क्रमांक ५८। ऋषि–प्रजापति परमेष्ठी, देवता–भाववृत्तम्, छन्द–त्रिष्टुप्, स्वर– धैवत

तम आसीत्तमसा गूढमग्र अप्रकेत सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम्॥ (ऋ० १०–१२९–२)

यह सब जगत् सृष्टि के पहिले अन्धकार से आवृत, रात्रिरूप में जानने के अयोग्य, आकाश–रूप सब जगत्, तथा तुच्छ्य अर्थात् अनन्त परमेश्वर के सम्मुख एकदेशी आच्छादित था। पश्चात् परमेश्वर अपने सामर्थ्य से कारणरूप से कार्यरूप कर दिया। [समुल्लास ८, महर्षि दयानन्द सरस्वती]

वेद में अर्थ ज्ञान में स्वर आवश्यक अनिवार्य नहीं

डा० सुधीर कुमार गुप्त, जयपुर

१- म०म० श्री युधिष्ठिर मीमांसक ने वेदवाणी मई-जून-जुलाई '९० में 'वेदार्थ में स्वर-ज्ञान की अनिवार्यता', 'वेदमें व्यत्यय' लेख की पृष्ठभूमि वेदोद्धारिणी में प्रस्तुत मेरे लेख 'वैदिक स्वर और वेदार्थ' तथा दिल्ली में मार्च ९० में गोष्ठी में दिये भाषण और कुछ अन्य विद्वानों के लेख हैं।

२- परन्तु इनमें मेरे लेख में दी गयी युक्तियाँ आदि समीक्षित नहीं मिलीं, अन्यत्र भी नहीं।

३- वेद-भाषा क्या संस्कृत-भिन्न विशिष्ट प्रयोगों वाली है या यु०मी०के अनुसार रूढार्थपद वाली? म० दयानन्द के मत में यह बोलचाल-भाषा न थी (ह०शा० कृत जीवनी पृ,२८८)। ऋ १०.७१.२ में ऋषि बृहस्पति-दर्शनानुसार यह अर्थ-समृद्धि-पूर्ण, तै०ब्रा० ३.१०.११.३ के इन्द्र-बृहस्पति-आख्यानानुसार मन्त्रों के अगणित अर्थ हैं, वेंकटमाधव यह नहीं मानता। सृष्टि-आरम्भ में निर्मित भाषा बीज गणित-सूत्रतुल्य में स्वर-सत्ता-प्रश्न ही नहीं उठता, कुछ समय-पश्चात् अर्थ-सीमन के लिए स्वरांकन हुआ जिसमें अज्ञात अर्थ-द्योतन अभीष्ट रहा होगा, तदनुकूल नियम भी बनाए गए यथा उञ्छादीनां च (पा० ६.१.१६०, २०१-२) तदुपरि गण० अर्थ विशेषों में स्वरविधान, फिट्सूत्र (११-१२) कृष्णस्य मृगाख्या चेत् तथा वा नामधेयस्य आदि यद्यपि म० दयानन्द ने स्वर अपौरुषेय माने तथापि ऋ.भा.भू. में अर्थ-स्वर-सम्बन्ध-द्योतक नियमादि न देने से पाणिनि-नियमोपयोगिता-मान्यता सन्दिग्ध हो जाती है। म० के कुछ स्थलों पर उपलब्ध स्वर-अनुकूल अर्थ नहीं हैं। (मेरा लेख अनु. ३६-४१-४५) यदि यु० मी० के लेखानुसार पाणिनि-सूत्र व्यत्ययो बहुलम् (१.१.८५) और परादिश्छन्दसि (६.२.१८९) तथा इतर कात्यायन-कारिकाएं न मानी जाएँ तो उक्त स्थलोंके दयानन्द-भाष्य अशुद्ध-अप्रामाणिक और कुछ शब्द व्यक्तिवाचक हो जायेंगे। (मेरा लेख, अनु.५१) 'व्यत्यय नहीं' लिखकर भी यु०मी० ने माना 'यथेष्टस्वर उपपन्न नहीं होता तब पाणिनीय शास्त्रकी दृष्टि से व्यत्ययशब्द प्रयोग किया जा सकताहै'

४- यु०मी० बिवेचित वायो न्यधायि और पृणङ् मरुस्य बताते हैं कि शाकल्य-काल में स्वरांकन नहीं था या भिन्न था। अन्यथा उसे भूलें करने वाला मानना पड़ेगा, उसका विश्लेषण अपेक्षित है। वैसे यु०मी के अनुसार दयानन्द ने पदपाठ मान्य कर सायण-खण्डन किया। (वेवा ४२-८ अनु१) जहाँ उनके अर्थ पदपाठानुकूल नहीं वहाँ उनकी उक्ति स्वयं उनपर लागू हो जाती है।

५- पाणिनि ने उपलब्ध स्वरों की व्याख्या की, नया निर्देश नहीं, जैसा कि यु०मी० ने लिखा।

६- यु०मी० द्वारा पक्ता-पाचक में दिखाया सूक्ष्म भेद अव्यावहारिक अनुपयुक्त है, दान्त-गौत की धारा में सूक्ष्म अर्थों के उदाहरण नहीं दिये। अच्छा हो कुछ उदाहरण देकर लाभ पहुँचायें।

७-यु०मी०का वेंकटमाधव की स्वर-पूर्शंनक कारिकाओं पर विशेष आग्रह है परन्तु वे तो इतिहास-पुराणानुसारी उसके निजी अर्थों की समर्थक हैं। उनसे अनेक पद रूढि-व्यक्तिवाची हो गये।

८- अतः वेंकटमाधव-भाष्य म० दयानन्द-आर्यसमाज-सिद्धान्त-विरुद्ध विचारणीय कोटि में है जिसकी परिणति सायणादि में हुई। उसका लक्ष्य स्वभाष्य-पोषण है अतः अमान्य-अस्वीकार्य-त्याज्य। यदि यु०मी० उसके अन्य सब अनुक्रमणी-भाष्य देख लेते तो ऐसे लेख न लिखते बहुव्रीहः० आदि में इसने भी वेद में स्वर-व्यत्यय माना है।

९- यदा न तं स्वरं पश्येद् अन्यार्थं तदा नयेत्। (३-८-१) का अर्थ यु०मो० ने किया कि-

६- यजमान अब अगले दिन आग्रयण-इष्टि करता है। राजसूय-कर्ता सब यज्ञ-क्रतु-इष्टि-दर्विहोम कर लेता है। आग्रयणेष्टि देव-निर्मित है, इनसे मेरा भी लाभ हो यह विचार कर इसे करता है। राजसूय करते हुए यह औषधियों का भी यज्ञ करता है कि उन्हें नीरोग-पाप-रहित बनाकर इनसे यज्ञ करूँ। इसकी दक्षिणा गौ है। ६

अब ७ चातुर्मास्य यज्ञ करता है। ये भी देवनिर्मित हैं इनसे भी लाभ हो अतः करता है। १०

शतपथ कांड५, अध्याय२, ब्राह्मण४ (राजसूय यज्ञ)

वैश्वदेवादि पर्व; पंच वातीय होमविधि आदि

अब वैश्वदेव पर्व का यज्ञ करता है। इससे प्रजापति ने बहुत प्रजा रची कि ऐसा करके राजसूय यज्ञ करूँ, वैसे ही यह भी बहुत प्रजा रचता है कि इसे रचकर राजसूय करूँ। १

अब वरुण-प्रघास यज्ञ करता है। इनसे प्रजापति ने प्रजा को वरुण-पाश से छुड़ाया था जिनसे वे नीरोग-अपाप हो गयीं, ऐसे ही यह भी इनसे प्रजा को नीरोग-अपाप करता है कि यह करके ही राजसूय करूँ। २

अब साकमेध यज्ञ करता है। इनसे देवों ने वृत्र को मारकर जय पायी इसी तरह यह भी इनसे पापी-द्वेषी शत्रु को मारकर जीतता है कि जीते हुए अभय अशत्रु राष्ट्र में राजसूय करूँ। ३

अब शुनासीर्य से यज्ञ करता है। दोनों रस लेकर राजसूय करूँ। अब पंचवातीय यज्ञ करता है। वह आहवनीय के ५ भाग करके स्रुवा से ले ले कर यजु ९-३५ से आहुति देता है- ४

पूर्वार्ध में-	अग्नि नेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरःसद्भ्यः स्वाहा।
दक्षिणार्ध में-	यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा।
पश्चिमार्ध में-	विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा।
उत्तरार्ध में-	मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वा मरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्यः उत्तरासद्भ्यः स्वाहा।
मध्य में-	सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्य उपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यः स्वाहा॥ ५

अब आधे के साथ समूह करके यजु ९-३६ से आहुति देता है-

ये देवा अग्निनेत्राः पुरः सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा यमनेत्रा दक्षिणासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवाः विश्वदेवनेत्राः पश्चात्सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा मित्रावरुणनेत्रा वा मरुन्नेत्रा वोत्तरासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवाः सोमनेत्रा उपरिसदो दुवस्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा॥ (यजु ९-३६) इस प्रकार। ६

जहाँ देव साकमेधों से जीते इनकी उस विजय को कहते हैं—ये दिशाओं में दुष्ट राक्षस (क्रिमि) उड़ते हैं इनपर वज्र-प्रहार करूँ। घी वज्र है, उन्हों ने इससे मारा, जयी हुए, ऐसे ही यह जयी होता है कि अभय राष्ट्र में राजसूय करूँ। ७

ये दूसरी ५ आहुतियाँ इसलिए हैं कि पहले ५ व्यूह करके आहवनीय बिगाड़ी थी इसका सन्धान करता है अतः ये दूसरी ५ आहुतियाँ देता है। ८

इसकी दक्षिणा प्रष्टिवाहन अश्वरथ है जिसमें तीन घोड़े दो सवार-सारथि होते हैं। वे ५ प्राण ही हैं। प्राण ही वात है। इस कर्म की यह दक्षिणा है अतः पंचवातीय नाम है। ९

वह इससे भी चिकित्सा करता है। प्राण वायु है जो अकेला गति करता हुआ पुरुष में अन्दर घुस कर दस प्रकार का बन जाता है। दस आहुतियों से दस प्राणों की पूरी आयु धारण कराता है। १०

अब इन्द्रतुरीयम् करता है। इसमें अग्नि का ८ कपालों का पुरोडाश, वरुण के लिए जौ का चरु, रुद्र का गेहूं का चरु, इन्द्र का वहला गौ का दही। इससे इन्द्राग्नि यज्ञ करते हैं कि दस दिशाओं में घूमते हुए दुष्ट राक्षसों पर वज्र मारें। ११

अग्नि बोला—तीन मेरे भाग, एक तेरा। अच्छा कह कर दोनों इस हवि से राक्षसों को मार कर जयी हुए। ऐसे यह भी जयी बनता है कि अभय राष्ट्र में राजसूय करूँ। १२

आग्नेय पुरोडाश अग्निका एक भाग, वरुण-रुद्र के दो भाग भी अग्नि के, क्योंकि वे दोनों भी अग्नि हैं, (रुद्र का गावेधुक यास्त्व्य देव गवेधुक ने बनता है।) केवल दही इन्द्र का तुरीय भाग है, अतः इन्द्रतुरीय नाम है जिसकी दक्षिणा अनुड्डुही वहला जिसका कन्या आग्नेय, स्त्री होकर अवमं से वहन करती है यह वारुण रूप है, गौ है अतः रौद्री, दधि से ऐन्द्री है, सुता रखने से दक्षिणा है। १३

अब अपामार्ग-होम करता है जिनसे देवों ने राक्षस जीते उनसे ही यह जीतता है कि विजित अभय राष्ट्र में राजसूय करूँ। १४

वह ढाक या विकङ्कत के स्रुवा में अपामार्ग(चिटचिटा)के चावल और दक्षिणाग्नि से अङ्गारा लेकर पूरब या उत्तर जाकर आग जलाकर आहुति देता है। १५

अङ्गारा लेता है- अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य। दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसि॥(य ९.३७)

हे अग्रणी! सेना के शस्त्रों को सहन कर, शत्रुओं को दूर भगा, शत्रु से पराजित न होकर उन्हें हराता हुआ तेजस्वी होकर यज्ञ कर्ता के पास आ। १६

अग्नि जलाकर आहुति देता है — देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे अश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामुपांशोर्वीर्येण जुहोमि हतं रक्षः स्वाहा॥ (य ९-३८) [देव सविता के संसार में अश्विओं की बाहों, पूषा के हाथों से तुझे यज्ञमुख के पराक्रम से आहुति देता हूँ, राक्षस(क्रिमि)मर गया। यह सुवचन है]। १७

यदि ढाक का स्रुवा है तो ढाक ब्राह्मण है उसीसे राक्षस मारता है, यदि विकङ्कत का तो वह वज्र है, उसी से इन दुष्ट राक्षसों को मारता है। रक्षसां त्वा वधाय(य ९-३८) [तुझे राक्षस-वधार्थ] १८

यदि पूरब जाकर आहुति देता है तो स्रुवा को पूरब में फेंक देता है यदि उत्तर जाकर देता है तो उत्तर में फेंककर कहता है — अवधिष्म रक्षः (य ९- ३८) [राक्षस मार दिये] १९

अब बिना प्रतीक्षा किये फिर आते हैं। वह इससे भी प्रतिरोध करे। जिस दिशा में हो वहां से उलटे जाकर आहुति दे। अपामार्ग का उलटा फल है। जो इस यजमान के लिए वहां कुछ करता है उसीके पीछे लग जाता है। उसका नाम ले— अवधिष्मामुमसौ हतः(य ९-३८)उसे मारा वह मर गया। इस प्रकार दुष्ट राक्षसों को मारता है। २०

ब्राह्मण ५

[त्रिसंयुक्तेष्टि और द्विहविष्केष्टि]

अग्नि-विष्णु का ११ कपालों का पुरोडाश बनाता है। इन्द्र-विष्णु का चरु, विष्णु का तीन कपाल का पुरोडाश या चरु, तीनों को मिलाकर यज्ञ करता है। इससे देव पुरुषों के पास पहुँचे ऐसे ही यह इससे पुरुषों के पास ही पहुँचता है। १

इनमें अग्नि दाता यजमान के लिए पुरुषों को देता है। २

ऐन्द्रावैष्णव चरु में इन्द्र यजमान और वैष्णव पुरुष होते हैं। इसके लिए दाता अग्नि जिन पुरुषों को देता है उनको यजमान अपने में करता है। ३

अब जो वैष्णव त्रिकपाल पुरोडाश या चरु है वह अन्त तक उन्हीं पुरुषों के पास रहता है जिन्हें दाता अग्नि इसके लिए देता है। इच्छित कर्म करने को यह उन्हीं के पास पहुँचता है। मैं पुरुषवान् होकर राजसूय करूँ। उसकी दक्षिणा बौना बैल है। वह बौना होने से वैष्णव है। ४

अब दूसरे त्रिषंयुक्त से यज्ञ करता है। अग्नि-पूषा का ११ कपालों का पुरोडाश, इन्द्र-पूषा का चरु, पूषा का चरु, तीनों मिलाकर यज्ञ करता है। इससे देवों ने पशु पाये, वैसे ही यह भी पाता है। ५

अग्नि-पौष्ण ११ कपालों के पुरोडाश में अग्नि दाता पौष्ण पशुओं को इसके लिए देता है। ६

इन्द्र-पूषा के चरु में इन्द्र यजमान के लिए पूषा के पशुओं को दाता अग्नि देता है। ७

तीसरे पूषा के चरु से भी पशुमान् होता है। इसकी दक्षिणा श्याम गौ है जो पूषा का है। श्याम के दो रूप हैं, लोम सफेद और काले। जोड़ा मिथुन, पूषा प्रजनन, पशु पूषा, प्रजनन, जो मिथुन से ही होता है अतः श्याम गौ दक्षिणा है। ८

अब तीसरे त्रिषंयुक्त से यज्ञ करता है। अग्नि-सोम का ११ कपालोंका पुरोडाश, इन्द्र-सोम का चरु, सोम का चरु। ये तीन मिलाकर यज्ञ करता है, इससे देवों ने वर्च पाया था, यह भी पाता है। ९

इनमें पहले में अग्नि दाता सोम वर्च को देता है। १०

इन्द्र-सोम के चरु में इन्द्र(यजमान)को सोम(वर्च) दाता अग्नि से मिलता है। ११

सोम के चरु से भी दाता अग्नि वर्च को देता है। यजमान चाहता है कि मैं वर्चस्वी होकर राजसूय करूँ। अवर्च की व्याप्ति से कुछ लाभ नहीं। उसकी दक्षिणा भूरा बैल सौम्य है। १२

अब अगले(८ वें)दिन वैश्वानर का १२ कपालों का पुरोडाश, वारुण जौ-चरु बनाता है, दोनों मिलाकर या समान बाहियों पर रखकर द्विहविष्केष्टि यज्ञ करता है। १३

वैश्वानर संवत्सर-प्रजापति ने ही बहुत प्रजा रची, मैं भी बहुत प्रजा रचकर राजसूय करूँ। १४

१२ कपाल १२ मास हैं जो संवत्सर के होते हैं जो वैश्वानर है अतः १२ कपालों का पुरोडाश है। १५

वरुण का जौ-चरु उसके पाश और आराय से प्रजा को छुड़ाता है जिससे वे नीरोग-निष्पाप होती हैं। मैं ऐसी प्रजा बनाकर राजसूय करूँ (वह यजमान का सङ्कल्प हुआ)। १६

वैश्वानर की दक्षिणा साँड है क्योंकि वह पशुओं का प्रजापति है, वारुण की दक्षिणा काला वस्त्र है, सो काला वारुण है, यदि काला न मिले तो चाहे जैसा हो। वह गाँठों से वारुण होता है। क्योंकि गाँठ वरुण की होती है। १७

यह ब्राह्मण ५ और अध्याय २ समाप्त हुआ।

अध्याय ३, ब्राह्मण १

१७. रत्न-हवि इष्टि (राजा के ११ रत्नों के ११ यज्ञ)

६ वें दिन यजमान राजा अरणियों में अग्नि रखकर सेनानी के घर जाकर मुख्य अग्नि के लिए ८ कपालों का पुरोडाश बनाता है क्योंकि अग्नि देवों में और सेनानी सेना में मुख्य है। यह इसका एक रत्न है उसके लिए ही इससे यज्ञ करता और अपने को आक्रमण-रहित करता है। उसकी दक्षिणा सोना है। यज्ञ आग्नेय, अग्नि का वीर्य सोना, अतः वह दक्षिणा है। १

अगले दशम दिन पुरोहित के घर जाकर बृहस्पति का चरु बनाता है जो देवों का पुरोहित है, यह इसका एक रत्न है उसके लिए इससे यज्ञ कर अपने को आक्रमण-रहित करता है। उसकी दक्षिणा नीली पीठ का बैल है। ऊपर बृहस्पति की दिशा और अर्यमा का पथ है इसलिए शितिपृष्ठ बृहस्पति-यज्ञ की दक्षिणा है। २

अब ११ वें दिन सहायक क्षत्रिय के घर में इन्द्र का ११ कपालों का पुरोडाश बनाता है। सहायक क्षत्रिय इन्द्र, अतः उसके यज्ञ की दक्षिणा ऋषभ है। ३

अब बारहवें दिन महिषी के घर जाकर अदिति-चरु बनाता है। यह पृथिवी अदिति, देव-पत्नी इसकी पत्नी, अतः आदित्य यज्ञ है। महिषी एक रत्न, उसके साथ यज्ञ, उसे अनुकूल बनाता है। दक्षिणा गौ, तद्वत् यह सब मनुष्य-कामनाएँ दुहाती, गौ माता, माता के समान मनुष्य पालती, अतः गौ दक्षिणा है। ४

अगले १५ वें दिन तीसरे रत्न सूत के घर जाकर वारुण जौ-चरु बनाता है, सूत यज्ञ है जो देवों का वरुण, और इसका एक रत्न; अतः इसके साथ यज्ञ कर अपना सहायक बनाता है, इसकी दक्षिणा अश्व, जो वारुण है। ५

अगले १४ वें दिन ग्रामणी (गाँव-मुखिया) के घर जाकर मारुत ७ कपालों का पुरोडाश बनाता है, विश मरुत, ग्रामणी वैश्य' अतः मारुत और इसका छठा रत्न, अतः इसके साथ यज्ञ कर अपने से दूर न जाने वाला बनाता है। चितकबरा बैल दक्षिणा है। इसके रूपों के बहुत मिलते हैं। विश मरुत बहुत, अतः चितकबरा बैल दक्षिणा है। ६

अगले १५ वें दिन ७ वें रत्न दाता के घर जाकर सविता के १२ या १८ कपालीय पुरोडाश बना उसके साथ यज्ञ रचके अपना साथी बनाता, जो सविता देव-प्रसविता, वैसा दाता (नाई), उसकी दक्षिणा भूरा लाल बैल; जैसा वर्ण में सूर्य उदयास्त के समय होता है। अतः श्येत बैल दक्षिणा है। ७

अगले १६ वें दिन ८वें रत्न संग्रहीता के घर अश्विनों का द्विकपाल पुरोडाश बनाता है ये और वामस्थ-सारथि सयोनि हैं क्योंकि समान रथमें बैठते हैं। दक्षिणा दो यम या आगे-पीछे पैदा बैल हैं। ८

अगले १७वें दिन ९वें रत्न भागदुघ के घर जाकर पूषा का चरु बनाता है; जो देवों का है, यह इस की दक्षिणा काला बैल है जैसा कि त्रिषंयुक्त (५-३-५-८, पृष्ठ ४४३) में बताया है। ९

अगले १८वें दिन दशम रत्न अक्षावाप (क्रीडाध्यक्ष) और गोविकर्त (चरवाहा-भूमि-विभाजक) के घरों से खोया आदि लेकर रुद्र का चरु बनाता है। रुद्र अग्नि, अक्ष धङ्गारे हैं, इस (गौ) को समूह में गति देते, अनुमता घरों में ले जायी जाती है। उसकी दक्षिणा द्विरूप बैल है, नीली बाहु या पूँछ। १०

अगले १९वें दिन ११वें रत्न पालागल के घर जाकर चतुर्गृहीत घी लेकर मार्ग में आहुति देता है— जुषाणो अध्वा आज्यस्य वेतु स्वाहा। दक्षिणा उदणवेष्टित धनुष बाण-युक्त, लाल पगड़ी। ११

ये ११ रत्न हैं, ११ ही अक्षरोंवाली त्रिष्टुप् वीर्य है। इन्हें वीर बना, साथमें यज्ञ कर राजा होता है। १२

१२५१ यदस्य हृतं विहृतं यत् पराभृतमात्मनो जग्धं यतमत्र पिशाचैः ।
तदग्ने विद्वान् पुनरा भर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः ॥ ५

५२ आमे सुपक्वे शबले विपक्वे यो मा पिशाचो अशने ददम्भ ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोऽयमस्तु ॥ ६

५३ क्षीरे मा मन्थे यतमो ददम्भाकृष्टपच्ये अशने धान्ये यः । तदा०(पूर्ववत्) ७ ॥

५४ अपां मा पाने यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् । तदा०॥ ८

५५ दिवा मा नक्तं यतमो ददम्भ० (शेष ८ के समान) ॥ ९

५६ क्रव्यादमग्ने रुधिरं पिशाचं मनोहनं जहि जातवेदः ।
तमिन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तु छिनत्तु सोमः शिरो अस्य धृष्णुः ॥ १०

५७ सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ॥
सहमूराननु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥ ११

५८.समाहर जातवेदो यद्धृतं यत्पराभृतम्।गात्राण्यस्य वर्धन्तामंशुरिवा प्यायतामयम् ॥१२

५९ सोमस्येव जातवेदो अंशुराप्यायतामयम्। अग्ने विरप्शिनं मेध्यमयक्ष्मं कृणु जीवतु॥१३

६० एतास्ते अग्ने समिधः पिशाचजम्भनीः। तास्त्वं जुषस्व प्रति चैना गृहाण जातवेदः ॥१४

६१ तार्ष्टाघीरग्ने समिधः प्रतिगृह्णाह्यर्चिषा । जहातु क्रव्याद्रूपं यो अस्य मांसं जिहीर्षति १५

१२४७. हे अग्नि(विद्वान्) ! आप पहले से ही योग्य बनकर कार्य का भार उठायें, जैसे यह कार्य किया जाता हो उसे जानें। आप वैद्य और औषधियां बताने वाले हों। आप की सहायता से हम गौ, अश्व और पुरुषों को स्वस्थ, नीरोग, अवस्था में प्राप्त करें । १

४८. हे उत्पन्न पदार्थों के जानने वाले वैद्य, आप सब विद्वानों के साथ सम्मति कर ऐसा आचरण करें कि जिससे जो (रोग) हमें सताता और खा जाता है उसकी सीमा, घेरा टूट जाये । २

४९.जिस प्रकार भी रोग का घेरा टूट जाये उस प्रकार दिव्य शक्तियां (जल, औषधि, वायु आदि) की सहायता से विद्वान् वैद्य कार्य करे । ३

५०. हे श्रेष्ठ वैद्य! आप जो मांस भक्षक रोग-कृमि रोगी को खा जाता है उसकी आंखों को छेद डालिये, हृदय को बेध डालिये, जीभ काट दीजिये, दांत तोड़ डालिये और इसको नाश कर दीजिये। ४

५१. हे विद्वान् (वैद्य), मांस-भक्षी कृमियों ने रोगी-शरीर का जो भाग हर लिया, छीन लिया, लूट लिया हो और खा लिया हो उसे फिर भर दीजिये तथा शरीर में मांस और प्राण-शक्ति फिर भर दीजिये । ५

५२ जो मांस-भोजी कृमि कच्चे, पके, अर्धपक्व ,विशेष पके भोजन में घुसकर मुझे हानि पहुंचाता है वह और अपनी सन्तानों के साथ सब मांसभोजी कृमि हटाये जायें और यह नीरोग हो जाये। ६

१२५३. जो कृमि दूध में, मठे में, जंगली अनाज तथा भोजन में प्रविष्ट होकर मुझे हानि पहुँचाता है वह नष्ट हो जाये । ७

५४. जो मासभक्षक क्रिमि जल पीते और यात्रियों के बिछोने पर सोते हुए मुझे हानि पहुंचाता है वह नष्ट हो जाये । ८

५५. यातना देनेवाले क्रिमियों में जो भी कच्चा मांस खानेवाला मच्छर, खटमल तथा रोगकीट अथवा पिशाच दिन-रात जागते-सोते रोगी को सताता हो उसी के सम जाति के अंश से ये रोग नष्ट किये जायें । (हाम्यो० सम चिकित्सा का सिद्धान्त 'समः समं शमयति', 'विषस्य विषमौषधम्')। ९

५६. हे उत्पन्न रोगों के जाननेवाले वैद्य ! तू कच्चा मांस खानेवाले, खून में जमे, मन को उन्माद-युक्त करनेवाले रोग को नष्ट कर। यज्ञ की अग्नि रोग को नष्ट करे । बलवान् विद्युत् अपनी शक्ति से और सोमलता अनुकूल होकर उस कीट का सिर काट ले । १०

५७ हे अग्नि ! तू सदा क्रिमि नष्ट कर, राक्षस तुझे युद्धों में न जीत सकें, मांस-भक्षियों को समूल जला; तेरी दिव्य शक्ति से वे बचने न पायें । ११

५८ हे अग्नि ! इसका हृत-नष्ट बल ला, इसके अङ्ग बढ़ें, यह अङ्कुर-समान बढ़ । १२

५९ हे वैद्य ! यह चन्द्र-रश्मि समान बढ़े, इसे निर्दोष-पवित्र-नीरोग बना, यह जिए । १३

६० हे अग्नि ! ये तेरी समिधा पिशाच-नाशी हैं। तू इन्हें ले और स्वीकार । १४

६१ हे वैद्य ! तू तृणहर क्रियाएँ प्रतिष्ठासहित ले; क्रिमि वह रूप छोड़दे जो मांस खाना चाहता है।१५

सूक्त ३० । आत्मा । १७ मन्त्र (१२६२-७८) आरोग्य-प्राप्ति

१२६२ आवतस्त आवतः परावतस्त आवतः ।
इहैव भव मानुगा मा पूर्वाननु गाः पितृनसुं बध्नामि ते दृढम् ॥ १

६३ यत्त्वाभिचेरुः पुरुषः स्वो यदरणो जनः । उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥ २

६४ यद् दुद्रोहिथ शेपिषे स्त्रियै पुंसे अचित्त्या । उन्मो० (पूर्ववत्) ॥ ३

६६५ यदेनसो मातृकृताच्छेषे पितृकृताच्च यत् । उन्मो० ,, ॥ ४

६६. यत्ते माता यत्ते पिता जामिर्भ्राता च सर्जतः, प्रत्यक्सेवस्व भेषजं जरदष्टिं कृणोमि त्वा॥५

६७ इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह । दूतौ यमस्य मानु गाः अधि जीवपुरा इहि ॥ ६

६८ अनुहूतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः । आरोहणमाक्रमणं जीवतोजीवतोऽयनम् ॥ ७

६९ मा बिभेर्न मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा निरवोचमहं यक्ष्ममङ्गेभ्योऽङ्गज्वरन्तव ॥ ८

७० अङ्गभेदो अङ्गज्वरो यश्च ते हृदयामयः, यक्ष्मः श्येन इव प्रापप्तद् वाचः साढःपरस्तराम् ॥९

७१ ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः, तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवानक्तं च जागृताम्॥१०

७२ अयमग्निरुपसद्य इह सूर्य उदेतु ते । उदेहि मृत्योर्गम्भीरात् कृष्णाच्चित्तमसस्परि ॥११

१२७३ नमो यमाय नमो अस्तु मृत्यवे नमः पितृभ्य उत ये नयन्ति ।
उत्पारणस्य यो वेद तमग्निं पुरो दधे अस्मा अरिष्टतातये ॥ १२

७४ ऐतु प्राण ऐतु मन ऐतु चक्षुरथो बलम्, शरीरमस्य सं विदां तत्पद्भ्यां प्रति तिष्ठतु ॥१३

७५ प्राणेनाग्ने चक्षुषा स सृजेम समीरय तन्वा सं बलेन ।
वेत्थामृतस्य मा नु गान्मा नु भूमिगृहो भुवत् ॥ १४

७६ मा ते प्राण उपदसन्मो अपानोऽपिधायि ते । सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः॥१५

७७ इयमन्तर्वदति जिह्वा बद्धा पनिष्पदा । त्वया यक्ष्मं निरवोचं शतं रोपीश्च तक्मनः ॥१६

७८ अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः । यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः
पुरुष जज्ञिषे । स च त्वानुह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः ॥ १७

१२६२ (हे रोगी!) तेरे निकटतम तथा दूरतम मैं प्राण दृढ़ बाँधता हूँ, यहाँ ही रह; पूर्व पितरों के पीछे मत जा। १

६३ यदि कोई अपने या पराये जन आक्रमण करें तो उससे छूटने-दूर रहने के दो उपाय बताता हूं। २

६४ जो अज्ञान में स्त्री या पुरुष से द्रोह किया तो० " " ३

६५ यदि तू माता या पिता के प्रति पाप में सोता हो तो० " " ४

६६ जो तेरे माता-पिता-बहिन-भाई औषध दें वह ठीक ले ले, मैं तुझे बुढ़ापे तक जीवन देता हूं। ५

६७ हे पुरुष ! तू पूरे मन से यहाँ बढ़, दो यम-दूतों (रोग-प्रमाद) के पीछे न जा, जीव-पुरों में रह। ६

६८ मार्गों को जानता हुआ, बुलाया तू फिर आ, जीवित के दो मार्ग हैं- आरोहण-आक्रमण। ७

६९ डर मत, मरेगा नहीं, तुझे जरा तक जीने वाला बनाता हूं, तेरे अङ्गों से यक्ष्मा-ज्वर हटा दिये। ८

७० अङ्ग-पीडा, अङ्ग-ज्वर, और जो तेरा हृदय-रोग तथा यक्ष्मा है वह वैद्य-वचन और बच औषधि से हार कर बाज के समान उड़ जाये। ९

७१ बोध-प्रतीबोध (विवेक-चेतना) दो ऋषि (मार्ग-दर्शक) हैं जो स्वप्न-रहित सदा जागते हैं, वे दो तेरे प्राण के रक्षक दिन-रात जागते रहें। १०

७२ यह अग्नि (ईश्वर-यज्ञ) सेवनीय है, यहाँ तेरा सूर्य उदय हो, काले अँधेरे-मृत्यु से ऊपर उठ। ११

७३ यम (ईश्वर), मौत तथा पितरों के लिए नमः हो जो आगे ले जाते हैं, जो पार लगाना जानता है उस अग्नि को इस (जीव) की नीरोगता-आयु के लिए सामने रखता हूँ। १२

७४ प्राण-मन-चक्षु-बल आये, इसका शरीर स्वस्थ हो, यह दोनों पैरों से उठ खड़ा हो। १३

७५ हे अग्नि (परमात्मा-यज्ञ-वैद्य)! तू रोगी को प्राण-चक्षु से युक्तकर, शरीर-बल से प्रेरित कर। तू अमृत को जानता है, यह मर न जाय, भूमि में घर बनाने वाला न हो। १४

७६ तेरे प्राण-अपान नष्ट न हों, अधिपति सूर्य तुझे रश्मियों से उठाये रक्खे। १५

७७ अन्दर बँधी थरथराती यह जिह्वा बोलती है, तेरे साथ के ज्वर यक्ष्मा की सैकड़ों पीडाएँ मैं दूर कर दूँ। १६

१२७८ यह इन्द्रियों का अपराजित संसार प्रियतम है। हे पुरुष ! जिस के लिए तू यहाँ मौत के लिए निर्दिष्ट पैदा हुआ वही संसार, और मैं भी, चिताता हूँ कि बुढ़ापे से पहले मत मर। १७

सूक्त ३१ । १२ मन्त्र १२७६ से १२९० तक । पुरुष । कृत्या

१२७९ यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्मिश्रधान्ये, आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुः पुनःप्रतिहरामि ताम्॥ १

८० यां ते चक्रुः कृकवाकावजे वा या कुरीरिणि । अव्यां ते कृ० (पूर्ववत्)॥ २

८१ यां ते चक्रुरेकशफे पशूनामुभयादति । गर्दभे ० ,, ॥ ३

८२ यां ते चक्रुरमूलायां वलगं वा नराच्याम् । क्षेत्रे ते ० ,, ॥ ४

८३ यां ते चक्रुर्गार्हपत्ये पूर्वाग्नावुत दुश्चितः । शालायां ० ,, ॥ ५

८४ यां ते चक्रुः सभायां यां चाक्रुरधिदेवने । अक्षेषु ० ,, ॥ ६

८५ यां ते चाक्रुः सेनायां यां चाक्रुरिष्वायुधे । दुन्दुभौ ० ,, ॥ ७

८६ यां ते कृत्यां कूपेऽवदधुः श्मशाने वा निचाखनुः । सद्मनि ० ,, ॥ ८

८७ यां ते चाक्रुः पुरुषास्थे अग्नौ संकसुके च याम् । म्रोकं निर्दाहं क्रव्यादं पु० ॥ ९

८८ अपथेना जभारैणां तां पथेतः प्र हिण्मसि, अधीरो मर्याधीरेभ्यः सं जभाराचित्त्या ॥ १०

८९ यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम्, चकार भद्रमस्मभ्यमभगो भगवद्भ्यः ॥ ११

९० कृत्याकृतं वलगिनं मूलिनं शपथेय्यम्, इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेनाग्निर्विध्यत्वस्तया ॥ १२

१२७९. जिस कृत्या को वे (शत्रु) कच्चे बरतन में [बम बनाकर] करें, जिसे मिले जुले अनाज में करें और जिसे कच्चे मांस में करें उसे मैं हटा दूँ, उलटाकर मिटा दूँ । १

८०. वे जिस कृत्या [घातक प्रयोग] को मुर्गा, मोर आदि पक्षियों, सींगवाले बकरे या भेड़-भेड़ीपर करें० । २

८१. वे जिस कृत्याको एक खुरवाले और दोनों ओर दाँतवाले पशुओंपर तथा गधे पर करें उसे० । ३

८२. वे दुष्ट जिस घातक क्रिया को अमूल औषधि में करते हैं, नराची ओषधि में बल घटाने का गुप्त कर्म करते हैं और जिसे वे खेत में करते हैं उसे मैं हटा दूँ, उलटा कर मिटा दूँ । ४

८३. वे जिसे गार्हपत्य और आहवनीय अग्नि में तथा यज्ञशाला में करें उसे (पूर्ववत्)० ५

८४. वे जिसे सभा में, खेल में, उपवन में और व्यवहारों में करते हैं उसे० (पूर्ववत्) ६

८५. वे शत्रु जिस हिंसा को सेना, बाण आदि शस्त्रों तथा दुन्दुभि में करें उसे ०(पूर्ववत्) ७

८६. वे जिस घातक प्रयोग को कुएँ, श्मशान में गाड़ देते हैं अथवा घर में करते हैं उसे० (पूर्ववत) ८

८७. वे जिसे मनुष्य की हड्डी में और भभकती आग में करते हैं उन चोर, मांस-भक्षक, आग लगाने वालों की इस कृत्या को मैं हटाऊँ । ९

८८. जो कृत्या को बुरे मार्ग से राष्ट्र में प्रयुक्त करता है उसे इस मार्ग से बाहर निकाल दें । वह मूर्ख मर्यादाचारी धीर पुरुषों के लिये हिंसा का प्रयोग करता है । १०

८९. जो हिंसा करने बैठे किन्तु उसे कर न सके वह अपने पैर और उँगलियों को भी तोड़ लेता है, वह अभागा हम ऐश्वर्यवानों का कल्याण ही करता है । ११

१२९०. इस हिंसक, नीच, कुटिल, गुप्त काम करनेवाले, विषैली जड़वाले, निन्दक तथा कुवक्ता को राजा कठोर दण्ड से मारे और सेनापति अस्त्र से बेध डाले । १२ ❀ प्र १२, अ ६, कण्ड ५ समाप्त ❀

❀ ओ३म् ❀

अथर्ववेद काण्ड ६ सूची.

प्रपाठक १३-१४ में ५-५, १५ में ३, सब १३ अनुवाक हैं जिनका विषय म० दयानन्दानुसार है।

अनु. सूक्त मन्त्र देवता ऋषि छन्द विषय

१ १-१० ३-३ सविता-सोम-इन्द्राग्नी-ब्रह्मणस्पति- अथर्वा-जमदग्नि गायत्र्युष्णिग्बृहती सवितादि प्रा
र्थनादि पर्जन्योऽन्न ग्रहाति इत्यादि -यज्ञादि
विश्वेदेवाः-कामात्मा-अग्नि-वायु-सूर्या शन्तांति जगत्यनुष्टुवादि पदार्थ-विद्या

२ ११-१५ ३-३ रेतः-तक्षक-मृत्यु-बलास-वनस्पति प्रजापति-गरुत्मान्- अनुष्टुप्- पुंसवन-रात्रि-
अथर्वा-बभ्रु पिङ्गलक गायत्र्यादि दिवस-मृत्यु-
१६-१७ ४-४ चन्द्रमा-गर्भ-दृढीकरण -उद्दालक-शौनक-अथर्वा ,, अनु. पृथिवी आदि
१८-२० ३-३ ईर्ष्यानाश-चन्द्रमा -यक्ष्मनाशन शन्ताति-भृग्वङ्गिरा, जगती-पंक्ति अग्न्यादि

३ २१-३१ ३-३ ब्रह्म-मरुतः-आपः-पाप्मा -यम- ,, शुनःशेप- वैरत्यगोपदेशादि-ईश्वर-प्रा-
निर्ऋति-शमी-गौ ब्रह्म -भगु-उपरिबभ्रवः र्थनादि पदार्थविद्या

४ ३२-३३ ३-३ अग्नि, इन्द्र चातन अथर्वा त्रि०ज०गा० विघ्ननाशार्थ ईश्वर-
नाटिकायन अ०उ० प्रार्थनादि-अग्न्यादि
३४ ५ ,, चातन गायत्री -अग्नीश्वरादि-
३५-३७ ३-३ ,, विश्वा. चन्द्र कौशिक अथर्वा गा०अ० राजन्यादि इन्द्र
३८ ४ बृहस्पति त्विषि ,, त्रि० यशोभयमित्रादि
३९-४१ ३-३ ,, ,, मन्त्रोक्ता चन्द्रमाआदि ,, ,, ब्रह्मा ज० अ० पदार्थ विद्या

५ ४२-५१ ३-३ मन्यु-वनस्पति दुःस्वप्न अग्नि भृग्वङ्गिरा विश्वामित्र ,, प० ,, त्रि. ईश्वर गुरु
विश्वेदेवाः सुधन्वा मन्त्रोक्त अंगिरा प्राचेतस यम गार्ग्य सखि रोगनाशकौषधेश्वर
अग्न्यश्विनौ आपः वरुण अथर्वा शन्ताति प्रार्थनायुःस्वस्तिहविर्यियुवर्णिश्वादि प०

६ ५२-६१ ३-३ मन्त्रोक्त अग्नि-सोम भागलि बृहच्छुक त्रि.अ, ईश्वराग्नि सोमेन्द्र बन्धु
रुद्र विश्वेदेवाः बृहस्पति अर्यमा ब्रह्मा शन्ताति अथर्वावृ. संवत्सरादि नमोदेवजनाः
विद्वांसः इन्द्रोदश रुद्रघातेश्वरादि प.

७ ६२ ३ रुद्र मन्त्रोक्त अथर्वा त्रि० विश्वानरेश्वर नम इत्यादि
६३ ४ निर्ऋति यम अग्नि द्रुह्वण ,, अ० अग्नि संज्ञान समानादि-
६४-७२ ३-३ सामनस्य विश्वेदेवा, चन्द्र इन्द्र कांकायन ब्रह्मा प. ,, ,, शत्रुनाश इन्द्रेश्वरस्तुति-
पराशर बृहस्पति अश्वी अघ्न्या लेपोर्कः अथर्वाङ्गिरा मूढत्वादि पदार्थ विद्या

८ ७३-७५ ३,३ सामनस्य नाना त्रिणामा इन्द्र अथर्वा कुबन्ध ,, ,, वरुणेश्वरादि० तन्वादि०
७६ ४ सान्तपन अग्नि ,, ,, पञ्चजनेत्यादि० अग्निद्ध-
७७-८२ ३-३ जातवेदाः चन्द्रमा त्वष्टा संस्थान ,, अथर्वा भग अ०गा० त्रियादि० वर्धतादित्यादि०
आदित्य मन्त्रोक्तइन्द्र सुहस्रपोषोस्त्वित्यादि० जातकर्म नामकरण
यज्ञोपवीतादि संस्कारादि पदार्थ विद्या

अनु०	सूक्त	मन्त्र	देवता	ऋषि	छन्द	विषय
९	८३-८४	४-४	मन्त्रोक्त निर्ऋति	अङ्गिरा	अ.ज.गा.त्रि.	खगोलादि होमादि पापदूरी-
	८५-९२	३	वनस्पति एकवृष ध्रुव रुद्र	अथर्वा	;;	करणार्थ प्रार्थनादि वृत्र नेत्रादि
			यक्ष्मनाशन वाजी	भृग्वंगिरा		चन्द्रेश्वरनक्षत्रादि राष्ट्ररक्षादि प:
१०	९३-१०२	३	रुद्र सरस्वती वनस्पति सोम	शन्ताति अथर्वा-	,,	यमो मृत्युरीश्वरादि श्रोत इत्यादि
			मित्रवरुण इन्द्र इन्द्रसोम	गिरा भृगुअंगिरा	प०	नैरोग्यार्थ प्रार्थनादि नक्षत्रबाहु-
			सविता वनस्पति ब्रह्मणस्पति अश्वी	अथर्वांगिरा जमद.	बृ० वि०	रीश्वरादिपदार्थ विद्या
१५ ११	१०३-१०६		इन्द्राग्नी काम दूर्वाशाल	उत्प्रशोचन उन्प्रमोचन	अ०	संदान बृहस्पतिरित्यादिसमु-
	१०७	४	विश्वजित्	शन्ताति	,,	इन्द्रादि सूर्यादि प० मेधादि प०
	१०८	५	मेधा अग्नि	शौनक	अ०	अग्न्यादि पदार्थ विद्या
	१०९-११३	३,४,३	पिप्पली अग्नि पूषा अथर्वा	कौशिक	,,	त्रि० प०
१२	११४-१२१	३,४	विश्वेदेवा: वैवस्वत अग्नि ब्रह्मा	जाटिकायन	,, ,,	देव विद्वद्विद्या विद्याप्रशंसा प.
	१२२-१२४	५-५	३विश्वकर्मा विश्वेदेवा: आप:	भृगु अथर्वा	ज० ,, ,,	अनृण पाप निवारणार्थ-
			मन्त्रोक्त		प्रा०	वैश्वानरेश्वरसुकृतलोकादि पदा०
१३	१२५-१२८	३ ४	वनस्पति दुन्दुभि चन्द्र शकधूम ,,	,, अंगिरा	वन.	सुपर्ण रोगनाशार्थादि विशल्यौ
	१२९-१३२	३,४,,५	भग इन्द्र स्मर	अथर्वांगिरा	अ.	षधिविद्या अग्निप० अनुशोकादि.
	१३-१३७	५;३	मेखला वज्र आत्मा निऋती ,,	अगस्त्य शुक्र	प. ,, गा.	मेखलाबन्धयज्ञोपवीतादि प०
	१३८-१३९	५-५	इन्द्र औषधि दम्पती	,,	पं०ज०उ०	सीमन्तोन्नयनादि पदार्थविद्या
	१४०-१४२	३	दन्त ब्रह्मणस्पति अश्वी यव वायु	विश्वामित्र	अ०	
योग ३ १६	१४२	४५४	६६	३३		
सम्पूर्णयोग १५		१७४४		९५		

षष्ठ काण्ड की सूची समाप्त हुई ।

ओ३म्

अथर्ववेद काण्ड ६

प्रपाठक १३, अनुवाक १, सूक्त १ से १० तक

महर्षि दयानन्दानुसार विषय— सवित्रादि प्रार्थनादि पर्जन्यो ब्रह्मणस्पति आदि यज्ञादि पदार्थविद्या

सूक्त १ । ऋषि अथर्वा । देवता सविता । छन्द गायत्री । स्वर षड्ज

१२६१ दोषो गाय बृहद् गाय द्युमद्धेहि । आथर्वण स्तुहि देवं सवितारम् ॥ १

६२ तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः । सत्यस्य युवानमद्रोघवाचं सुशेवम् ॥ २

६३ स घा नो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि । उभे सुष्टुती सुगातवे ॥ ३

१२६१ हे अतिशय ! तू सविता देव का गुण-वर्णन कर, रात को भी गा, बृहत् साम (ऋ ६-४६-१) गा; तेजो-युक्त आत्मा का ध्यान कर । १

९२ उसीकी स्तुति कर, जो (भव) सिन्धु, हृदय में सत्य-प्रेरक, युवा, सुखद, सुसेव्य, अद्रोहीवाक है । २

६२ वही सविता दो स्तुत्य मार्गों (सत्य-अहिंसा) पर चलने के लिए, दो सु-स्तुतियाँ (प्रातः-सायं) गाने के लिए बहुत अक्षय सुख देता है । ३

सूक्त २ । इन्द्र

६४ इन्द्राय सोममृत्विजः सुनोता च धावत । स्तोतुर्यो वचः शृणवद्धवं च मे ॥ १

६५ आ या विशन्तीन्दवो वयो न वृक्षमन्धसः । विरप्शिन् वि मृधो जहि रक्षस्विनीः ॥ २

६६ सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे । युवा जेतेशानः स पुरुष्टुतः ॥ ३

६४ हे ऋत्विजो ! इन्द्र के लिए सोम पैदा, शुद्ध करो जो स्तोतृ-वाणी और मेरी पुकार सुनता है । १

९५ हे विज्ञानी ! अन्न में पक्षीवत् जिसमें ऐश्वर्य प्रवेश होते हैं वह तू हिंसक राक्षसों का नाश कर । २

६६ सोमप वज्री इन्द्र के लिए सोम प्रस्तुत करो जो युवा-जया-प्रशंसनीय-सब का स्तुत है । ३

सूक्त ३ । मन्त्रोक्त देवता । रक्षा-प्रार्थना

१२९७ पातां न इन्द्रापूषणादितिः पान्तु मरुतः ।
अपां नपात्सिन्धवः सप्त पातन पातु नो विष्णुरुत द्यौः ॥ १

९८ पातां नो द्यावापृथिवी अभिष्टये पातु ग्रावा पातु सोमो नो अंहसः ।
पातु नो देवी सुभगा सरस्वती पात्वग्निः शिवा ये अस्य पायवः ॥ २

९९ पातां नो देवाश्विना शुभस्पती उषासानक्तोत न उरुष्यताम् ।
अपां नपादभिह्रुती गयस्य चिद्देव त्वष्टर्वर्धय सर्वतातये ॥ ३

१२९७ बिजली-वायु-पृथ्वी-मरुत्-लोकधारक अन्तरिक्ष-मेघ-सप्तसिन्धु-विष्णु-द्यौ हमें बचायें। १

९८ अभीष्ट-सिद्धि केलीए सूर्य-पृथ्वी-ग्रावा(यूरेनियम आदि पत्थर, खनिज, मेघ)-सोम हमें कष्ट से बचायें, उत्तम ऐश्वर्यशाली विद्या, अग्नि और इसके कल्याणकारी गुण हमारी रक्षा करें। २

९९.शुभ कर्म के पति अश्वी(प्राण-अपान, सूर्य-चन्द्र, माता-पिता), उषा-रात्रि हमारी रक्षा करें, जहाज, त्वष्टा (शिल्पी इंजीनियर) घर की विषम दशा में सर्व-सुखार्थ हमारी रक्षा करें। ३

सूक्त ४ । मन्त्रोक्त देवताओं से प्रार्थना

१३०० त्वष्टा मे दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रायमाणं सहः ॥ १

१३०१ अंशो भगो वरुणो मित्रो अर्यमादितिः पान्तु मरुतः ।
अप तस्य द्वेषो गमेदभिह्रुतो यावयच्छत्रुमन्तितम् ॥ २

२ धिये समश्विना प्रावतं न उरुष्या ण उरुज्मन्नप्रयुच्छन् ।
द्यौ३ष्पितर्यावय दुच्छुना या ॥ ३

१३०० जगत्-शिल्पी, सुख-वर्षक, ब्रह्माण्ड-पति ईश्वर और पुत्रों-भाइयों के साथ माता हमारे अजेय त्राणकर्ता बल की रक्षा करें। १

१३०१ प्रकाश-ऐश्वर्य-अपान-प्राण-सूर्य-पृथ्वी-वायु-सैनिक हमारी रक्षा करें, उस शत्रु का कुटिल द्वेष दूर हो। हम बन्धन में डालने वाले पास आये शत्रु को दूर भगा दें। २

२ हे अश्विओ! बुद्धि के लिए हमारी अच्छे प्रकार से रक्षा करो; हे विशाल गतियुक्त, कभी भूल न करने वाले, द्यौष्पिता(ज्यूपिटर, द्यौ के पिता) ईश्वर! आप हमें बचाइये; दुर्गति से बचाइये। ३

सूक्त ५ । इन्द्र से प्रार्थना

३ उदेनमुत्तरं नयाग्ने घृतेनाहुत । समेनं वर्चसा सृज प्रजया च बहुं कृधि ॥ १

४ इन्द्रेमं प्रतरङ्कृधि सजातानामसद् वशी । रायस्पोषेण संसृज जीवातवे जरसे नय ॥ २

५ यस्य कृण्मो हविर्गृहे तमग्ने वर्धया त्वम् । तस्मै सोमो अधिब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥ ३

१३०३ हे घी से आहुत अग्नि ! इसे उन्नत कर, तेज और प्रजा से सयुक्त कर। १
४ हे इन्द्र इसे ऊँचा बना, यह सजातीयोंका वशीकर्ता हो, धनसे पुष्ट कर, जीवनार्थ बुढ़ापे तक ले जा। २
५ जिसके घर में होम करते हैं, उसे हे अग्नि ! तू बढ़ा, उसके लिए ज्ञानी, वेद-पति उपदेश दे।

सूक्त ६। ब्रह्मणस्पति, सोम

६ योऽस्मान् ब्रह्मणस्पतेऽदेवोऽभिमन्यते। सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥१
७ यो नः सोम सुशंसिनो दुःशंस आदिदेशति, वज्रेणास्य मुखे जहि स संपिष्टो अपायति ॥२
८ यो नः सोमाभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः, अप तस्य बलं तिर महीव द्यौर्वधत्मना ॥३

हे वेदपति ! जो मूर्ख हमें अपमानित करे उसे मुझ यज्ञ-कर्ता शान्ति-इच्छुक के वश में कर। १
हे सोम ! जो दुराचारी हमें अधीन करना चाहे उसके मुख पर वज्र से मार, वह चूर-चूर हो भागे। २
हे राजन् ! जो सजातीय-नीच हमें हानि करें उनका बल वैसे ही नाश कर जैसे महान् सूर्य अँधेरे को।

सूक्त ७। सोम, देवा

९ येन सोमादितिः पथा मित्रा वा यन्त्यद्रुहः। तेना नोऽवसा गहि ॥ १
१० येन सोम साहन्त्यासुरान् रन्धयासि नः। तेना नो अधि वोचत ॥ २
११ येन देवा असुराणामोजांस्यवृणीध्वम्। तेना नः शर्म यच्छत ॥ ३

हे सोम शासक ! जिस पथ से पृथ्वी और मित्र अद्रोही होकर चलते हैं उसी रक्षाके साथ हमें मिल। १
हे बली सोम ! जिस साधन से तू हमारे असुरों को वश में करता है उसे हमें बता। २
हे देवो ! तुम जिस उपाय से असुरों के तेज को अधीन करो उसी से हमें सुख दो।

सूक्त ८। विद्या

१२ यथा वृक्षं लिबुजा समन्तं परिषस्वजे।
एवा परिष्वजस्व मां यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥१
१३ यथा सुपर्णः प्रपतन् पक्षौ निहन्ति भूम्याम्। एवा निहन्मि ते मनो यथा० (पूर्ववत्) ॥ २
१४ यथेमे द्यावापृथिवी सद्यः पर्येति सूर्यः। एवा पर्येमि ते मनो यथा० ॥ ,, ३

(हे स्त्रिया) जैसे बेल वृक्षको लिपटती है वैसे ही तू मुझे मिले, मेरी कामिनी हो, मुझसे दूर न हो। १
जैसे गिरता हुआ पक्षी भूमि पर पंख जमाता है वैसे ही तेरे लिए मन लगाता हूं मेरी० (पूर्ववत्)। २
जैसे सूर्य इस द्यौ-पृथ्वी पर शीघ्र व्याप्त हो जाता है ऐसे ही०

सूक्त ९, दम्पती

१५ वाञ्छ मे तन्वं पादौ वाञ्छाक्ष्यौ वाञ्छ सक्थ्यौ।
अक्ष्यौ वृषण्यन्त्याः केशा मां ते कामेन शुष्यन्तु ॥ १
१६ मम त्वा दोषणिश्रिषं कृणोमि हृदयश्रिषम्। यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥२
१७ यासां नाभिरारेहणं हृदि संवननं कृतम्। गावो घृतस्य मातरोऽमूं सं वानयन्तु मे ॥ ३

(हे पत्नी) तू मेरे शरीर-पैर-आँख-जङ्घा का-पोषण चाह; कामनावती तेरे नेत्र-केश मुझे न सुखायें।
तुझे मैं भुजा-हृदय-आश्रित करता हूं जिससे मेरे कर्मानुकूल रहे, मेरे चित्त में बसी रहे। २
जिसके हृदय में स्नेह-प्रशंसा-भक्ति है ऐसी पत्नी को घी की माता (दात्री) गौएँ मेरे अनुकूल करें।

सूक्त १०। यज्ञ से स्वास्थ्य-रक्षा

१३१८ पृथिव्यै श्रोत्राय वनस्पतिभ्यो ऽग्नये ऽधिपतये स्वाहा ॥ १
१९ प्राणायान्तरिक्षाय वयोभ्यो वायवेऽधिपतये स्वाहा ॥ २
२० दिवे चक्षुषे नक्षत्रेभ्यः सूर्यायाधिपतये स्वाहा ॥ ३

कान की शक्ति के लिए पृथिवी-वनस्पति-अधिपति अग्नि की उत्तम प्रशंसा और आहुति हो। १
प्राण की ,, अन्तरिक्ष-पक्षी-अधिपति वायु की ,, २
चक्षु की ,, द्यौ-नक्षत्र-अधिपति सूर्य की ,,

अनुवाक २ सूक्त ११-२०

विषय-पुंसवनादि रात्रि-दिवसादि मृत्यु-परमेश्वरादि ब्रह्मेश्वरादि
पदार्थ विद्या अग्न्यादि गर्भ-पृथिव्यादि

सूक्त ११, रेतः, पुंसवन

२१ शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसुवनं कृतम्। तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्स्त्रीष्वा भरामसि ॥१
२२ पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियामनुषिच्यते। तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्प्रजापतिरब्रवीत् ॥२
२३ प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यचीक्लृपत्। स्त्रैषूयमन्यत्र दधत् पुमांसमु दधदिह ॥ ३

शमी पर चढ़ा पीपल पुत्र-प्राप्त्यर्थ औषधि है, जिसे पति अपनी अपनी स्त्रियों में पहुँचायें। १
पुरुष में निश्चय वीर्य होता है वह स्त्री में अनुकूल सींचा जाता है तब पुत्र होता है यह प्रजापति ने कहा। २
प्रजापति ने अनुकूल मति की स्त्री का गर्भवती होना रचा है, स्त्री-पुरुष-जन्म-विधि अलग बनायी।

सूक्त १२। तक्षक। सर्प-विष-चिकित्सा

२४ परि द्यामिव सूर्योऽहीनां जनिमागमम्। रात्री जगदिवान्यद्धंसात्तेना ते वारये विषम् ॥१
२५ यद् ब्रह्मभिर्यदृषिभिर्यद्देवैर्विदितं पुरा। यद् भूतं भव्यमासन्वत्तेना ते वारये विषम् ॥ २
२६ मध्वा पृञ्चे नद्यः पर्वता गिरयो मधु। मधु परुष्णी शीपाला शमास्ने अस्तु शं हृदे ॥ ३

आकाश को सूर्य के समान, सर्प-जन्म को मैं (वैद्य) जानूँ, सूर्य से जगत् पृथक्कर्त्री रात्रिवत् विष हटाऊँ। १
ब्रह्मवेत्ता-ऋषि-देव जो भूत-भविष्य-वर्तमान पहले जानते हैं उस ज्ञान से मैं तेरा विष हटाता हूं। २
मैं मधु सींचता हूं, नदी-पर्वत-गिरि, परुष्णी-शीपाला औषधि मधु हैं, तेरे मुख-हृदय में शान्ति हो।

सूक्त १३। मृत्यु

२७ नमो देववधेभ्यो नमो राजवधेभ्यः। अथो ये विश्यानां वधास्तेभ्यो मृत्यो नमोस्तु ते ॥१
२८ नमस्ते अधिवाकाय परावाकाय ते नमः। सुमत्यै मृत्यो ते नमो दुर्मत्यै त इदं नमः ॥ २
२९ नमस्ते यातुधानेभ्यः नमस्ते भेषजेभ्यः। नमस्ते मृत्यो मूलेभ्यः ब्राह्मणेभ्य इदं नमः ॥३

हे मृत्यु ! जो देवों-राजाओं-वैद्यों के शस्त्र हैं उनके लिए नमस्कार (ठीक प्रयोग) हो । १
,, तेरे अनुकूल-प्रतिकूल वचन और सुमति-दुर्मति ,, २
,, रोगक्रिमियों-औषधियों-मूल कारणों-ब्राह्मणों (वेदों) ,, ३

सूक्त १४। बलास(क्षय) रोग

३० अस्थिस्रंसं परुःस्रंसमास्थितं हृदयामयम् । बलासं सर्वं नाशयाङ्गेष्ठा यश्च पर्वसु ॥ १
३१ निर्बलासं बलासिनः क्षिणोमि मुष्करं यथा । छिनद्म्यस्य बन्धनं मूलमुर्वार्वा इव ॥ २
३२ निर्बलासेतः प्रपताशुङ्गः शिशुको यथा । अथो इट इव हायनोपद्राह्यवीरहा ॥ ३
हड्डी-पोर ढीला करनेवाले, जमे पुराने हृदय-रोग, बलास(क्षय) सब नाश कर, जो अंग-जोड़ में हो। १
मैं क्षयी का चोर के समान क्षय हटा दूँ, इसका बन्धन ककड़ी-खरबूजा की जड़ के समान काटदूँ । २
हे बलास !शीघ्र भागते छोटे शिशुवत् यहाँ से भाग, कृश-हन्ता तू प्रतिवर्ष की घास के समान हट जा । ३

सूक्त १५ प्रजापति । उत्तम बनूं

३३ उत्तमो अस्योषधीनां तव वृक्षा उपस्तयः,उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँअभिदासति ॥१
३४ सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति, तेषां सा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः ॥ २
३५ यथा सोम ओषधीनामुत्तमो हविषां कृतः । तलाशा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः ॥ ३
तू औषधियों में उत्तम है, अन्य वृक्ष तेरे अधीन हैं, जो हमें सताये वह हमारे अधीन हो । १
जो सगा या पराया हमें सताये उनमें वृक्षों की लक्ष्मी के समान उत्तम होऊँ । २
जैसे औषधियों-हवियों में सोम उत्तम बनाया है ऐसे ही वृक्षों में तलाशा के समान उत्तम होऊँ ।

सूक्त १६ । प्रजापति । औषधि-पान

३६ आबयो अनाबयो रसस्त उग्र आबयो । आ ते करम्भमद्मसि ॥ १
३७ विहल्हो नाम ते पिता मदावती नाम ते माता । स हिन त्वमसि यस्त्वमात्मानमावयः ॥२
३८ तौविलिकेऽवेलयावायमैलब ऐलयीत् । बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्चापेहि निराल ॥ ३
३९ अलसालासि पूर्वा सिलाञ्जालास्युत्तरा । नीलागलसाला ॥ ४
हे फैलने-न फैलने वाली औषधि-लता ! तेरा रस उग्र है, हम तेरा करम्भ(सत्तू) पान करें । १
तेरे पिता-माता विहल्ह-मदावती नामक हैं ऐसी तू कलम लगाकर बनी औषध ! हमको बचा । २
हे ईश्वरी बल से पैदा औषधि ! तू प्रेरणा कर, यह प्रकृति-ईश प्रेरणा दे, हे समर्थ ! तू प्राण-धारक-साधन-सम्पन्न है, रोग से दूर रह । ३
तू आलस्य-नाशक, अणुओं तक पहुँचने वाली और घर-घर में उपयुक्त श्रेष्ठ है । ४

सूक्त १७ । पृथिवी । प्रजनन

४० यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे । एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥ १
४१ यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन् । एवा० [पूर्ववत्] ॥ २
४२ यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन् । एवा० ,, ॥ ३
४३ यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत् । एवा० ,, ४

(हे स्त्री!)जैसे यह बड़ी पृथ्वी प्राणी-गर्भ रखती है वैसे तेरा गर्भ अनुकूल प्रसव के लिए स्थिर हो। १
,, ये वनस्पतियाँ ,, २
,, पर्वत-गिरि ,,
,, विविध स्थित जगत् ,, ४

सूक्त १८ । आत्मा । ईर्ष्या दूर करना ।

४४ ईर्ष्याया ध्राजिं प्रथमां प्रथमस्या उतापराम् । अग्निं हृदय्यं शोकं तं ते निर्वापयामसि ॥ १
४५ यथा भूमिर्मृतमना मृतान्मृतमनस्तरा । यथोत मम्रुषो मन एवेर्ष्योर्मृतं मनः ॥ २
४६ अदो यत्ते हृदि श्रितं मनस्कं पतयिष्णुकम् ततस्त ईर्ष्यां मुञ्चामि निरूष्माणं दृतेरिव ॥३

(हे मनुष्य) ईर्ष्या की पहली और अगली गति, और तेरे हृदय की आग-शोक दूर करते हैं। १
जैसे भूमि मरे मनकी, मरे से भी अधिक मरे मनकी,और मरे का मन हो वैसा ईर्ष्यालु का होता है। २
यह जो तेरा हृदयस्थ मन गिरता हो तो वहाँ से तेरी ईर्ष्या,धौंकनी से श्वास के समान,निकाल दूँ।

सूक्त १९ । पवमान । पवित्रता

४७ पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया पुनन्तु विश्वा भूतानि पवमानः पुनातु मा ।१
४८ पवमानः पुनातु मा क्रत्वे दक्षाय जीवसे । अथो अरिष्टतातये ॥ २
४९ उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च । अस्मान् पुनीहि चक्षसे ॥ ३

मुझे देव जन, मननशील बुद्धि से, सब प्राणी पवित्र करें और पवमान ईश्वर पवित्र करे । १
पवमान मुझे कर्म-बल-जीवन और नीरोगता-प्राप्ति के लिए पवित्र करे । २
हे देव सविता ! पवित्र ज्ञान-कर्म दोनों से हमें शुभ देखने के लिए पवित्र कीजिए ।

सूक्त २० । तक्मा । ज्वर दूर करना

५० अग्नेरिवास्य दहत एति शुष्मिण उतेव मत्तो विलपन्नपायति ।
अन्यमस्मदिच्छतु कं चिदव्रतस्तपुर्वधाय नमो अस्तु तक्मने ॥ १
५१ नमो रुद्राय नमो अस्तु तक्मने नमो राज्ञे वरुणाय त्विषीमते ।
नमो दिवे नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः ॥ २
५२ अयं यो अभिशोचयिष्णुर्विश्वा रूपाणि हरिता कृणोषि ।
तस्मै ते अरुणाय बभ्रवे नमः कृणोमि वन्याय तक्मने ॥ ३

दाहक आग के समान ज्वर आता है और पागल के समान बड़बड़ाता हुआ उतरता है। यह अव्रती हमसे अन्य किसी कुनियमी की इच्छा करे; तपाकर बध-कर्ता के लिए नमः (वज्र-अभ्रक भस्म)है।१
रोग-नाशक वैद्य और तक्मा को नमः(वज्र-अभ्रक) हो, दीप्त जल-सूर्य-पृथिवीकी शुद्ध मिट्टी आदि औषधियों के लिए नमः (सादर उपयोग) हो। २
यह जो शोककारी है वह तू सब रूपों को हरा-पीला करता है। उस लाल-भूरे-जङ्गली तुझ तक्मा के लिए नमः (वज्र-अभ्रक भस्म औषधि) हो।

अनुवाक ३ सूक्त २१- ३१

महर्षि के अनुसार विषय— लोकविद्यादि जन्मादि नद्योषध्यादि पापत्यागोपदेशादि अग्न्यादि-वैरत्यागोपदेशादि ईश्वरप्रार्थनादि पदार्थ विद्या

सूक्त २१ । ब्रह्म । केश-रोग-औषधि

१३५३ इमा यास्तिस्रः पृथिवीस्तासां ह भूमिरुत्तमा, तासामधि त्वचो अहं भेषजंसमुजग्रभम् ।१
५४ श्रेष्ठमसि भेषजानांवसिष्ठ वीरुधानाम् ।सोमो भग इव यामेषु देवेषु वरुणो यथा ।२
५५ रेवतीरनाधृषः सिषासवः सिषासथ । उत स्थ केशदृंहणीरथो ह केशवर्धनीः ॥ ३

ये जो तीन पृथिवियाँ हैं (भूगर्भ-भूमि-भूपृष्ठ) उनमें भूमि उत्तम है उनकी त्वचा से मैं औषधि पाऊं । १
वनस्पतियों में वसिष्ठ औषधियों में श्रेष्ठ है जैसे तारों में ऐश्वर्यवाला चन्द्र और देवों में वरुण । २
समर्थ-अहितकृ-अबाधित-प्रभावी औषधियो ! सेवा करो । भाँग रा आदि केश-दृढ़करी और बर्धनी हैं ।३

सूक्त २२ मरुत । मानसून-वर्षा

५६ कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवीं व्यूदुः ॥ १
५७ पयस्वतीः कृणुथाप ओषधीः शिवा यदेजथा मरुतो रुक्मवक्षसः ।
ऊर्जं च तत्र सुमतिं च पिन्वत यत्रा नरो मरुतः सिञ्चथा मधु ॥ २
५८ उदप्रुतो मरुतस्ताँ इयर्त वृष्टिर्या विश्वा निवतस्पृणाति ।
एजाति ग्लहा कन्येव तुन्नैरुं तुन्दाना पत्येव जाया ॥ ३

आकर्षक गतियुक्त सूर्य की सुन्दर गतिशील किरणें जल लेकर द्यौ तक ऊपर चढ़ती हैं । वे जल के चर अन्तरिक्ष से लौटती और जल से पृथ्वी को सींचतीं हैं । १
सुनहरे सूर्य की धारक वायु जब कल्याणी होकर चलती है तो जल-औषधियों को रसयुक्त कर देती है मेघ-वाहक वह जहां जल सींचती है वहां अन्न-बल-सुमति से पुष्ट करती है । २
हे जल-भरी वायुओ ! तुम ऐसी वर्षा करती हो जो सब नीचे स्थानों को भर देती है । यह समुद्र तक ऐसे पहुँचती है जैसे व्यथित कन्या और दुःखी पत्नी पति के पास पहुँचती है । ३

सूक्त २३ । आपः । जल के बाँध

५९ सस्रुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च सस्रुषीः । वरेण्यक्रतुरहमपो देवीरुप ह्वये ॥ १
६० ओता आपः कर्मण्या मुञ्चन्त्वितः प्रणीतये । सद्यः कृण्वन्त्वेतवे ॥ २
६१ देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वन्तु मानुषाः । शं नो भवन्त्वप ओषधीः शिवाः ॥ ३

उत्तम-ज्ञान-कर्म-युक्त मैं लगातार दिन-रात बहती उन दिव्य जल-धाराओं को पास बुलाता हूँ । १
बाँधा हुआ, कर्म में समर्थ जल यहाँ से यन्त्र-संचालनार्थ छूटे, तत्काल जाने की क्रिया करे । २
देव सविता के संसार में मानव कर्म करें, जल-औषधियाँ हमारे लिए कल्याण-कारिणी हों । ३

सूक्त २४ । आपः । जल से हृदय-रोग दूर हो

१३६२·हिमवतः प्रस्रवन्ति सिन्धौ समह सङ्गमः,आपो ह मह्यं तद्दे वीर्ददन्हृद्द्योतभेषजम् ।।१
६३.यन्मे अक्ष्योरादिद्योत पार्ष्ण्योः प्रपदोश्च यत्, आपस्तत्सर्वं निष्करन्भिषजांसुभिषक्तमः
६४.सिन्धुपत्नीः सिन्धुराज्ञीः सर्वा या नद्य स्थन,दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुनजामहै ।।

दिव्य जल हिमके स्थानोंसे बहकर आता और सिन्धुमें सङ्गत होता है, वह मुझे हृद्रोग की औषधि दे ।१
जो मेरी आँखों-एड़ियों-पादाग्रों में जलन हो उस सब को उत्तम वैद्य-जल से दूर करे । २
सदा प्रवाह-युक्त और उसने नित्य शोभित नदियाँ हमें रोगांकी औषधि दें जिससे उन्हें प्रयुक्त करें।३

सूक्त २५ । वैद्य । कण्ठमाला

६५ पंच च याःपचाशच्च संयन्ति मन्या अभि इतस्ताःसर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ।।
६६ सप्त च याः सप्ततिश्च संयन्ति ग्रैव्या अभि । इतस्ताः० (पूर्ववत्) ।। २
६७ नव च या नवतिश्च संयन्ति स्कन्ध्या अभि । इतस्ताः ,, ।। ३

जो ५५ प्रकारकी गलेमें पीडाएँ, कण्ठमालाएँ हैं वे विकारोत्पन्न फुंसियोंके समान सब यहांसे हटें।१
जो गर्दन में होने वाली ७७ प्रकार की गण्ड-मालाएँ हैं वे सब यहाँ से नष्ट हो जाएँ । २
जो कन्धे के चारों ओर दूषित विष की ९९ प्रकार को ,, ३

सूक्त २६ । पाप्मा । पाप का त्याग

६८ अव मा पाप्मन्त्सृज वशी सन्मृडयासि नः । आ मा भद्रस्य लोके पाप्मन्धेह्यविह्रुतम् ।। १
६९ यो नः पाप्मन्न जहासि तमु त्वा जहिमो वयम्, पथामनु व्यावर्तनेऽन्य पाप्मानु पद्यताम् ।।२
७०· अन्यत्रास्मन्न्युच्यतु सहस्राक्षो अमर्त्यः । यं द्वेषाम तमृच्छतु यमु द्विष्मस्तमिज्जहि ।। ३

हे पाप ! मुझे छोड़, तू वश में आकर हमें सुखी कर; हे पाप! मुझे कल्याणमय स्थानमें सरल रहने दे।१
हे पाप ! यदि तू नही छोड़ता तो हम तुझे छोड़ते हैं, सत्य से उलटे पथ वाले अन्य को ही पाप मिले । २
मनुष्योंके अयोग्य हजारोंका क्षयकारी पाप हमसे अलग रहे, जिस दुष्टसे हम द्वेष करें उसे पहुंच,मार। ३

सूक्त २७ । विश्वेदेवाः । राजदूत, जहाज, कपोत

७१ देवाः कपोत इषितो यदिच्छन् दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम ।
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ।। १
७२ शिवः कपोत इषितो नो अस्त्वनागा देवाः शकुनो गृहं नः ।
अग्निर्हि विप्रो जुषतां हविर्नः परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु ।। २
७३ हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मानाष्ट्री पदं कृणुते अग्निधाने ।
शिवो गोभ्य उत पुरुषेभ्यो नो अस्तु मा नो देवा इह हिंसीत्कपोतः ।। ३

हे विद्वानो ! विपत्ति-नाशक; कबूतर या उसके समान सन्देश-हर राजदूत और जल का जहाज जब प्रेरित, प्रेषित या स्वेच्छासे आये तो उसका आदर, दुःख निवारण करें; यह मनुष्य-पशु को हितकर हो। १

हे देवो ! प्रेषित कपोत हितकर हो, शक्तिशाली होकर निष्पाप हो, अग्नि-चालित जल-पोत अन्न-भरा हो। पंखवाले शस्त्र (मिसाइल) हमसे दूर रहें। २

पंखवाले शस्त्र हमारा नाश न करें। शक्तिशाली सेनापति अग्नि-चालित जहाज में बैठे, हमारे पशुओं और सैनिकों का कल्याण हो। वह जल-पोत हमारी हिंसा न करे। ३

सूक्त २८। कपोत। पानी का जहाज

१३७४ ऋचा कपोतं नुदत प्रणोदमिषं मदन्तः परि गां नयामः।
संलोभयन्तो दुरिता पदानि हित्वा न ऊर्जं प्र पदात् पथिष्ठः॥ १

७५ परीमेऽग्निमर्षत परीमे गामनेषत। देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ आ दधर्षति॥ २

७६ यः प्रथमः प्रवतमाससाद बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानः।
यास्येशे द्विपदश्चतुष्पदस्तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे॥ ३

प्रतिष्ठित-शिक्षित जलपोत यात्रा पर भेजो उससे अन्न भूमि पर सब ओर हर्ष से सर्वत्र पहुँचायें, दुःखद स्थानों का नाश करें। वह बल के साथ मार्ग में आगे बढ़ता जाये। १

इसके सैनिकों ने आग्नेयास्त्र पाया, भू-भ्रमण किया, देवों में यश पाया, तब कौन हरा सकता है? २

जो पहले बहुतों को मार्ग दिखाता हुआ उच्च पद पाता, पशुओं-मनुष्यों पर शासन करता है उस सब के नियामक को मृत्यु-नाशार्थ नमस्कार हो। ३

सूक्त २९। उल्लू-कबूतर, राजदूत

७७ अमून्हेतिः पतत्रिणी न्येतु यदुलूको वदति मोघमेतत्। यद्वा कपोतः पदमग्नौ कृणोति॥ १

७८ यौ ते दूतौ निर्ऋत इदमेतोऽप्रहितौ प्रहितौ वा गृहं नः। कपोतोलूकाभ्यामपदं तदस्तु॥ २

७९ अवैरहत्यायेदमा पपत्यात् सुवीरताया इदमा ससद्यात्। पराङेव परा वद पराचीमनु संवतम्। यथा यमस्य त्वा गृहे अरसं प्रतिचाकशानाभूकं प्रतिचाकशान्॥ ३

उल्लू दूत व्यर्थ बोले या कपोत (बुद्धिमान् दूत) अधिकार जमाये तभी पंखोंवाला अस्त्र प्रयुक्त हो। १

हे विपत्ति, जो तेरे भेजे-न भेजे दो दूत आयें तो उन मूर्ख-विद्वान का आश्रय हमारा घर न हो। २

चाहे वैर-हत्यार्थ चाहें वीरता दिखाने आया हो वह दूरसे ही सन्देश कहे जिससे नियामक के घर में वह निर्बल-असमर्थ दिखाई दे। ३

सूक्त ३०। शमी धान्य

८० देवा इमं मधुना संयुतं यवं सरस्वत्यामधि मणावचर्कृषुः।
इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः॥ १

८१ यस्ते मदो अवकेशो विकेशो येनाभिहस्यं पुरुषं कृणोषि।
आरात् त्वदन्या वनानि वृक्षि त्वं शमि शतवल्शा वि रोह॥ २

८२ बृहत्पलाशे सुभगे वर्षवृद्ध ऋतावरि। मातेव पुत्रेभ्यो मृड केशेभ्यः शमि॥ ३

विद्वान् इस मधुर जौ को नदी-तट पर उत्तम भूमि में बोकर पैदा करते हैं, हल का पति सैकड़ों कर्म वाला ऐश्वर्यशाली और किसान श्रेष्ठ दानी होते हैं। १

हे शमि! जो तेरा सुखद रस विशेष केश-वर्धक है जिससे जनों को तू बड़ा हर्ष देती है। तुझसे भिन्न वृक्षों को मैं तेरे पास से हटा दूँ जिससे तू सैकड़ों शाख-युक्त होकर बढ़े। २

हे बड़े पत्तों वाले; वर्षा में बढ़े, उत्तम, सच्चे शमि! पुत्रों के लिये मातावत् तू केशों को सुख दे। ३

सूक्त ३१। सार्पराज्ञी गौ, सूर्य। पृथिवी की गति

८३ आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ १

८४ अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः। व्यख्यन्महिषः स्वः ॥ २

८५ त्रिंशद् धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत्। प्रति वस्तो रहद्युभिः ॥ ३

यह गौ (गतिशील पृथ्वी-चन्द्र आदि लोक) अन्तरिक्ष में घूमते हैं, पृथिवी स्वमाता जल और पिता सूर्य को सामने रखकर पूर्व-पूर्व को चलती और अपनी कक्षा में घूमती है। १

(यह सूक्त कुछ भेद से ऋ १०-१८९, यजु ३-६-८, साम ६-१४-४-६ में भी आया है।)

इस सूर्य-अग्नि की ऊपर जाती-नीचे आती रोचक ज्योति जगत्के अन्दर संचार करती है, महान् सूर्य द्यौ को प्रकाशित करता है। २

सूर्य-अग्नि दिन-रात के, तीस मुहूर्तों और अन्त०-अग्नि-सूर्य छोड़ कर तीस देवताओं में विराजते हैं, प्रतिदिन दिन-रात की किरणों के साथ वाणी सूर्य के आश्रय में है। ३

अनुवाक ४, सू० ३२ से ४१ तक

महर्षि दयानन्दानुसार विषय- विघ्ननाशार्थेश्वर प्रार्थनादि अग्न्यादि अग्नीश्वरादि राजन्यादि इन्द्र यशोमित्रादि पदार्थविद्या

सूक्त ३२। ऋषि चातन, अथर्वा। देवता अग्नि-रुद्र- मित्रा०। होम। छन्द त्रि०पं०। स्वर धै०प०

८६ अन्तर्दावे जुहुता स्वे तद् यातुधानक्षयणं घृतेन।
आराद् रक्षांसि प्रति दह त्वमग्ने न नो गृहाणामुप तीतपासि ॥ १

८७ रुद्रो वो ग्रीवा अशरैत् पिशाचाः पृष्टीर्वो अपि शृणातु यातुधानाः।
वीरुद् वो विश्वतोवीर्या यमेन समजीगमत् ॥ २

८८ अभयं मित्रावरुणाविहास्तु नो अर्चिषात्त्रिणो नुदतं प्रतीचः।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ॥ ३

हे मनुष्यो! भीतरी ताप में इस क्रिमि-नाशक हवि का घी के साथ अच्छे प्रकार से होम करो हे अग्नि! तू दूर-समीप के राक्षसों (क्रिमियों) को जला, हमारे घरों को सन्तप्त न कर। १

हे यातनाकारी पिशाचो (मांस-भक्षी क्रिमियों)! रुद्र (अग्नि-वैद्य) तुम्हारी गर्दनों-पसलियोंको तोड़ दे विश्वतोवीर्या (सब ओर से शक्तिशाली) औषधि तुम्हें यम-नियम से संगत करे। २

हे मित्र-वरुण (प्राण-अपान, सूर्य-चन्द्र, दिन-रात, माता-पिता, अध्यापक-उपदेशक, राष्ट्र-सेनापति, हाइड्रोजन-आक्सीजन)! यहाँ हमारे लिये अभय हो, भक्षकों को तेज से पीछे दूर हटाओ, वे ज्ञानी के पास न रहें, परस्पर नाश करते हुए मृत्यु को प्राप्त हों। ३

अर्थभेद में स्वरभेद कारण है । परन्तु यह अर्थ भी हो सकता है कि जब स्वर विचारित अर्थानुरूप न हो तो स्वर का व्यत्यय कर ले । म० दया० के अनेक अर्थ स्वर-अनुकूल प्रतीत नहीं होते ।

१०- यु०मी०ने साहित्यशास्त्रियों के कथन कि स्वर वेद में विशेष प्रतीति-हेतु है, की ओर भी निर्देश किया है । परन्तु कोई विवेचन उन्होंने नहीं किया । यह इन्द्र-शत्रु पर आधारित अर्थवाद है । वेद देव का काव्य होने से अन्य काव्यों के तुल्य यहाँ भी स्वर का अवकाश नहीं मानना चाहिए ।

११- यु० मी० ने लिखा कि कई अनुवादक स्वर न जानने से संज्ञा-क्रिया में भेद नहीं कर पाये । परन्तु उदाहरण नहीं दिये । यदि अर्थ सङ्गत है तो उसकी योजना मान्य होगी । सम्बोधन-पद-प्रयोग शैलीमात्र का अर्थ प्रथमादि में अभीष्ट, जैसा ऋ १०-७१-१ में है । निरुक्त ७.१-३ के अनुसार ऋचा का अभिधेय भी प्रथमपुरुषान्त अभिप्रेत है । स. यानन्द-भाष्य में यह सुस्पष्ट उभरा है । ऋ के पुनरुक्त मन्त्रों में सम्बोधन के स्थान पर प्रथमा-द्वितीया-षष्ठ्यन्त पद मिलते हैं । समासों के स्वर भी निर्विवाद नहीं । पाणिनि ने अनेक अपवाद दिये हैं । (मेरे लेख के अप्रकाशित परिशिष्ट)

१२- श्री यु० मी० स्वरानुसार नूतन भाष्य करें, जब करने लगेंगे तब समझ पायेंगे कि स्वर कोई नियामक नहीं माना जा सकता और आर्य विद्वानों एवं श्री भगवदाचार्य आदि की वेदार्थ में स्वर की अनुपयोगिता की मान्यता ससार है । तथा अंकित वे सर्वत्र अर्थानुसारी एवं वेद-समृद्धि-प्रकाशक नहीं हैं । यह अंकन अर्थ करने की एक पद्धति भी रही हो सकती है क्योंकि एकाधिक पद्धतियों के संकेत पाणिनीय नियमों में मिलते हैं । (मेरा लेख अनुच्छेद २)

कृपया वे यास्क के सब निर्वचनों और ब्राह्मण-वाक्यों की सङ्गति भी बैठाएँ कि किसमें धात्वर्थ प्रधान और किसमें प्रत्ययार्थ, और वे उन अर्थों के पोषक हैं । यह भी इङ्गित करें कि विसंगति आने पर व्यत्यय माना जाये या अर्थ त्यागा जाये । अनेक निर्वचन एकाक्षरा भाषा के अनुरूप हैं इनमें क्या होगा ?अपरञ्च चीनी आदि एकाक्षरा भाषाओं के स्वरों से इनका कोई साम्य या सम्बन्ध है या नहीं ?

दयानन्द-भाष्य में जहाँ अर्थ स्वर के अनुरूप नहीं वहाँ क्या उसे अप्रामाणिक-हेय माना जाये ? यदि नहीं तो संगति कैसे बिठाई जाएगी ? इसका सोदाहरण विवेचन परम अपेक्षित है ।

ॐ❀ॐ

सम्पादकीय-

वेद का अनर्थ (१७)

वेद में इन्द्र-वृत्र-विष्णु की कथा नहीं

अगस्त ९० के वेद-प्रदीप में स्वा. गङ्गेश्वरानन्द ने ऋ ८-१००-१२ में कथा बताई है कि इन्द्र ने विष्णु-साहाय्य से वृत्र-बध किया । पर वेद में इसका कहीं कुछ वर्णन नहीं, आदि-सृष्टि के वेदमें हो भी नहीं सकती । यहाँ इन्द्र बिजली, विष्णु सूर्य, वृत्र मेघ है । मन्त्र यह है-

सखे विष्णो वितरं विक्रमस्व द्यौर्देहि लोकं वज्राय विष्कभे ।
हनाव वृत्रं रिणचाव सिन्धूनिन्द्रस्य यन्तु प्रसवे विसृष्टाः ॥

मानवीकरण अलंकार है । बिजली-कथन- हे सखे सूर्य ! तू बहुत विक्रम कर,हे द्यौ ! तू वज्र के लिए अवकाश दे, हम मेघको छिन्न-भिन्न करें, नदियाँ बहने दें, वे मेरी प्रेरणा से विशेष गति से जायँ ॥❀

— श्रीमन् ! नमस्ते, आपका वर्ष ८-९० को पूर्ण हो चुका है, कृपया वार्षिक शुल्क शीघ्र भेजें। उसके मिलने पर ही अगला अंक भेजा जायेगा। अंकों को सँभाल कर रखिये, फिर न मिल सकेंगे। सभी सदस्य, विशेषतः आजीवन संरक्षक अथर्ववेद के प्रकाशन में कृपया आर्थिक सहायता दें।

समाचार

—विश्व वेद परिषद् की द्विवार्षिक सभा (चुनाव) लखनऊ में दशहरा २९-९-९० को होगी, सभी आयें।
—श्री क्षितीश वेदालंकार दिल्ली को गोवर्धन शास्त्री-पुरस्कार १०००) मिला, बधाई !
—दिसम्बर १९९० में अन्तर्राष्ट्रीय आर्य सम्मेलन दिल्ली और नैरोबी में होगा।
—स्वामी श्रद्धानन्द का भव्य स्मारक आ. प्रादेशिक प्र० सभा दिल्ली शीघ्र बनाये; —आ०म० नया बाँस।
—चण्डीगढ़ में गुरुदत्त विद्यार्थी-शताब्दी ६-७ अक्तूबर ९० को मनाई जायेगी।
—पंजाब-कश्मीर में अशान्ति जारी; नये राज्यपाल क्रमशः सर्व श्री वीरेन्द्र वर्मा-गिरीशचन्द्र सक्सेना बने। कश्मीर में राष्ट्रपति-शासन लागू हुआ।
—प्रधान मन्त्री श्री वी०पी० सिंह ने, श्री ओम्प्रकाश चौटाला के त्यागपत्र दे देने पर, अपना त्यागपत्र वापस लेकर रूस की सफल यात्रा की।
—शोक है कि सर्वश्री पी०डी० चौ० फीरोजपुर (२६-५-९०), विश्वम्भरप्रसाद शर्मा भोपाल (१९-५-९०) अमरनाथप्रेमी पंजाब (२९-६-९०), देवरहा बाबा, शकुन्तला, शान्तिदेवी आर्या दिल्ली की मृत्यु हो गई।

अष्टाध्यायी, शतपथ, निरुक्त,

अनुवादक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम. ए. काव्यतीर्थ

साम संहितोपनिषद् ब्राह्मण १०), दैवताध्याय १०), शतपथ काण्ड १-२, २०), वेदार्थपारिजात खण्डन २०) सामवंश ब्राह्मण ..., अष्टाध्यायी २०), शतपथ काण्ड ३-४, २०), निरुक्त ३०) अथर्ववेद १००) मंगाइये,
—वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, उपाध्यक्ष, ओजोमित्र शास्त्री मन्त्री, विश्ववेदपरिषद्. सी ८१७ महानगर लखनऊ

वैदिक दैनन्दिनी आश्विन २०४७ विक्रम

तिथि कृ १ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ शु १ २ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ पू
वार गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु गु श र सो मं बु गु शु श र
नक्षत्र पू उ अ भ कृ रो मृ आ पु न पु श्ले म पू उ ह चि स्वा वि अनु अनु ज्ये मू पू उ श्र ध भ श पू उ
ता. सि. ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ अ १ २ ३ ४

प्रेषक— मुद्रक आदर्श प्रेस, सी ८१७, महानगर, लखनऊ, उ०प्र०, भारत, पिन २२६००६

सेवा में क्रमांक　　श्री लाइब्रेरियन
स्थान　　पत्रालय
जनपद　　प्रदेश　　पिन　गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार)

ऋग्वेद ओ३म् यजुर्वेद

वर्ष १४ अंक ९

आश्विन २०४७ सितम्बर १९९०

उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार

वर्ष १४ अङ्क ९ आश्विन- (शुक्र-) संवत् २०४७ वि०, प० गुरुदत्त विद्यार्थी शताब्दी
वेद-मानव-सृष्टि-संवत् १ ९६ ०८ ५३ ०९१, दयानन्दाब्द १६६
शुल्क वार्षिक ३०), आजीवन ३००), विदेश में २५ पौंड, ५० डालर

सम्पादक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती शास्त्री एम. ए. काव्यतीर्थ, उपाध्यक्ष विश्व वेद परिषद्
सहायक—विमला शास्त्री, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष ७३५०१
दिल्ली कार्यालय-श्री —जयकुमार, मन्त्री, बी६ हिल व्यू, वसन्तविहार, नयी दिल्ली ५७ दूर० ६०१४५२

महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी

जयन्ती २ अक्टूबर १९९०
जन्म २-१०-१८६९, बलि० ३०-१-१९४७

महर्षि दयानन्द सरस्वती

निर्वाण-दिवस दीपावली १८-१०-९०
जन्म फाल्गुन १८८१ फरवरी १८२४, मृत्यु ३०-१०-१८८३ ई

सामवेद अथर्ववेद

सत्यार्थ प्रकाश—मन्त्र-व्याख्या

क्रमांक ५६। ऋषि- नारायण। देवता -ईशान छन्द अनुष्टप्। स्वर गान्धार।

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ [यजु ३१-२]

हे मनुष्यो! जो सबमें पूर्ण पुरुष, और जो नाश-रहित कारण और जीव का स्वामी, जो पृथिव्यादि जड़ और जीव से अतिरिक्त है, वही पुरुष सब भूत भविष्यत् और वर्तमानस्थ जगत को बनाने वाला है ॥ —समुल्लास ८ में महर्षि दयानन्द सरस्वती

सम्पादकीय-

वेदका अनर्थ (१८) वेदमें कण्व-प्रगाथ, त्रसदस्यु-सोभरि की कथा नहीं

मार्च-अप्रैल ९० के वेद-प्रदीप में स्वा. गङ्गेश्वरानन्द ने ऋ ८-१९, और ६२ म कथा बताई है कि सौभरि ने ५०वधुओं से विवाहकिया, कण्व ने प्रगाथ को पुत्र बनाया। वेदमें इसका कहीं कुछ वर्णन नहीं, आदि-सृष्टि के वेद में हो भी नहीं सकता। यहाँ त्रसदस्यु का अर्थ ईश्वर और राजा है। मन्त्र ये हैं-

अदान्मे पौरुकुत्स्यः पञ्चाशतं त्रसदस्युर्वधूनाम्। मंहिष्ठो अर्यः सत्पतिः ॥ (ऋ ८.१९.३६)

प० आर्यमुनि और जयदेव शर्मा का अर्थ— दाता-स्वामी-सज्जन पति बहुत बली, दुष्ट-भय-कारी (ईश्वर और राजा) मुझ जीव-पुरुष के लिए ५०, १०५ या ५००, बहुत सी वधुएँ (गाएँ-घोड़ियाँ-भेड़-बकरियाँ-हथिनियाँ-गधियाँ-कुत्तियाँ -बिल्लियाँ-सेनाएँ)और पारिवारिक स्त्रियाँ माता-ताई-चाची-दादी-बुआ-मौसी-नानी-बहिनें-पुत्रियाँ और उनके साथ एक पत्नी तथा दासियाँ) आदि देता है। 'वधू' से पत्नी अर्थ लेना सायण की भूल है जिसे सत्य मानकर कहानी लिखना वेद का अनर्थ है। एक राजा की ५० कन्याएँ और उनका एक गरीब ऋषि से विवाह द मन्त्र में कहीं नहीं लिखा।

द्वितीय कथा का तो मन्त्र में जरा सा भी संकेत नहीं। घोर के पुत्र कण्व ने थके हुए छोटे भाई प्रगाथ को भाभी के पास सोया देख, क्रुद्ध हो लात मारी, फिर पत्नी के समझाने पर लज्जित होकर क्षमा माँगी और पश्चात् पुत्रवत् पाला अतः वह घोर 'काण्व' बना। पर वेद में यह कुछ नहीं—

सत्यमिद्वा उ तं वयमिन्द्रं स्तवाम नानृतम्। महाँ असुन्वतो वधो भूरि ज्योतींषि सुन्वतः भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ (ऋग्वेद मण्डल ८, सूक्त ६२, मन्त्र १२)। प्रगाथ इसके केवल द्रष्टा हैं।

अर्थ— हम सत्य ही ईश्वर-स्तुति बताते हैं- असत्यवादी का वध और सत्यवादी के लिए ज्योति है।

साहित्य-समीक्षा

जीवात्मा— लेखक श्री इन्द्रसिंह पमार, प्रकाशक- श्रीमती महादेवी धर्मार्थ न्यास, २८ यू० बी० जवाहरनगर, दिल्ली ११०००७। मूल्य ४०) रुपये। पुस्तक तर्क-पूर्ण, पठनीय एवं संग्रहणीय है।

—वीरेन्द्र सरस्वती

वेदज्योति (अथर्व वेद)-में मैंने आपका हिन्दी में सीधा और सरल अनुवाद देखा। जो शब्दार्थ जानने के झंझट में न पड़कर केवल मन्त्रों का सीधा अर्थ जानना चाहते हैं उनके लिए यह अनुवाद उपयोगी रहेगा। कहीं कहीं मन्त्रों के आशय की व्याख्या रूप में कुछ अधिक स्पष्ट भी कर दिया है वह भी अच्छा है। ऋषि दयानन्द ने चतुर्वेद विषय सूची में अथर्ववेद के मन्त्रों के जो विषय लिखे हैं अपने अनुवाद में उस को भी आपने लिख दिया है और अपना अनुवाद तदनुरूप ही करने का प्रयत्न किया है यह और भी अच्छा है।

मङ्गलाभिलाषी— प्रियव्रत वेदवाचस्पति ज्वालापुर

अब अगले (२०वें) दिन परिवृत्ती के घर जाकर निर्ऋति का चरु बनाता है, परिवृत्ती अपुत्री पत्नी है। काले धानों का नखों से छीलकर निकाले चावलों से वह नैर्ऋति चरु बनाकर आहुति देता है–

एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व-स्वाहा। (यजु ९-३५)

[हे निर्ऋति! यह तेरा भाग है उसे सेवन कर, यह सुवचन-आहुति है]

अपुत्रा पत्नी दुःख-पीड़ित होती है, उसके इस दुःखमय रूप को वह शमन करता है। तब इस राजसूय-कर्ता को दुःख नहीं होता। उसकी दक्षिणा काली परिमूर्णी छोड़ी हुई गौ है, वह भी कष्ट-पीडित होती है। उसे कहते हैं कि आज वह मेरे क्षेत्र में रही। उसका पाप दूर हटाता है। १३

शतपथ कांड५, अध्याय३, ब्राह्मण२, (राजसूय यज्ञ)

२१ वें दिन २९ वाँ सोम-रुद्र क याग

रत्नों के पश्चात् सोम-रुद्र का याग करता है, इसका चरु सफेद, सफेद बछिया वाली गौ के दूध में पकता है। १

आसुर राहु ने सूर्य को अँधेरे से बीध दिया। अतः नहीं चमका, सोम-रुद्र ने यह अँधेरा दूर किया, वह निष्पाप हो जाता है, ऐसे ही वह अयज्ञियों से यह यज्ञ करा या शूद्रों को इस में सम्मिलित कर तम में घुसता या तम इसमें घुसता उसे सोम-रुद्र दूर हटाते हैं। तब निष्पाप होकर दीक्षा लेता है। इसकी दक्षिणा भी सफेद, सफेद बछिया वाली गौ हैं। २

वह यह यज्ञ भी करे जो विद्वान् यश के योग्य होकर भी यशस्वी नहीं होता वह अन्धकार से घिर जाता है जिसे ये दोनों दूर करते हैं; वह निष्पाप होकर श्री-यश से ज्योति ही होजाता है। ३

अब (३० वें यज्ञ) मैत्रा-बार्हस्पत्य के लिए चरु बनाता है। वह यज्ञ-पथ से हट जाता है जो अयज्ञिय से यज्ञ कराता या ऐसे शूद्रों को यज्ञ से मिलाता है। मित्र-बृहस्पति यज्ञपथ, निश्चय से ब्रह्म मित्र-यज्ञ-बृहस्पति है। वह फिर यज्ञपथ पर आता और दीक्षा लेता है अतः यह चरु बनाता है। ४

उसका घेरा टूटकर गिरी पीपल की शाखा पूरब-उत्तर में रखकर मित्र का पात्र बनाता है। ये मैत्री, फरसे की कटी वरुण की (निन्दनीय) हैं अतः गिरी शाखा से मैत्र-पात्र बनाता है। ५

अब दधि मथ मथ कर छींके पर लटका कर रथ पर चढ़कर पकने रख देता है। स्वयं बना मक्खन आज्य मैत्र, मथकर निकाला वरुण्य है। ६

चावल दो प्रकार के होजाते हैं– छोटे-टूटे बार्हस्पत्य, और बड़े साबित मैत्र मित्र किसी को नहीं मारता, न मित्र को कोई मारता। न कुश-काँटा छेदता, न घाव होता, मित्र सबका मित्र है। ७

अब बार्हस्पत्य चरु पकाता है। उसे मैत्र-पात्र से ढँकता है। वह आज्य लाता, चावल पकाता जो ऊष्मा से ही पक जाता है। यह मैत्र है, अग्नि से पका वरुण्य होता है। इन दोनों को लेकर कहता है-मित्र बृहस्पति के लिए बोलो। यह आश्रावण कर कहता है– इनके लिए यज्ञ करो, यह कहकर वषट् कहकर आहुति देता है। ८

ब्राह्मण ३

अग्निषोमीय नाम सोम-याग, में देवसू हवियों का अनुष्ठान

यजमान दीक्षा लेता है। वह पूर्व दिन अग्नि-षोमीय पशु (गौ) लेकर इसके घी से होम करके अग्नीषोमीय ११ कपालों का पुरोडाश बनाता है, इसके पश्चात् देवों की हवियाँ बतायी जाती हैं— १

१. सविता सत्यप्रेरक के लिए १२ या ८ कपालों का प्लाशुक (जडहन) धानों का पुरोडाश बनाता है। सविता देव-प्रेरक है, मैं वैसा होकर राजसूय करूँ, मुझे प्लाशुकों की शीघ्रता में प्रेरित कर। २

२. अग्नि गृहपति के लिए ८ कपालों का आशु (साठी) के धानों का पुरोडाश बनाता है। श्री ही गार्हपत्य में जितनी जितनी बढ़ती है उतना इसे बढ़ाती है। मुझे आशुओं के क्षेप्र में ले जा। ३

३. सोम वनस्पति के लिए सावों का चरु बनाता है। अतः इसे सोम वनस्पति ही औषधियों से पैदा करता है। सावाँ धान प्रत्यक्ष औषधि है। ४

४. बृहस्पति-वाणी के लिए नीवार का चरु बनाताहै जो इसे वाणी के लिए प्रेरणा देता है। ब्रह्म ही बृहस्पति है जो नीवारों को पकाता है। ५

५. इन्द्र ज्येष्ठ के लिए हायनों (१ वर्ष में पक्व) का चरु बनाता है अतः वही इसे ज्येष्ठता देता है। ये हायन और इन्द्र अति काल तक ठहरने वाले हैं। ६

६. अब रुद्र पशुपति के लिए गावेधुक चरु बनाता है। वही इसे पशुओं के लिए पैदा करताहै। यह देव और गवेधुक (जई) वास्तव्य हैं जिससे गावेधुक बनाता है। ७

७. मित्र सत्य के लिए नाम्बों (बिना जुते पैदा) का चरु बनाता है अतः वह इसे ब्रह्म के लिए प्रेरित करता है। जोतने पर पैदा हुए अन्न वरुण के होते हैं, ये नाम्ब मैत्र हैं। ८

८. वरुण धर्मपति के लिए जौ का चरु बनाता है अतः वही इसे धर्म का पति बनाता है यह सर्वोच्च दशा है। ऐसे को ही धर्म मिलता है। ९

९. अब अग्नि-सोम के लिए पुरोडाश तैय्यार करता है। इसके पश्चात् स्विष्टकृद् होता है। तब इन हवियों की आहुति देता है। १०

अब अध्वर्यु राजा का दाहिना बाहु पकड़ कर यजु ९-३९, ४० जपता है—

सविता त्वा सवानां सुवतामग्निर्गृहपतीनां सोमो वनस्पतीनाम्।
बृहस्पतिर्वाच इन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्यो वरुणः धर्मपतीनाम्॥

[तुझे सविता यज्ञों, अग्नि गृहपतियों, सोम वनस्पतियों, बृहस्पति वाणी में प्रेरणा दें। इन्द्र ज्येष्ठता रुद्र पशुओं, के लिए, सत्य-मित्र और वरुण प्रेरणा दें।] ११

इमं देवाः असपत्नं सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय।
इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वो ऽमी राजा सोमो ऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा॥

[हे विद्वानो! इस शत्रु-रहित राजा को बड़े क्षत्र, बड़ी ज्येष्ठता, बड़े जनों के राज्य, इन्द्र के वीर्य के लिए नियम में अच्छे प्रकार से बाँधो। अमुक पुरुष-स्त्री का पुत्र, इस प्रजा-देश का यह तुम सब और हम ब्राह्मणों का सौम्य राजा है] यह कहकर ब्राह्मण को छोड़कर यह सब इसका भोग्य करता है अतः ब्राह्मण अभोग्य सोमराजा होता है। १२

इतने ही देवता यज्ञ-स्वामी हैं अतः 'देवस्वं' नाम है, यहीं इसे प्रेरणा देते हैं, उनसे प्रेरित हो कर अगले दिन राजसूय करता है। १३

वे दो-दो नाम के हैं, जोड़े में ही शक्ति है, शक्तिशाली प्रेरक होते हैं अतः दो-दो नाम हैं।१४

अब कहता है- अग्नि स्विष्टकृत के लिए बोलो। यह दो आहुतियों के बीच किया जाता है क्यों कि यज्ञ प्रजापति है जिससे यह प्रजा पैदा हुई और आगे होगी अतः इसको बीच में ही रखता है। आश्रावण कर कहता है- अग्नि स्विष्टकृत् के लिए प्रेरण कर। यह कहकर वषट् कहकर आहुति देता है ।। १५

ब्राह्मण ४

यजमान के अभिषेक के लिए १७ जल लेना

वह जल एकत्र करता है। जल वीर्य है अतः जल का रस वीर्य ही एकत्र करता है। १ .

१-गूलर के पात्र में। अन्न ऊर्जा है, गूलर ऊर्जा है, अन्नाद्य के अवरोध के लिए। २

वह पहले सरस्वती का जल यजु १०-१ पढ़कर लेता है-

अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्नूर्जस्वती राजस्वश्चितानाः।
याभिर्मित्रावरुणावभ्यषिञ्चन् याभिरिन्द्रमनयन्नत्यरातीः ।।

[विद्वान् रसीले, ऊर्जस्वी, दीप्त, चेतनाप्रद जल लेते हैं, जिस से मित्र-वरुण अभिषेक करते हैं, और इन्द्र को शत्रुओं से पार पहुँचाते हैं] वाणी ही सरस्वती है उसीसे इसे सींचता है, यह १ जल हुआ। उसे एकत्र करता है। ३

२- अब अध्वर्यु ४ बार लिए घी को लेकर जल के पास जाता है वहाँ जो दो लहरें पशु या पुरुष पर आकर टकराती हैं उन्हें लेता है। पहले पूर्व को जानेवाली लहर को यजु १०-२ से लेता है-४

वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ।

[तू सुखवर्षक जल की राज्यदात्री लहर है, मुझे और इस के लिए राज्य दे।] ५

अब पश्चिम को टकरानेवाली लहर उसी मन्त्र से लेकर आहुति देता है-

वृषसेनो ऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृषसेनो ऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ।।

[तू सुख-वर्षक सेना वाला राष्ट्र-दाता है मुझे और इसको राज्य दे।] इससे सींचता है। जिस पशु या पुरुष पर यह उछलता है उसे शक्ति देता है अतः इसे वीर्य से ही सींचता है। यह दूसरा जल हुआ। इसे भी एकत्र करता है। ६

३-७ — यजु १०.३ से तीसरे से लेकर ७ प्रकार तक के ५ जल लेता और आहुति भी देता है-

अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहार्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहौजस्वी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहापां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देह्यपां गर्भो ऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहापां गर्भो ऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ।।

[हे जल के समान सभासदो! तुम अर्थ-दाता, ओजस्वी, परिवाही, पति और स्तुति-योग्य, हो, मुझे और इस राजा को राज्य दो।] यह कह कर बहता जल लेकर उससे सींचता है। यह ३ य जल है।

४- अब जो बहते हुए के उलटा बहता है उस जल को ओज० आदि पढ़कर लेता, अभिषेक करता है। यह जल वीर्य से उलटा बहता है, वीर्य से ही इसका अभिषेक करता है। यह चौथा जल हुआ। ८

५- अब टेढ़ा जाने वाला जल आपः० आदि पढ़कर लेकर अभिषेक करता है। यह धारा टेढ़ी से सीधी हो जाती है ऐसे ही यह अन्य राष्ट्रीय को अनुकूल कर बहुत धनी होता है, यह ५म जल है।९

६- अब नदीपति समुद्र का जल अपां पति० आदि पढ़ कर लेता और अभिषेक करता है। नदी-पति के समान इसे प्रजा-पति बनाता है। यह छठा जल एकत्र करता है। १०

७- अब गर्भ (गहराई) से अपां गर्भो सि० आदि से जल लेकर अभिषेक करता है कि यह राजा भी प्रजा के अन्दर के रहस्यों तक पहुँचे। यह ७ वाँ जल एकत्र करता है।११

८ से १७ तक जल यजु १०-४ के दस अंश पढ़ कर एकत्र करता है-

८- सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त। यह पढ़ कर बहते हुए के ठहरे हृद के जल को अत्यातप में लेकर अभिषेक करता है, मानो वर्च से नहला सूर्य की सी त्वचा कर देता है। क्योंकि बहते का ठहरा पानी वरुण्य और राजसूय वरुण-यज्ञ है। १२

९- गर्मी में बरसा जल लेकर यह पढ़कर अभिषेक कर वर्चयुक्त बनाता है-

सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त। गर्मी में बरसने वाला पानी पवित्र होता है, अप्राप्त रहता है, इसको एकत्र कर इसे पवित्र करता है। १३

१०- दशम मान्द वैशन्त जल लेकर इस मन्त्र से अभिषेक कर इसकी प्रजा को स्थिर करता है-

मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त। १४

११- अब इस मन्त्र से बारहवें कूप-जल से अभिषेक कर इसे शत्रुओं से दूर करता है-

व्रजक्षितस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त। १५

काण्ड ५ का आधा समाप्त। २३६।

१२- अब प्रुष्व वाशा (कास्य) जल लेकर मानो अन्न-आद्य से अभिषेक करता है-

वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त।

जब सूर्य-अग्नि तपते हैं तब यह सिंचाई का पानी ही अन्न-आद्य की रक्षा करता है। यह भी अन्नाद्य देता है। यह १२ वाँ जल हुआ। १६

१३- अब पानी और औषधियों के रस मधु को लेकर अभिषेक करता है, यह १३ वाँ जल है-

शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त।

१४- अब बच्चा पैदा करती गौ के उल्व के पानी (१४वें) से अभिषेक से पशु वृद्धि करता है-

शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त। १८

१५- जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त।

यह पढ़कर १५ वां जल दूध लेकर अभिषेक कर इसे मानो पशुओं से ही नहलाता है। १९

१६- विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त।

यह पढ़कर, १६ वाँ जल घी लेकर अभिषेक करता है मानो पशुओं के ही रस से नहलाता है। २०

१७- अब १७वाँ स्वराट् जल किरणें अञ्जलि से लेकर उसपर छोड़ता है, इससे आहुति नहीं-

स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त।

ये किरणें तैरती सी ऊपर-नीचे होतीं, एक दूसरी की श्री बढ़ाती इसे स्वाराज्य को ही देती हैं। २१

सूक्त ३३। बिजली

१३-८९. यस्येदमा रजो युजस्तुजे जना वनं स्वः। इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥ १
९० ना धृष आ दधृषते धृषाणो धृषितः शवः। पुरा यथा व्यथिः श्रव इन्द्रस्य नाधृषे शवः ॥२
९१ स ददातु तां रयिमुरुं पिशङ्गसन्दृशम्। इन्द्रः पतिस्तुविष्टमो जनेष्वा ॥ ३

जिसके बल में यह लोक-जन-जल-सूर्य संयुक्त हुआ उस इन्द्र की शक्ति बड़ी है। १
पराजित विजयी के बल की बराबरी नहीं कर सकता, जैसे पहले व्यथित शत्रु इन्द्र-बल नहीं दबाता ।२
जनों में सबसे महान् पति इन्द्र हमें सुवर्ण-तुल्य उस उत्तम ऐश्वर्य को प्रदान करे। ३

सूक्त ३४ अग्नि

९२ प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम्। स नः पर्षदति द्विषः ॥ १
९३ यो रक्षांसि निजूर्वत्यग्निस्तिग्मेन शोचिषा। स० (पूर्ववत्) ॥ २
९४ यः परस्याः परावतस्तिरो धन्वातिरोचते। स० ,, ॥ ३
९५ यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति। स० ,, ॥ ४
९६ यो अस्य पारे रजसः शुक्रो अग्निरजायत। स० ,, ॥ ५

(हे मनुष्य!) पृथ्वी आदि में बली सुख-वर्षक अग्नि के गुण वर्णन कर, वह हमें शत्रुओं से बचाये। १
जो अग्नि तीक्ष्ण तेज से राक्षसों (क्रिमियों) का नाश करता है वह ,, ।२
जो दूर से दूर अन्तरिक्ष को पार कर चमकता है ,, ,, ।३
जो सब भुवनों को अलग-अलग और मिले हुए भी देखता है ,, ,, ।४
जो अग्नि इस लोक के पार तक तेजरूप से प्रकट रहता है ,, ,, ।५

सूक्त ३५। वैश्वानर अग्नि (सब नर-हितकारी नेता)

९७ वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावतः। अग्निर्नः सुष्टुतीरुप ॥ १
९८ वैश्वानरो न आगमदिमं यज्ञं सजूरुप। अग्निरुक्थेष्वंहसु ॥ २
९९ वैश्वानरोऽङ्गिरसां स्तोममुक्थं च चाक्लृपत्। ऐषु द्युम्नं स्वर्यमत् ॥ ३

वैश्वानर (सब नरों का हितैषी) शासक हमारी रक्षार्थ दूर से भी आये; हमारी सु-स्तुतियाँ सुने। १
प्रीतियुक्त वैश्वानर यज्ञ-अग्नि और नेता हमारे इस यज्ञमें आये, श्रेष्ठतम कर्मों में साथ दे। २
वैश्वानर ज्ञानियों के स्तुति-वचन समर्थ-सफल करे, वह इनमें यश-अन्न-सुख देता है। ३

सूक्त ३६ वैश्वानर अग्नि (सम्राट्)

१४०० ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम्। अजस्रं घर्ममीमहे ॥ १
१ स विश्वा प्रति चाक्लृप ऋतूंरुत्सृजते वशी। यज्ञस्य वय उत्तिरन् ॥ २
२ अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य। सम्राडेको विराजति ॥ ३

हम सत्यमय, धन-ज्योति के पति वैश्वानर से निरन्तर प्रकाश माँगते हैं। १
वशीकर्ता वह सबको समर्थ, और यज्ञ के बल को बढ़ाता हुआ ऋतुओं को अनुकूल बनाता है। २
भूत-भविष्य में काम्य अग्नि दूर-दूर के धामों में भी अकेला सम्राट् होकर शोभित होता है। ३

सूक्त ३७। शपथ (शान्तिपथ) दर्शक

३ उपप्रागात्सहस्राक्षो युक्त्वा शपथो रथम्।शप्तारमन्विच्छन्मम वृकइवाविमतो गृहम्॥ १
४ परि णो वृङ्धि शपथ ह्रदमग्निरिवादहन्। शप्तारमत्र नो जहि दिवो वृक्षमिवाशनिः॥२
५ यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात्। शुने पेष्ट्रमिवावक्षामं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे॥३

हजारों दृष्टिवाला, शान्ति-पथ-दर्शक, रथ जोतकर, मेरे शप्ता को ढूँढ़ता, भेड़वाले-घर भेड़ियावत् आये।१
हे शान्तिपथ-दर्शक! तालको जलते अग्निके समान, हमें छोड़, यहाँ शप्ताको मार जैसे वृक्षको द्यौकी बिजली।
हम में जो अशप्ता या हमारे शप्ता को शाप दे उस नीचको मृत्यु के लिए फेंकता हूं जैसे कुत्तेको टुकड़ा। ३

सूक्त ३८। त्विषि। शक्ति।

६ सिंहे व्याघ्र उत या पृदाकौ त्विषिरग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये या।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना॥ १
७ या हस्तिनि द्वीपिनि या हिरण्ये त्विषिरप्सु गोषु या पुरुषेषु। इन्द्रं० (पूर्ववत्)॥ २
८ रथे अक्षेष्वृषभस्य वाजे वाते पर्जन्ये वरुणस्य शुष्मे। इन्द्रं० ,, ॥ ३
९ राजन्ये दुन्दुभावायतायामश्वस्य वाजे पुरुषस्य मायौ। इन्द्रं० ,, ॥ ४

जो शक्ति शेर-बाघ-साँप-आग-ब्राह्मण-सूर्य में है, जो सुभगा देवी ऐश्वर्य देती है, तेज-युक्त वह हमें मिले।१
जो ज्योति हाथी-चीता-सोना-जल-गौ-पुरुषों में है, ,, । २
जो रथ-पहियों-बैल के बल-हवा-मेघ-सूर्यताप में है, ,, । ३
जो क्षत्रिय-कसी दुन्दुभि-अश्वके बल-पुरुष के शब्द में है, ,, । ४

सूक्त ३९। इन्द्र।

१० यशो हविर्वर्धतामिन्द्रजूतं सहस्रवीर्यं सुभृतं सहस्कृतम्।
प्रसर्स्राणमनु दीर्घाय चक्षसे हविष्मन्तं मा वर्धय ज्येष्ठतातये॥ १
११ अच्छा न इन्द्रं यशसं यशोभिर्यशस्विनं नमसाना विधेम।
स नो रास्व राष्ट्रमिन्द्रजूतं तस्य ते रातौ यशसः स्याम॥ २
१२ यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत। यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः॥३

इन्द्र का दिया, हजारों शक्ति वाला, सु-धारित, बलकारी यशः-अन्न बढ़े, (हे ईश्वर!) आगे वृद्धिशील अन्नयुक्त मुझे दीर्घ दर्शन और महान् समृद्धि के लिये आगे बढ़ा। १

हम यशों से यशस्वी परमात्मा को नमः करते हुए अच्छी तरह से उपासना करें। वह हमें ऐश्वर्य से पूर्ण राष्ट्र दे। उसके दान में हम यशस्वी हों। २

इन्द्र (विद्युत्) -अग्नि-चन्द्रमा सब यशस्वी उत्पन्न हुए हैं। मैं भी समस्त प्राणियों में यशस्वी, सबसे अधिक यशस्वी होऊँ। ३

सूक्त ४० । सविता । अभय की प्रार्थना

१४१३ अभयं द्यावापृथिवी इहास्तु नोऽभयं सोमः सविता नः कृणोतु ।
अभयं नोऽस्तूर्वन्तरिक्षं सप्त ऋषीणां च हविषाभयं नो अस्तु ॥ १

१४ अस्मै ग्रामाय प्रदिशश्चतस्र ऊर्जं सुभूतं स्वस्ति सविता नः कृणोतु ।
अशत्र्विन्द्रो अभयं नः कृणोत्वन्यत्र राज्ञामभि यातु मन्युः ॥ २

१५ .अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात् । इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि ॥ ३

हे द्यौ-पृथिवी! यहाँ अभय हो; सोम-सविता हमें अभय करें, बड़ा अन्तरिक्ष हमारे लिए अभय हो, सात ऋषियों(तारों, शरीरस्थ प्राण, तथा आँख-नाक-कान-मन-वाणी-बुद्धि)के प्रयोग से अभय हो। १

सविता इस ग्राम के लिए ४ दिशाओं में बल-धन-कल्याण करे, अशत्रु इन्द्र हमें अभय हो, और राजाओं का क्रोध अन्यत्र (दुष्टों पर) जाये। २

हे परमात्मन् ! हमें नीचे-ऊपर-पीछे-आगे से निर्वैरता कीजिये । ३

सूक्त ४१ । इन्द्र । आत्मिक शक्ति

१६.मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये । मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम् ।। १

१७. अपानाय व्यानाय प्राणाय भूरिधायसे । सरस्वत्या उरुव्यचे " ।। २

१४१८ मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपा ये नस्तन्वस्तनूजाः ।
अमर्त्या मर्त्यां अभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः ।। ३

हम मन-चित्त-बुद्धि-संकल्प-ज्ञान-स्मृति-श्रवण-दर्शन के लिए भक्ति-योग से साधना करें । १

हम बड़े धारक अपान-व्यान-प्राण और बड़ी व्यापक विद्या के लिए " २

दिव्य ऋषि हमें न छोड़ें जो शरीरोत्पन्न शरीर-रक्षक हैं,अमर वे हम मर्त्यों के साथ रहें; बड़ी आयु दें । ३

अनुवाक ५ सूक्त ४२-५१

महर्षि के अनुसार विषय ईश्वर-गुरु-शक्ति-रोग नाशक औषध-ईश्वरप्रार्थना-आयु-स्वस्ति-हविः-वायु-विश्वादि पदार्थविद्या

सूक्त ४२ । मन्यु

१६.अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः।यथा संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै ।।१

२०.सखायाविव सचावहा अव मन्युं तनोमि ते।अधस्ते अश्मनो मन्युमुपास्यामसि यो गुरुः ।२

२१.अभितिष्ठामि ते मन्युं पार्ष्ण्या प्रपदेन च । यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ।।३

(मित्रोक्ति-)मैं तेरे हृदय से क्रोध, धनुष से ज्या के समान, उतारता हूं जिससे समान-मन मित्र हों । १

हम मित्रसमान रहें, तेरा क्रोध हटाता हूं, उसे हम पत्थर के समान भारी मनोबल से नीचे दबा दें । २

तेरा क्रोध तेरे एड़ी-पंजे से दबा दूं जिससे तू बेबस होकर न बोले, तू मेरे चित्त के अनुकूल हो । ३

सूक्त ४३ । दर्भ

१४२२.अयं दर्भो विमन्युकः स्वाय चारणाय च। मन्योर्विमन्युकस्यायं मन्युशमन उच्यते ।।१
२३ अयं यो भूरिमूलः समुद्रमवतिष्ठति। दर्भः पृथिव्या उत्थितो मन्युशमन उच्यते ।। २
२४ वि ते हनव्यां शरणिं वि ते मुख्यां नयामसि। यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ।।३

१४२२ यह दर्भ अपने तथा अन्य का क्रोध-नाशक है, क्रोधी को अक्रोध-कर्ता 'मन्यु-शमन' है। १
यह जो बहुत जड़ों वाला समुद्र के पास होता है वह भूमि में उगा दर्भ क्रोध-शामक कहा जाता है। २
तेरी हनु से मुख तक स्थित क्रोध को हम दूर करें जिससे विवश होकर न बोले, मेरे चित्त में बसे ।३

सूक्त ४४ । मनुष्य । औषधियाँ

२५.अस्थाद्द्यौरस्थात्पृथिव्यस्थाद्विश्वमिदं जगत्।अस्थुर्वृक्षाऊर्ध्वस्वप्नास्तिष्ठाद्रोगो अयं तव
२६. शतं या भेषजानि ते सहस्रं सङ्गतानि च। श्रेष्ठमास्रावभेषजं वसिष्ठं रोगनाशनम् ।। २
२७. रुद्रस्य मूत्रमस्यमृतस्य नाभिः। विषाणका नाम वा
असि पितॄणां मूलादुत्थिता वातीकृतनाशनी ।। ३

द्यौ-पृथिवी-यह सब जगत्-खड़े-खड़े सोनेवाले वृक्ष ठहरे हुए हैं, यह तेरा रोग भी ठहरे, बढ़े नहीं। १
तुझे जो शत-सहस्र औषधि मिलीं, उनमें यह श्रेष्ठ, शरीर पर प्रभावी, रक्त-स्राव की औषधि है। २
रुद्र(नारियल)का जल अमृत-केन्द्र है, ये विषाणका नामक (अजश्रृङ्गी-आवर्तकी-वृश्चिकाली-लातला-रोहिणी) औषधियाँ पालक औषधियों के मूल से निकलती और वातज-रोग-नाशक हैं। ३

सूक्त ४५। अग्नि-इन्द्र । मन का पाप

२८ परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि। परेहि न त्वा
कामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः ।। १
२९ अवशसा निःशसा यत् पराशसोपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः।
अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे अस्मद्दधातु ।। २
३० यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽपि मृषा चरामसि। प्रचेता न आङ्गिरसो दुरितात् पात्वंहसः ।।३

हे मन के पाप! दूर हट, बुरी बातें क्यों कहता है? दूर जा, तुझे नहीं चाहता, वृक्षों-बनों में घूम, मेरा मन घरों-गौओं में है। १

पास की हिंसा से, निर्बल करके गिरानेवाली दूर की हिंसा से जागते-सोते हम जब दुष्ट विचारों से प्रभावित हों तब अग्नि (ईश्वर-विद्वान्-यज्ञ-संकल्प) सब अवाञ्छनीय पाप दूर रक्खे। २

हे वेदपति इन्द्र! जब भी हम असत्य आचरण करते हैं उसे आप अच्छे प्रकार से जानते हैं। आप अंगों में रस के समान व्यापक हैं। हमें बुराईयों-पापों से बचायें। ३

सूक्त ४६। स्वप्न

यो न जीवोऽसि नो मृतो देवानाममृतगर्भोऽसि स्वप्न। वरुणानी ते माता यमः पितारुरुर्नामासि॥१

३२ विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः। अन्तकोऽसि मृत्युरसि। तं त्वा स्वप्न तथा संविद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि॥२

३३ यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति। एवा दुःष्वप्न्यं सर्वं द्विषते सं नयामसि॥ ३

१४३१ हे स्वप्न! जो तू न जीवित है न मरा, इन्द्रियों के अमरपन का आधार, रात तेरी माता, सूर्य पिता, तेरा नाम अररु (हिंसक) है। १

हे स्वप्न! तेरी उत्पत्ति को जानें, तू इन्द्रियों की वासनाओं का पुत्र, यम (सुषुम्णा-शीर्षक मैडुला-आब्लांगेटा) का कार्य, अन्तकारी मृत्यु है। हे स्वप्न! तुझे ठीक जानें तू हमें बुरे सपनों से बचा। २

जैसे कला-शफ(१६ वाँ-८ वाँ भाग), ऋण चुकाते हैं वैसे सब बुरे सपने द्वेषी के लिए छोड़ दें। ३

सूक्त ४७। अग्नि-विश्वेदेवाः। ३ सवन

१४३४ अग्निः प्रातःसवने पात्वस्मान् वैश्वानरो विश्वकृद् विश्वशंभूः।
स नः पावको द्रविणे दधात्वायुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम॥ १

३५ विश्वेदेवा मरुत इन्द्र अस्मानस्मिन् द्वितीये सवने न जह्युः।
आयुष्मन्तः प्रियमेषां वदन्तः वयं देवानां सुमतौ स्याम॥ २

३६ इदं तृतीयं सवनं कवीनामृतेन ये चमसमैरयन्त।
ते सौधन्वनाः स्वरानशानाः स्विष्टिं नो अभि वस्यो नयन्तु॥ ३

३४ विश्व का संचालक-कर्ता-कल्याणकारी ईश्वर प्रातःसवन (वसु की २४ तक की अवस्था) में हमारी रक्षा करे; पावक वह हमें समृद्धि में रखे, हम दीर्घायु और सहभक्षी हों। १

इस दूसरे सवन(४४ वर्ष तक की रुद्र अवस्था) में सब विद्वान् प्राण-आत्मिक शक्ति को न छोड़ें। पूर्णायु हम इनका प्रिय बोलते हुए, विद्वानों की सुमति में रहें। २

यह तीसरा सवन (आदित्य की ४८ वर्षों तक की आयु) उन क्रान्तदर्शी विद्वानों का है जो अपना मस्तिष्क सत्य ज्ञान से प्रेरित करते हैं। वे ओम् के सु-धनुषवाले सुख पाते हुए हमारे सुयज्ञ का सुफल दें। ३

सूक्त ४८। आत्मा। ३ प्रकार का ब्रह्मचर्य

३७ श्येनोऽसि गायत्रच्छन्दा अनु त्वा रभे। स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा॥१

३८ ऋभुरसि जगच्छन्दा अनु० (पूर्ववत्) ॥ २

३९ वृषासि त्रिष्टुप्छन्दा अनु० ,, ॥ ३

हे श्येन(ज्ञानप्रद), गायत्री छन्दवाले(२४ वर्षीय)पहले ब्रह्मचर्य! मैं तेरा आरम्भ करूँ, तू इस जीवन-यज्ञ की उत्तमता में मेरा कल्याण कर। यह सुवचन है। १

हे जगती छन्द के समान ऋभु मेधावी (४८ वर्षीय उत्तम ब्रह्मचर्य)! मैं तेरा०(पूर्ववत्)। २

हे त्रिष्टुप् छन्द के समान (४४ वर्षीय मध्यम रुद्र ब्रह्मचर्य)! तू सुख-वर्षक है, मैं तेरा०। ३

सूक्त ४६ । अग्नि । प्रलय-काल की आग

१४४० नहि ते अग्ने तन्वः क्रूरमानंश मर्त्यः । कपिर्बभस्ति तेजनं स्वं जरायु गौरिव ॥१

४१ मेष इव वै सञ्च वि चोर्वच्यसे यदुत्तरद्रावुपरश्च खादतः ।
शीर्ष्णा शिरोप्ससाप्सो अर्दयन्नंशून् बभस्ति हरितेभिरासभिः ॥ २

४२ सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्याखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः ।
नि यन् नियन्त्युपरस्य निष्कृतिं पुरूरेतो दधिरे सूर्यश्रितः ॥ ३

कालाग्नि! मर्त्य तेरे स्वरूपकी क्रूरता नहीं सह सकता, सूर्य अपना मण्डल खाजाता है जैसे गौ जेर को ।१
तू सूर्यवत् संकुचित होती और फैलती है, ऊपर के द्यो से नीचे की पृथ्वी तक सब खा जाती है, शिर से शिर, रूप से रूप को पीडित करती हुई तू संहारकारी मुखों से लोकों को निगल लेती है । २
सूर्य की ऊपर उठती लहरें बताती हैं कि काले गतिशील धब्बे नाचते हैं, जब वे मेघ की रचना को तोड़ डालते हैं तो सूर्याश्रित होकर प्रचण्ड ताप पैदा करते हैं । ३

सूक्त ५० । अश्विनौ । अन्न की रक्षा

१४४३ हतं तर्दं समङ्कमाखुमश्विना छिन्तं शिरो अपि पृष्टीः शृणीतम् ।
यवान्नेददानपि नह्यतं मुखमथाभयं कृणुतं धान्याय ॥ १

४४ तर्द है पतङ्ग है जभ्य हा उपक्वस ।
ब्रह्मेवासंस्थितं हविरनदन्त इमान् यवानहिंसन्तो अपोदित ॥ २

४५ तर्दापते वघापते तृष्टजम्भा आ शृणोत मे ।
य आरण्या व्यद्वरा ये के च स्थ व्यद्वरास्तान्त्सर्वान् जम्भयामसि ॥ ३

हे अश्विनो (सूर्य-चन्द्, रक्षक स्त्री-पुरुषो)! तुम बिल में छिपे चूहे आदि और हिंसक लुटेरों को मारो,सिर काटो, पसलियाँ तोड़ दो, वे जो आदि न खा सकें, उनका मुख भी बाँधो, अन्न निर्भय करो।१
हे हिंसक, फुदकती टिड्डी आदि, नाशयोग्य रेंगते क्रिमियों ! असंस्कृत अशुद्ध अन्न को, विद्वान् के समान, इन जो आदि का नाश न करते हुए छोड़ कर जाओ । २
१४४५. हे लुटेरों के सरदार, टिड्डियो, तेज दाँतों के चूहो, मेरी बात सुनो (जाओ) । हम जङ्गलो, अन्न के खाऊ जन्तुओं को, जो जैसे जहाँ हों, नष्ट कर दें ३

सूक्त । ५१ सोम-आपः-वरुण । शुद्धता

४६ वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ १(य१.३१)

४७ आपो अस्मान् मातरः सूदयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥ २ (य ४.२)

४८ यत् किंचेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरन्ति ।
चेत् तव धर्म युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥ ३ (ऋ ७.८६.५)

१४४६ वायु की पवित्रता से शुद्ध किया और प्रत्यक्ष निमित सोम (आदि औषधियाँ) अति शीघ्र गुणकारी हैं, वे इन्द्र जीव की योग-युक्त सखा हैं। १

माता के समान जल हमें समर्थ करें, घी से पवित्रकर्ता (सूर्य-याजक-पाचक) हमें घी (तेज-स्नेह-तैल) से पवित्र करें, दिव्य जल सब मल को बहा ले जाते हैं, इनसे पवित्र होकर ही आगे बढ़ूं। २

हे वरणीय ईश्वर! हम मनुष्य यह जो कुछ द्रोह श्रेष्ठ जन के प्रति कर दें, अज्ञान से तेरे धर्मों को तोड़ दें तो उस पाप से हमारा नाश न कर। ३

❀

प्रपाठक १४ अनुवाक ६ सूक्त ५२ से ६१ तक

विषय- ईश्वराग्नि सोमेन्द्रबन्धु संवत्सरादि नमो देवजना विद्वांस इत्यादि इन्द्रो यश इत्यादि रुद्र धातेश्वरादि पदार्थ विद्या

सूक्त ५२। सूर्य-रश्मि-चिकित्सा

१४४६ उत्सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्वन्। आदित्यःपर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥१

५० नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत। न्यूर्मयो नदीनां न्यदृष्टा अलिप्सत ॥ २

५१ आयुर्ददं विपश्चितंश्रुता कण्वस्य वीरुधम्। आभारिषं विश्वभेषजीमस्यादृष्टान्निशमयत् ॥३

विश्व से दृष्ट, अदृष्ट-दोष-नाशक सूर्य क्रिमियों का नाश करता हुआ द्यौ से पर्वतोंसे उदय होता है। १

किरणें अन्तरिक्ष में, कार्य-खोजी काय में ठहरते हैं, स्रोतओं की न दिखायी देती गतियाँ चलती हैं। २

मेधावी को आयुप्रद, बुद्धि-प्रेरक, प्रसिद्ध औषधि (सूर्य ज्योति) लेकर इसके अदृष्ट दोष शान्त करूँ। ३

सूक्त ५३। विश्वेदेवाः, अग्निः, त्वष्टा

५२ द्यौश्च म इदं पृथिवी च प्रचेतसौ शुक्रो बृहन् दक्षिणया पिपर्तु।
अनु स्वधा चिकितां सोमो अग्निर्वायुर्नः पातु सविता भगश्च ॥ १

५३ पुनः प्राणः पुनरात्मा न ऐतु पुनश्चक्षुः पुनरसुर्न ऐतु।
वैश्वानरो नो अदब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठाति दुरितानि विश्वा ॥ २

५४ सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन।
त्वष्टा नो अत्र वरीयः कृणोत्वनु नो मार्ष्टु तन्वो यद् विरिष्टम् ॥ ३

सचेतक द्यौ-पृथिवी और बड़ा प्रकाशमान सूर्य मेरे इस जीवन को दक्षता से भरपूर करें, चन्द्र-अग्नि अपनी धारणा-शक्ति को मेरे अनुकूल करें, वायु-सविता-भग (परमात्मा) हमारी रक्षा करें। १

प्राण-आत्मबल-चक्षु-बुद्धि हमें बार-बार मिले, विश्व-नेता, अहिंसित, शरीर-पालक परमात्मा हमारे सब कष्टों के मध्य में स्थित रहे। २

हम तेज-दूध-शरीरशक्ति-कल्याणमय मन से संयुक्त रहें, निर्माता परमात्मा यहाँ हमें उत्तम बनाये, शरीर का जो रोग हो उसे दूर करे। ३

सूक्त ५४। इन्द्र। राष्ट्र के ऐश्वर्य की वृद्धि

५५ इदं तद्युज उत्तरमिन्द्रं शुम्भाम्यष्टये। अस्य क्षत्रं श्रियम्महीं वृष्टिरिव वर्धया तृणम् ॥१

५६ अस्मै क्षत्रमग्नीषोमावस्मै धारयतं रयिम्। इमं राष्ट्रस्याभीवर्गे कृणुतं युज उत्तरम् ॥ २

५७ सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति। सर्वन्तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते। ३

१४५५ जैसे बरसात घास को बढ़ाती है वैसे ही हे शासक! तू इस राष्ट्र के क्षात्रबल-बड़ी सम्पत्ति को बढ़ा, इसोलिए इष्ट-लाभ के लिए ऐश्वर्ययुक्त को नियुक्ति का आदेश देता हूं। १

अग्नि-सोम(मन्त्री-पुरोहित) इसके लिए क्षात्रबल-धन धारण करा कर इस राष्ट्र के मण्डलमें उत्तम शासक की नियुक्ति किया करें। २

बन्धुओं के साथ या उनसे रहित जो भी हमें सताये, उन सब को, मुझ यज्ञ-कर्ता शासक के लिए, हे सेनापति! तू नाश कर। ३

सूक्त। ५५। ३ मन्त्र, १४५८ से १४६० तक। उत्तम मार्ग

१४५८ ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति।
तेषामज्यानि यतमो वहाति तस्मै मा देवाः परि धत्तेह सर्वे ॥ १

५९ ग्रीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः शरद् वर्षाः स्विते नो दधात।
आ नो गोषु भजता प्रजायां निवात इद्वः शरणे स्याम ॥ २

६० इदावत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय कृणुता बृहन्नमः।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ३

जो बहुत से आकाश-मार्ग विद्वानों के लिए द्यौ-पृथिवी के मध्य संचार करते हैं उनमें जो भी शान्ति पहुँचाये उसपर चलने के लिए यहाँ सब विद्वान् मुझे स्थिर करें। १

हे ग्रीष्म-हेमन्त-शिशिर-वसन्त-शरद्-वर्षा ऋतुओ! तुम हमें उत्तम दशा में रक्खो, हमें गौओं और सुख का भागी करो। हम तुम्हारे आँधी-रहित आश्रय में रहें। २

इदावत्सर (चन्द्र-आचार्य-तीन वर्ष), परिवत्सर (सूर्य-पिता-दो वर्ष), संवत्सर (अग्नि-राजा-एक वर्ष) के लिए बड़ा नमस्कार (आदर-अन्न-संचय-ठीक प्रयोग) करो। सब श्रेष्ठतम-कर्म-कर्ताओं की सुमति और कल्याणमय स्नेह में हम सदा रहें। ३

सूक्त ५६। देवजनाः। सर्प से रक्षा

१४६१ मा नो देवा अहिर्वधीत् सतोकान्त्सह-पूरुषान्।
संयतं न वि ष्परद् व्यात्तं न सं यमन् नमो देवजनेभ्यः ॥ १

६२ नमोऽस्त्वसिताय नमस्तिरश्चिराजये। स्वजाय बभ्रवे नमो नमो देवजनेभ्यः ॥ २

६३ सं ते हन्मि दता दतः समु ते हन्वा हनू। सं ते जिह्वया जिह्वां सम्वास्नाह आस्यम् ॥ ३

हे सर्प-विष-चिकित्सको! सन्तानों-पुरुषों-सहित हमें साँप न मारे, उसका बन्द हुआ मुख न खुले और खुला हुआ मुख बन्द न हो पाए [ऐसा उपाय करो]। विष-वैद्यों के लिए नमः। १

काले, तिरछी धारियों के, शरीर से लिपटने वाले और भूरे रङ्ग के साँपों के लिए नमः (वज्र) और विष-वैद्यों के लिए नमः (आदर) हो। २

हे सर्प! तेरे ऊपर के दाँत नीचे के दाँतों से; ठोड़ी ठोड़ी से, जीभ जीभ से और मुख मुख से अच्छे प्रकार से सटा कर पकड़ लूँ और मार डालूँ। ३

सूक्त ५७ । रुद्र । जल-चिकित्सा

१४६४ इदमिद् वा उ भेषजमिदं रुद्रस्य भेषजम् । येनेषुमेकतेजनां शतशल्यामपब्रवत् ॥ १

६५ जालाषेणाभिषिञ्चात जालाषेणोपसिञ्चत । जालाषमुग्रं भेषजं तेन नो मृड जीवसे ॥ २

६६ शं च नो मयश्च नो मा च नः किं चनाममत् ।
क्षमा रपो विश्वं नो अस्तु भेषजं सर्वं नो अस्तु भेषजम् ॥

यह जल ही निश्चित दवा है । यह रुद्र (रोग-नाशक वैद्य, नारियल) की दवा है जिससे एक काण्ड और सैकड़ों अनी वाले बाण (के घाव) को दूर किया जाता है । १
जल से रुग्ण अङ्ग सब ओर पास में सींचो, जल तेज दवा है; उससे जीवन पानेको वैद्य हमें सुखी करे ।२
हमें शान्ति-सुख मिले, कोई आँव आदि रोग न हो, यह जल सब की सब रोगों की दवा हो । ३

सूक्त ५८ । विश्वेदेवाः । यश की कामना

६७ यशसं मेन्द्रो मघवान् कृणोतु यशसं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
यशसम्मा देवः सविता कृणोतु प्रियो दातुर्दक्षिणाया इह स्याम ॥ १

६८ यथेन्द्रो द्यावापृथिव्योर्यशस्वान् यथाप ओषधीषु यशस्वतीः ।
एवा विश्वेषु देवेषु वयं सर्वेषु यशसः स्याम ॥ २

६९ यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत । यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ॥३

धनवाली बिजली, ये दोनों द्यौ-पृथिवी, सूर्यदेव मुझे यशस्वी करें, दक्षता-दाता का यहाँ प्रिय होऊँ । १
जैसे बिजली द्यौ-पृथ्वी पर, जल औषधियों में यशस्वी है, ऐसे ही हम सब देवों-गुणों में यशस्वी हों । २
बिजली-अग्नि-चन्द्र यशस्वी हैं; ऐसे ही मैं सब जगत् का सबसे अधिक यशस्वी होऊँ । ३ (१४१२ भी)

सूक्त ५९ । अरुन्धती । जीवला औषधि

७० अनडुद्भ्यस्त्वं प्रथमं धेनुभ्यस्त्वमरुन्धति । अधेनवे वयसे शर्म यच्छ चतुष्पदे ॥ १

७१ शर्म यच्छत्वोषधिः सह देवीररुन्धती । करत्पयस्वन्तं गोष्ठमयक्ष्माँ उत पूरुषान् । २

७२ विश्वरूपां सुभगामच्छा वदामि जीवलाम् । सा नो रुद्रस्यास्तां हेतिं दूरं नयतु गोभ्यः ।३

हे अरुन्धती ! तू पहले बैलों गौओं को, फिर अन्य पक्षियों-चौपायों के लिए सुख दे । १
अरुन्धती औषधि दिव्य औषधियों के साथ सुख दे, गौशाला को दुग्धयुक्त, पुरुषों को नीरोग करे । २
नाना रूपवाली, सुखप्रद जीवला को मैं अच्छा कहता हूं, वह रोग का फेंका आक्रमण गौओं से दूर करे ।३

सूक्त ६० । आपः । जल से हृदय-रोग दूर हो

७३. अयमा यात्यर्यमा पुरस्ताद् विषितस्तुपः । अस्या इच्छन्नग्रुवै पतिमुत जायामजानये ॥१

७४ अश्रमदियमर्यमन्नन्यासां समनं यती । अङ्गो न्वर्यमन्नस्या अन्याः समनमायति ॥ २

७५ धाता दाधार पृथिवीं धाता द्यामुत सूर्यम् । धातास्या अग्रुवै पतिं दधातु प्रतिकाम्यम् ॥ ३

यह न्यायकारी अभिभावक अपनी कन्या के लिए पति, और अपत्नी के लिए पत्नी को चाहता हुआ उनके गुण वर्णन करता हुआ आगे आता है । १
हे न्यायकारी ! यह अन्यों का सम्मान पाती हुई थक गयी है, अन्य भी इससे स्वयंवरमें सम्मान पायें । २२

१४७५. विधाता पृथिवी-द्यौ-सूर्य को धारण करता है, अभिभावक स्वयंवरा कन्या को कन्य पतिदे ।३

सूक्त ६१ । परमेश्वर

४१७६ मह्यमापो मधुमदेरयन्ता मह्यं सूरो अभरज्ज्योतिषे कम् ।
मह्यं देवा उत विश्वे तपोजा मह्यं देवः सविता व्यचो धात् ।। १

७७ अहं विवेच पृथिवीमुत द्यामहमृतूंरजनयं सप्त साकम् ।
अहं सत्यमनृतं यद्वदाम्यहं दैवीं परि वाचं विशश्च ।। २

७८ अहञ्जजान पृथिवीमुत द्यामहमृतूंरजनयं सप्त सिन्धून् ।
अहं सत्यमनृतं यद्वदामि यो अग्नीषोमावजुषे सखाया ।। ३

मेरे लिए जल मिठास-युक्त बहते हैं, सूर्य ज्योति के लिए तेज धारण करता है, सब विद्वान् और सब तपस्वी तथा सविता (प्रेरक) मेरे लिए ज्ञान-विस्तार करते हैं । १

मैंने पृथिवी और द्यौ को अलग किया, ७ ऋतुओं (गतिशील बुद्धि-मन-आँख-नाक-कान-जिह्वा-त्वचा) को एक साथ बनाया, मैं सत्य-असत्य को बताता, मनुष्यों को दैवी वेदवाणी को देता हूँ । २

मैं पृथिवी-द्यौ, ७ सिन्धुओं को बनाता, सत्य-असत्य अलग बताता, जो अग्नि-सोम को मिलाता है । ३

ॐ❀ॐ

अनुवाक ७, सूक्त ६२–७२

महर्षि दयानन्द के अनुसार विषय— वैश्वानर-ईश्वर-नमस्यादि, अग्नि संज्ञान समानादि, शत्रुनाशेन्द्र, शवरस्तुति मूढत्वादि पदार्थ विद्या।

सूक्त ६२ । वैश्वानर आदि । वेद-वाणी से पवित्र बनो

१४७९ वैश्वानरो रश्मिभिर्नः पुनातु वातः प्राणेनेश्वरो नभोभिः ।
द्यावापृथिवी पयसा पयस्वती ऋतावरी यज्ञिये नः पुनीताम् ।। १

८० वैश्वानरीं सूनृतामा रभध्वं यस्या आशास्तन्वो वीतपृष्ठाः ।
तया गृणन्तः सधमादेषु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।। २

८१ वैश्वानरीं वर्चस आरभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
इहेडया सधमादं मदन्तो ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तम् ।। ३

वैश्वानर किरणों से, वायु प्राण से, जल मेघों से हमें पवित्र करें । रस-जल युक्त द्यौ-पृथ्वी यज्ञोपकारी होकर हमें पवित्र करें । १

सब नरों की हितकर वेद-वाणी आरम्भ करो जिसकी प्रकाशक दिशाएँ विस्तृत हैं उसी वाणी से यहाँ सभाओं में हर्षित होते हम धनों के स्वामी हों । २

विश्वानर की वेद वाणी को तेज के लिए आरम्भ करो, शुद्ध-पवित्र-शोधक होते हुए हम यहाँ अन्न से हृष्ट होकर उदित होता सूर्य चिर काल तक देखें । ३

सूक्त ६३। आत्मा। निर्ऋति [अलक्ष्मी गरीबी से रक्षा]

१४८२ यत्ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध दाम ग्रीवास्वविमोक्यं यत् ।
तत्ते वि ष्याम्यायुषे वर्चसे बलायादोमदमन्नमद्धि प्रसूतः ॥ १

८३ नमोऽस्तु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयान् विचृता बन्धपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥ २

८४ अयस्मये द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् ।
यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमभि रोहयेमम् ॥ ३

८५ सं समिद् युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ । इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥ २

हे मनुष्य ! खेल खिलानेवाली अविद्या ने जो न छूटनेवाला बन्धन गरदन में बाँधा है उसे मैं तेरी आयु-वर्चः-बल क [illegible] करता हूँ, तू प्रेरित होकर हर्षप्रद अन्न खा। १

हे निर्ऋति ! तुझपर वज्र गिर[illegible]-तजस्वी ! लोहे के समान बन्ध-जालों को काट। यम[ईश्वर] मेरे लिए पुनः पुनः तुझे देता है। उस यम को मृत्यु-नाशार्थ नमः हो। २

यहाँ लोहे के खूँटे से बँध कर हजारों मृत्युओं में फँस जाता है, तू नियम से पितरों के साथ ज्ञान पाता हुआ इस उत्तम मोक्ष-सुख को पा। ३

हे श्रेष्ठ न्यायकारी स्वामी ! आप सबको अच्छे प्रकार से चलाते हैं, इडा [श्रद्धा] के पद पर सम्यक् प्रकाशित हैं, वह आप हमें धनों से भर दें। ४

सूक्त ६४। अग्नि। सङ्गठन

८६. संजानीध्वं संपृच्यध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ १

८७ समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं व्रतं सह चित्तमेषाम् ।
समानेन वो हविषा जुहोमि समानं चेतो अभि सं विशध्वम् ॥ २

८८ समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः । समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ३

समान जानो, समान रहो, तुम्हारे मन ठीक जानें, जैसे श्रेष्ठ विद्वान् ज्ञानी हो ईशोपासना करते हैं। १
इनका मन्त्र-समिति-व्रत-चित्त साथ-समान हों, तुम्हें समान भोजन देता हूँ, समान-मन हो रहो। २
तुम्हारे संकल्प-हृदय-मन समान हों जिससे तुम्हारा अस्तित्व उत्तम हो। ३

सूक्त ६५। शत्रु-विजय

८९ अव मन्युरवायताव बाहू मनोयुजा ।
पराशर त्वं तेषां पराञ्चं शुष्ममर्दयाधा नो रयिमा कृधि ॥ १

९० निर्हस्तेभ्यो नैर्हस्तं यं देवाः शरुमस्यथ । वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम् ॥ ४

९१ इन्द्रश्चकार प्रथमं नैर्हस्तमसुरेभ्यः । जयन्तु सत्वानो मम स्थिरेणेन्द्रेण मेदिना ॥ ३

हे दूरतक नाशक ! शत्रुकी क्रोध-मनोयुक्त भुजाएँ नीची हों, उनकी शक्ति नाश कर, हमें धन दे। १
हे विजिगीषुओ ! निहत्थों पर निहत्था करनेवाला जो शस्त्र फेंकते हो उसीसे मैं शत्रु-बाहें काटूं। २
हे विजिगीषुओ ! निहत्थों पर निहत्था करनेवाला जो शस्त्र फेंकते हो उसीसे मैं शत्रु-बाहें काटूं। २
सेनापति पहले बली शत्रुओं को निहत्था करे, मेरे वीर योधा उसके द्वारा विजयी हों। ३

सूक्त ६६ । इन्द्र ।

६२ निर्हस्तः शत्रुरभिदासन्नस्तु ये सेनाभिर्युधममायन्त्यस्मान् ।
समर्पयेन्द्र महता वधेन द्रात्वेषामघहारो विविद्धः ॥ १

६३ आतन्वाना आयच्छन्तोऽस्यन्तो ये च धावथ । निर्हस्ताः शत्रवः स्थनेन्द्रोऽद्य पराशरीत् ॥२

६४ निर्हस्ताः सन्तु शत्रवोऽङ्गैषां ग्लापयामसि । अथैषामिन्द्र वेदांसि शतशो विभजामहै॥३

आक्रामक शत्रु निहत्था हो जाय । हे सेनापति ! जो सेनाओं के साथ हमसे युद्ध करने आयें उन्हें तू बड़े शस्त्र से मार, इनका दुःखदायी प्रधान विशेष विद्ध होकर भाग जाये। १

जो धनुष तानते-तलवार खेंचते-शस्त्र फेंकते दौड़ते हैं वे निहत्थे हो जायें, आज इन्द्र मारेगा । २

शत्रु निहत्थे हों। हम इनके अङ्ग शिथिल कर दें, हे इन्द्र ! हम इनके धन शतशः बाँट लें । ३

सूक्त ६७ । इन्द्र । शत्रुओं का निःशस्त्रीकरण

६५ परि वर्त्मानि सर्वत इन्द्रःपूषा च सस्रतुः।मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां परस्तराम् ॥१

६६ मूढा अमित्राश्चरताशीर्षाण इवाहयः। तेषां वो अग्निमूढानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ॥ २

६७ ऐषु नह्य वृषाजिनं हरिणस्या भियं कृधि । पराङमित्र एषत्वर्वाची गौरुपेषतु ॥ ३

सेनापति-पोषक सब मार्गों में घूमें; ये शत्रु-सेनाएँ पूर्णतया घबड़ा जाएँ । १

हे शत्रुओ! घबड़ाकर बेसिर साँपोंके समान चलो, हमारे अग्न्यस्त्रों से मूर्छित वीरोंको इन्द्र मार डाले । २

सेनापति हमारे वीरों को मृग-चर्म-कवच पहना कर शत्रुओं को डरा दे ; वे भागें; भूमि हमें मिले । ३

सूक्त ६८ । विश्वे देवाः । मुण्डन

६८ आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि ।
आदित्या रुद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसः सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः ॥१

६९. अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसा ।चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे ॥ २

१५०० येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् ।
तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान् ॥ ३

यह फुर्तीला नाई उस्तरे के साथ आये । हे नापित ! तू गरम जल के साथ आ । आदित्य-रुद्र-वसु विद्वान् सावधानी से बाल भिगोएँ । हे ज्ञानियो ! तुम इस सोम्य शिशु के केशों का मुण्डन करो १

अखण्डित उस्तरा मूछ-दाढ़ी का क्षौर करे, जल अपने तेज से केशों को गीला करे, प्रजा-रक्षक (नापित) दीर्घ आयु और उत्तम दृष्टि के लिए चिकित्सा करे । २

हे विद्वानो ! विद्वान् सविता (नापित) जिस उस्तरा से सोम श्रेष्ठ राजा (शिशु)का क्षौर करता रहा हो उसी से इसका चूडाकर्म करो जिससे यह अच्छी गो-इन्द्रिय-अश्व-प्राण- जन वाला हो । ३

सूक्त ६९ । प्रजापति । तेज और यश की प्रार्थना

१५०१गिरावरगराटेषु हिरण्ये गोषु यद्यशः । सुरायां सिच्यमानायां कीलाले मधु तन्मयि । १

२.अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती । यथा भर्गस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु। २

३.मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः । तन्मयि प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥ ३

जो यश पहाड़ों में, चक्रयन्त्रों (पानी के रहट, चक्की आदि यन्त्रों, मोटर आदि सवारियों, बड़ी नदियों) में, सुवर्ण में और गौओं में है, जो मधुरता बरसने और बहने वाली जलधारा तथा अन्न में है, वे मुझ में हों ।१

कल्याणकारी माता–पिता सारवाली मधुरता से और मधुमक्खी के शहद से मुझे युक्त करें (शहद खिलायें और आँखों में लगाये) जिससे मनुष्यों के प्रति ओजस्विनी वाणी बोला करूँ । २

प्रजापालक (परमात्मा, पिता, शासक और सूर्य) द्युलोक में प्रकाश के समान, मुझ में तेज, बल और यज्ञ के सार को धारण करायें । ३

सूक्त ७० (प्रजापति । अघ्न्या)

४.यथा मांसं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने । यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः।
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ।। १

५.यथा हस्ती हस्तिन्याः पदेन पदमुद्युजे । यथा पुंसो० (पूर्ववत्) २

६- यथा प्रधिर्यथोपधिर्यथा नभ्यं प्रधावधि । यथा पुंसो० (पूर्ववत्) ।।३

हे अघ्न्ये (न मारने योग्य गौ, पृथिवी, माता, प्रजा और इन्द्रिय) जैसे वीर्यवान् ऐश्वर्यशाली का मन उत्तम अन्न, शुद्ध जल, क्रीडा तथा स्त्री में लगा होता है वैसे तेरा मन वत्स (सन्तान, परमेश्वर और शुभ कर्म) में लगा रहे । १

जैसे हाथी अपने पाँव को हथिनी के पाँव के साथ जोड़े और बढ़ाये रहता है वैसे तेरा मन अपनी सन्तान की वृद्धि में लगे । २

जैसे लोहे का हाल और लकड़ी का चक्र केन्द्र पर और केन्द्र चारों ओर के चक्र पर आश्रित रहता है, जैसे कामनायुक्त पुरुष का मन स्त्री पर लगता है वैसे ही हे अघ्न्या तेरा मन वत्स पर लगा रहे । ३

सूक्त ७१ अग्नि । (उत्तम अन्न का सेवन)

७ यदन्नमद्मि बहुधा विरूपं हिरण्यमश्वमुत गामजामविम् ।
यदेव किं च प्रतिजग्रहाहमग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ।। १

८ यन्मा हुतमहुतमाजगाम दत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः ।
यस्मान्मे मन उदिव रारजीत्यग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ।। २

९ यदन्नमद्म्यनृतेन देवा दास्यन्नदास्यन्नुत संगृणामि
वैश्वानरस्य महतो महिम्ना शिवं मह्यं मधुमदस्त्वन्नम् ।। ३

जो अनेक प्रकार का अन्न मैं प्रायः खाता हूँ और अन्य जो कुछ भी सुवर्ण, घोड़ा, गौ, बकरी, भेड़ आदि मैं दूसरे से लेता हूँ उसे दाता परमेश्वर उत्तम स्वीकार करने योग्य करे । १

जो दूसरों का दिया या न दिया, पिता पितामह आदि से दिया या मनुष्यों से अनुमोदित मुझे प्राप्त हो और जिससे मेरा मन ऊँचा होकर प्रसन्न हो, वह अग्नि में आहुत हो । २

सूक्त ७२ ।

१० यथासितः प्रथयते वशाँ अनु वपूंषि कृण्वन्नसुरस्य मायया ।
एवा ते शेपः सहसायमर्कोऽङ्गेनाङ्गं संसमकं कृणोतु ।। १

११ यथा पसस्तायादरं वातेन स्थूलभं कृतम् । यावत्परस्वतः पसस्तावत्ते वर्धतां पसः ।। २

१२ यावदङ्गीनं पारस्वतं हास्तिनं गार्दभं च यत्। यावदश्वस्य वाजिनस्तावत्तेवर्धतां पसः॥३

हे विद्वानो, जो अन्न में असत्य से खाता हूँ और दान करता अथवा न करता हुआ संग्रह करता हूँ वह पूजनीय महान् मनुष्य-हितकारी परमात्मा की महिमा से मेरे लिए कल्याणकारी हो । १

जैसे स्वतन्त्र शासक अपने वशवर्ती प्राणियों के लिए मन की निर्माणशक्ति से अपने राज्य का विस्तार करता है वैसेही तेरी विचारशक्ति ज्ञानसामर्थ्य से एक अङ्ग को दूसरे अङ्ग के साथ युक्त करे ।२ प्रबन्ध में आदर योग्य राज्य उद्योग द्वारा विस्तृत किया जाता है और जितना पालन करने में समर्थ पुरुष का राज्य होता है, उतना तेरा राज्य बढ़े । २

राज्यके (राजा, मन्त्री, मित्र, कोष, प्रबन्ध, गढ़, सेना इन ७) अङ्गों से युक्त, पालनकर्त्ता पुरुषों से सिद्ध तथा बलवान् हाथी, घोड़ों तथा गधों से युक्त जितना भी हो सके उतना तेरा राज्य बढ़े । ३

अनुवाक ८ सूक्त ७३-८२

विषय- वरुणेश्वरादि-तन्वादि-पंचजनेत्यादि-अग्निक्षत्रियादि-गर्धतामित्यादि-सहस्रपोषोस्त्वित्य दि जातकर्म-नामकरण-यज्ञोपवीत संस्कारादि पदार्थ विद्या -दयानन्द सरस्वती

सूक्त ७३ (समान मन होने का उपदेश ।)

१५१३ एह यातु वरुणः सोमो अग्निर्बृहस्पतिर्वसुभिरेह यातु ।
अस्य श्रियमुपसंयात सर्व उग्रस्य चेत्तुः संमनसः सजाताः ॥ १

१४ यो वः शुष्मो हृदयेष्वन्तराकूतिर्या वो मनसि प्रविष्टा ।
तान्त्सीवयामि हविषा घृतेन मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥२

१५ इहैव स्त माप याताध्यस्मत् पूषा परस्तादपथं वः कृणोतु ।
वास्तोष्पतिरनु वो जोहवीतु मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥ ३

वरुण-सोम-अग्नि-बृहस्पति यहाँ ८ मन्त्रियों के साथ आवें सब एकमन हो राष्ट्रधन का प्रयोग करें । १
जो बल तुम्हारे हृदयमें, संकल्प मनमें है उसे स्नेह-अन्न से बाँधता हूं, बन्धु-कृपा मुझ (नायक) पर रहे । २
यहाँ ही रहो दूर न जाओ, पोषक मित्र दूर न जाने दें, राज्य-भवन-पति तुम्हें स्थान दें, ,, । ३

सूक्त ७४ । सांमनस्य और सज्ञपन

१६. सं वः पृच्यन्तां तन्वः सं मनांसि समु व्रता । सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः संवो अजीगमत्
१७, संज्ञपनं वो मनसोऽथो संज्ञपनं हृदः । अथो भगस्य यच्छ्रान्तं तेन संज्ञपयामि वः ॥ २
१८. यथादित्या वसुभिः संबभूवुर्मरुद्भिरुग्रा अहृणीयमानाः ।
एवा त्रिणामन्नहृणीयमान इमान जनान्त्संमनसस्कृधीह ॥ ३

तुम्हारी विद्याएं-मन-कर्म मिले हुए रहें, वेद-पति विद्वान् और भगवान् तुम्हें मिलाये रहें । १
तुम्हारे मन-हृदय में सम्यक् ज्ञान हो, और ऐश्वर्य के श्रम से मैं तुम्हारा संज्ञपन करता हूं । २
जैसे उग्र आदित्य वसुओं-मरुतों के साथ संकोच न करते हुए रहते हैं वैसे ही हे तीन शक्तियों (प्रजा-उत्साह-वीर्य, अमात्य-कोश-दण्ड) से युक्त ! तू इन जनों को एकमन कर । २

सूक्त ७५ इन्द्रशत्रु को दूर करना

१५१९ निरमुं नुद ओकसः सपत्नो यः पृतन्यति । नैर्बाध्येन हविषेन्द्र एनं पराशरीत् ।। १

२० परमां तं परावतमिन्द्रो नुदतु वृत्रहा । यतो न पुनरायति शश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ २

२१ एतु तिस्रः परावत एतु पञ्च जनाँ अति । एतु तिस्रोऽति रोचना यतो न पुनरायति ३
शश्वतीभ्यः समाभ्यो यावत् सूर्यो असद् दिवि ।। ३

जो शत्रु आक्रमण करता है उसे घरसे बाहर रक्खो, इन्द्र [जीव-सेनापति] इसे निर्विघ्न उपाय से मारते ।१
शत्रु-हन्ता इन्द्र इस शत्रु को दूर से दूर भगा दे जहाँ से वह फिर बहुत वर्षों तक न आ सके । २
शत्रु तीन सीमाओं से, पंच जनों [ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-निषाद] से, तीन ज्योतियों [सूर्य-चन्द्र-बिजली] से दूर जाये जहाँ से अनन्त वर्षों तक जब तक द्यौ में सूर्य है, फिर लौट न सके ॥ ३

सूक्त ७६ । ४ मन्त्र । १५२२ से १५२५ तक । अग्नि (परमात्मा ,यज्ञाग्नि)

२२ य एनं परि षीदन्ति समादधति चक्षसे । सम्प्रेद्धो अग्निर्जिह्वाभिरुदेतु हृदयादधि ।।१

२३ अग्नेः सान्तपनस्याहमायुषे पदमा रभे । अद्धातिर्यस्य पश्यति धूममुद्यन्तमास्यतः ।।२

२४ यो अस्य समिधं वेद क्षत्रियेण समाहिताम् । नाभिह्वारे पदं नि दधाति स मृत्यवे ।। ३

२५ नैनं घ्नन्ति पर्यायिणो न सन्नाँ अव गच्छति । अग्नेर्यः क्षत्रियो विद्वान्नाम गृह्णात्यायुषे ।४

जो दिव्य दर्शन के लिए इस प्रदीप्त अग्नि की उपासना-ध्यान करते हैं उनके हृदय में प्रकाशित यह जिह्वाओं से बाहर प्रकट हो । १
मैं आयु बढ़ाने के लिए सान्तपन अग्नि के गुण धारण करता हूं जिसके मुख से निकलते हुए धुएँ को सत्य-ज्ञाता देखता है । २
जो रक्षक वीर की सँभाली इसकी दीप्ति जानताहै वह कुटिल स्थानमें मौतके लिए पैर नहीं जमाता । ३
जो विद्वान् आयु के लिए परमेश्वरका नाम लेता है उसे घेरनेवाले नहीं मारते,वह निकटस्थों को जानताहै।४

सूक्त ७७ । जातवेदाः ।

२६ अस्थाद् द्यौरस्थात्पृथिव्यस्थाद्विश्वमिदं जगत् । आस्थाने पर्वता अस्थुःस्थाम्न्यश्वाँ अतिष्ठिपम् ।

२७ य उदानट् परायणं य उदानण्न्यायनम् । आवर्तनं वितनं यो गोपा अपि तं हुवे ।। २।

२८ जातवेदो नि वर्तय शतं ते सन्त्वावृतः । सहस्रं त उपावृतस्ताभिर्नः पुनरा कृधि ॥ ३

द्यौ-पृथ्वी-यह सब जगत् और पर्वत स्वस्थान पर ठहरे हैं, मैं भी प्राणों को यथास्थान ठहराऊँ ।१
जो उत्कृष्ट-निम्न लोकों में व्यापक, जीवों का आवागमन कर्ता, इन्द्रिय-पालक है उसे मैं बुलाऊँ । २
हे सर्वज्ञ-व्यापक परमेश्वर ! आपकी सैकड़ों व्यवस्थाएँ-पाश हैं उनसे निवृत्त-समर्थ कीजिए । ३

सूक्त ७८ । दम्पती । पति-पत्नी

२९ तेन भूतेन हविषायमा प्यायतां पुनः । जायां यामस्मा आवाक्षुस्तां रसेनाभि वर्धताम् ।।१

३० अभि वर्धतां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम् । रय्या सहस्रवर्चसेमौ स्तामनुपक्षितौ ।। २

३१ त्वष्टा जायामजनयत्त्वष्टास्यै त्वां पतिम् । त्वष्टा सहस्रमायूंषि दीर्घमायुः कृणोतु वाम् ।। ३

यह पति उस पर्याप्त दान से तृप्त हो, जो पत्नी इसे दी जाय उसे यह आनन्द-पूर्वक बढ़ाये ।१
यह दूध पीकर राष्ट्र द्वारा बढ़े, ये दोनों पति-पत्नी हजारों तेजों वाले धन से भरपूर रहें । २
[हे पति] त्वष्टा परमात्मा ने पत्नी और इसके लिए तू पति रचा है, यह तुम्हें हजार धन,दीर्घायु करे ।३

सूक्त ७९। नभसस्पति। अन्न की समृद्धि

३२ अयं नो नभसस्पतिः सं स्फानो अभि रक्षतु। असमातिं गृहेषु नः ॥ १

३३ त्वं नो नभसस्पत ऊर्जं गृहेषु धारय। आ पुष्टमेत्वा वसु ॥ २

३४ देव संस्फान सहस्रापोषस्येशिषे। तस्य नो रास्व तस्य नो धेहि तस्य ते भक्तिवांसः स्याम ॥ ३

यह आकाश का पति बढ़ता हुआ मेघ हमारी रक्षा करे, हमारे घरों में असामान्य धन रक्खे। १

हे नभः के पति मेघ! तू हमारे घरों में अन्न भर, हमारे पास पुष्टि और धन आये। २

हे वृद्धिकर्ता देव! तू हजारों के पोषक अन्नका ईश है उसे हमें दे, धारण करा, हम उसके भागी हों। ३

सूक्त ८०। दिव्य श्वा और कालकांज

३५ अन्तरिक्षेण पतति विश्वा भूताऽवचाकशत्। शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम॥ १

३६ ये त्रयः कालकाञ्जा दिवि देवा इव श्रिताः। तान्त्सर्वानह्व ऊतयेऽस्मा अरिष्टतातये ॥ २

३७ अप्सु ते जन्म दिवि ते सधस्थं समुद्रे अन्तर्महिमा ते पृथिव्याम्। ० [मन्त्र १ के समान]॥ ३

दिव्य श्वा [कैनिस मेजर तारा] आकाशमें स्वाभिक चमकता है उसके तेज से हम ईश-भक्त हों। १

जो तीन कालकांज तारे आकाश [मृगशिरा] में तीन देव [अग्नि-बिजली-सूर्य] के समान चमकते हैं उन सबका इनको रक्षा-कल्याण के लिए उपदेश करता हूँ। २

नीहारिका में तेरा जन्म, द्यौ में तेरा स्थान, समुद्र में अन्दर और पृथिवी पर तेरी महिमा है, दिव्य श्वा का जो तेज है, हे परमात्मा! उस से हम तेरी भक्ति करें। ३

सूक्त ८१। परिहत दम्पती

३८ यन्तासि यच्छसे हस्तावप रक्षांसि सेधसि। प्रजां धनं च गृह्णानः परिहस्तो अभूदयम् ॥ १

३९ परिहस्त वि धारय योनिं गर्भाय धातवे। मर्यादे पुत्रमा धेहि तं त्वमा गमयागमे ॥ २

४० यं परिहस्तमबिभरदिदितिः पुत्रकाम्या। त्वष्टा तमस्या आ बध्नाद्यथा पुत्रं जनादिति ॥ ३

सूक्त ८२। इन्द्र

४१ आगच्छत आगतस्य नाम गृह्णाम्यायतः। इन्द्रस्य वृत्रघ्नो वन्वे वासवस्य शतक्रतोः ॥ १

४२ येन सूर्यां सावित्रीमश्विनोहतुः पथा। तेन मामब्रवीद् भगो जायामा वहतादिति ॥ २

४३ यस्ते अङ्कुशो वसुदानो बृहन्निन्द्र हिरण्ययः। तेना जनीयते जायां मह्यं धेहि शचीपते ॥ ३

[पत्नी-वचन-] आप नियम में चलने-चलाने वाले हैं; हाथों का सहारा देते, विघ्नकर्ताओं को दूर हटाते हैं। सन्तान-धन के अधिकारी आप परिहस्त हैं। १

हे परिहस्त! आप गर्भ-धारणार्थ मेरा विशेष पालन करें। [पति-वचन — तू सन्तान धारण कर उचित काल पर उत्पन्न कर। २

सन्तानेच्छु अखण्डव्रता पत्नी जिसे पति बनाती है उसे ईश्वर ऐसे नियम में बाँधता है कि जैसे वह दुःख-रक्षक सन्तान उत्पन्न करे [उसका जातकर्म संस्कार हो]। ३

समाचार

विश्व वेदपरिषद् की द्विवार्षिक सभा (चुनाव) लखनऊ में दशहरा २९-९-९० को प्रातः ९ से होगी, इससे पहले ७ बजे से यज्ञ और जीवात्माका स्थान विषय पर वेदगोष्ठी होगी, सभी आयें।
—२२-२६ दिसम्बर १९९० को अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन दिल्ली और नैरोबी में होगा।
—श्रद्धानन्द का भव्य स्मारक आ० सार्वदेशिक प्र० सभा दिल्ली शीघ्र बनाये,-आ०स० नया बाँस दिल्ली की इस मार्मिक अपील को सभा अवश्य स्वीकार करेगी, यह पूर्ण आशा है।—वीरेन्द्र सरस्वती
—चण्डीगढ़ में गुरुदत्त विद्यार्थी-शताब्दी ६-७ अक्टूबर ९० को मनाई जायेगी।
—अजमेर में ऋषि-मेला और वेदगोष्ठी परोपकारिणी सभा द्वारा अक्टूबर १९९० को होंगे।
—शोक है कि लखनऊ के प्रमुख आर्य श्री अर्जुन देव महाना को १३ अगस्त ९० को गोली मारकर हत्या करदी। वे बैंक में रुपये जमा करने जारहे थे। वे आ०प्र०सभा, वि०वे०प० के सदस्य थे और दयानन्द बाल सदन गुरुकुल के अध्यक्ष थे। अन्त्येष्टि शुद्धियज्ञ वैदिक विधि से किया गया।
—प्रधानमन्त्री ने अपने उपप्रधान श्री देवीलाल को बरखास्त कर दिया।
—श्रावणी-कृष्णाष्टमी, वेद-प्रचार-सप्ताह, १५ अगस्त स्वतन्त्रता-दिवस सब जगह मनाये गये। आचार्य वीरेन्द्र सरस्वती ने आर्य समाज उन्नाव में सप्ताह भर वेद-प्रवचन किये।
-पाकिस्तान की प्रधानमन्त्री भुट्टो को वहाँ के राष्ट्रपति ने बरखास्त कर दिया।
—शोक है कि चौधरी रूपचन्द ऐडवोकेट, चण्डीगढ़ (८६) का ११-७-९० को और प० चन्द्रसेन आर्योपदेशक हरियाणा का २१-७-९० को देहान्त हो गया।

सर्वाधिक, सोलह बार आया मन्त्र

वीरेन्द्र सरस्वती

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ।

शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्॥

सामवेद में एक बार ३२९ वाँ है जिसका अर्थ आध्यात्मिक, ईश्वरोपासना परक है। अथर्ववेद में १ बार २०-११-११ में दैविक अर्थ बिजली-परक है। ऋग्वेद में १४ बार है, अर्थ दैविक-भौतिक है- परमेश्वर-जीवात्मा-मन-सूर्य-वायु-राजा-सभापति-सेनापति-अध्यापक- उपदेशक-वणिक्-वैद्य योगी, शूद्राधिपति ये १२ अर्थ प्रकरणानुसार निम्नांकित स्थलों पर हैं या हो सकते हैं—
मण्डल ३ में ३०-२२, ३१-२२, ३२-१७, ३४-११, ३५-११, ३६-११, ३८-१०, ३९-९, ४३-८, ४८-५, ४९-५, ५०-५ मण्डल १० में ८९-१८, १०४-११। मन्त्र का शब्दार्थ—
हम इस धन-भरे संसार में, अन्न-बल के वितरण में, ज्ञानी धनवान्, श्रेष्ठतम नेता, सुनने वाले, उग्र, रक्षा के लिए संघर्षों में दुष्टों के नाशक, धनों के विजयी इन्द्र को बुलायें।

श्रीमन् ! नमस्ते, आपका वर्ष ६--९० को पूर्ण हो चुका है, कृपया वार्षिक शुल्क शीघ्र भेजिए। इसके मिलने पर ही अगला अंक भेजा जायेगा। अंकों को सँभाल कर रखिये, फिर न मिल सकेंगे। सभी सदस्य, विशेषत: आजीवन संरक्षक अथर्ववेद के प्रकाशन में कृपया आर्थिक सहायता दें।

वैदिक दैनन्दिनी कार्तिक २०४७ विक्रम

तिथि कृ १ २ ३ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ ३० शु १ २ ३ ४ ५ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ पू

वार गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु

नक्षत्र रे अ भ कृ मृ आं पु न पु श्ले म पू उ ह चि चि स्वा वि अनु ज्ये मू पू उ श्र ध श पू उ रे भ

ता.-अ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ न १ २

प्रेषक — मुद्रक आदर्श प्रेस, सी ८१७, महानगर, लखनऊ उ०प्र०, भारत, पिन २२६००६

ऋग्वेद

वर्ष १४
अंक १०

अथर्ववेद
खंड ११

वेद-ज्योति

यजुर्वेद

कार्तिक
२०४७

अक्टूबर
१९९०

वेद-मानव-सृष्टि-संवत् १ ९६ ०८ ५३ ०९१, दयानन्दाब्द १६६

शुल्क वार्षिक ३०), आजीवन ३००), विदेश में २५ पौंड, ५० डालर

सम्पादक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती शास्त्री एम. ए. काव्यतीर्थ, उपाध्यक्ष विश्व वेद परिषद

सहायक—विमला शास्त्री, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष ७ ५०१

दिल्ली कार्यालय—श्री सञ्जयकुमार, मन्त्री, बी९ हिल व्यू, वसन्तविहार, नयी दिल्ली ५७ दूर० ६०१४५२

महर्षि दयानन्द सरस्वती

तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मामृतं गमय

निर्वाण-दिवस

दीपावली १८-१०-९०

फाल्गुन जन्म १८८१ वि.

फरवरी १८२४

मृत्यु ३०-१०-१८८३
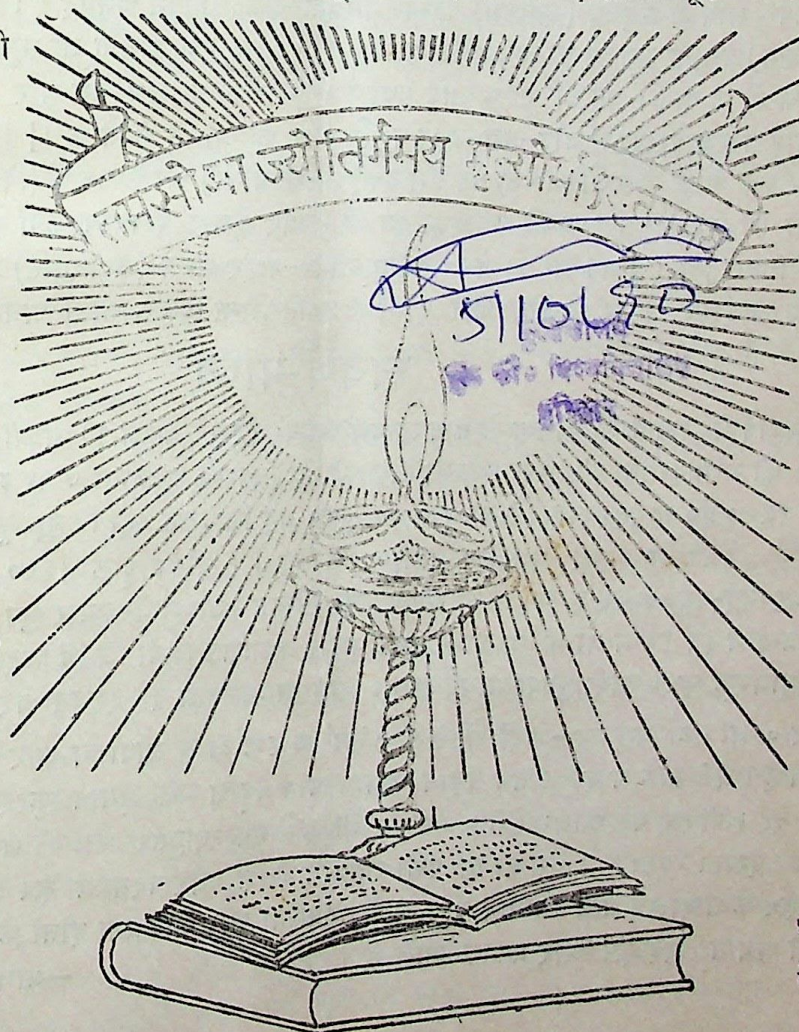
अथर्ववेद

सामवेद

सत्यार्थ प्रकाश–मन्त्र-व्याख्या

क्रमाङ्क ६०, ऋषि दीर्घतमाः, देवता विश्वेदेवाः, छन्द भुरिक् पंक्ति, स्वर धैवत, अलङ्कार रूपक

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।। [ऋ १.१६४.२०]

(द्वा) जो ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा) चेतनता और पालनादि गुणों से सदृश, (सयुजा) व्याप्य-व्यापक भाव से संयुक्त, (सखाया) परस्पर मित्रता-युक्त सनातन अनादि हैं। और (समानम्) वैसा ही (वृक्षम्) अनादि मूलरूप कारण, और शाखारूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलय में छिन्न-भिन्न हो जाता है; वह तीसरा अनादि पदार्थ। इन तीनों के गुण-कर्म और स्वभाव भी अनादि हैं। [(परि षस्वजाते) दोनों जीव-ब्रह्म-पक्षी प्रकृति-वृक्ष का आश्रय करते हैं।] (तयोः अन्यः) इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है, वह इस वृक्ष [काटने-योग्य] रूप संसार में (पिप्पलम्) पाप-पुण्य-रूप फलों को (स्वादु अत्ति) अच्छे प्रकार भोगता है। और दूसरा परमात्मा कर्मों के फलों को (अनश्नन्) न भोगता हुआ (अभि) चारों ओर अर्थात् भीतर-बाहर सर्वत्र (चाकशीति) प्रकाशमान हो रहा है। जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न-स्वरूप, तीनों अनादि हैं। समुल्लास ८]

रावण-भाष्य

महर्षि ने रावण को सायण के साथ त्याज्य बताया जिसके केवल १३ मन्त्रों का भाष्य दैवज्ञ पण्डित सूर्य की भगवद्गीता की 'परमार्थप्रभा' टीका में उद्धृत मिले हैं जिनमें ७ पर महर्षि-भाष्य उपलब्ध है। यह १५०७ ई० में पैदा रावण है या राम का शत्रु, यह निश्चित नहीं किन्तु सूर्य ने 'दशवदन' कहा–

विदित्वा वेदार्थं दशवदन-वाणी-परिणतम्। (टीका पृष्ठ १३२७)

ऋग्वेद-यजुर्वेद पर इस का किया भाष्य नहीं मिलता। डा०सुधीरकुमार गुप्त जयपुर के हम आभारी हैं जिन्होंने इन १३ मन्त्रों का आलोचनात्मक भाष्य प्रकाशित किया जिनमें प्रस्तुत मन्त्र गीता ८.४ में है–

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम्। अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ।। [पृष्ठ ६२२]

रा० भा० का अनुवाद– यहाँ लौकिक पक्षियों के दृष्टान्त से जीवात्मा और परमात्मा की स्तुति की गयी है। जैसे लोक में दो उत्तम उड़ान वाले, समान प्रवृत्ति वाले, समान स्फुरण (नाम आदि) वाले एक ही देह रूपी वृक्ष पर आश्रय लेते हैं। उन दोनों में से एक स्वादुतर फल को खाता है, दूसरा न खाता हुआ देखता रहता है। वैसे ही दो पक्षी स्थानीय क्षेत्रज्ञ और परमात्मा रूप आत्मा और जीवात्मा के स्वरूप के तादात्म्य नामक समान योग वाले परमात्मा और जीवात्मा दोनों के एक ही स्फुरण (नाम) वाले अर्थात् एक रूप और प्रकाश वाले हैं।

—आचार्य वीरेन्द्र सरस्वती

अध्वयु इस प्रकार ये १७ जल एकत्र करता है, क्योंकि १७ वाँ ही प्रजापति है जो वर्ष हैं। २२

१६ वे जल हैं जिन से १६ आहुतियाँ देता है, ये [जल-घी की] ३२ होती हैं; सरस्वती की और मरीचियों की नहीं देता, उन्हें मिलाकर ३४ होती हैं, ३३ देव और ३४ वाँ प्रजापति है, जिस रूप से इस यजमान-राजा को बनाता है। २३

एक का होम कर दूसरे को लेता है क्योंकि वज्र-आज्य से अलग करके स्वीकार करके लेता है। २४

सरस्वती का होम नहीं करता क्योंकि उस वाणी की हिंसा आज्य-वज्र से न हो जाये। २५

मरीचियों का होम इसलिए नहीं करता कि अनिश्चित ही इनके लिए होम न कर दूँ। २६

जल को हाथ में गूलर के पात्र में यजु ४-१० पढ़ कर रखता है—

मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम् महि क्षत्रं क्षत्रियाय वन्वाना:।

रस वाला जल रस वालों के साथ मिले, महान् क्षात्रबल क्षत्रिय के लिए देते हुए। यह कह कर यजमान के लिए परोक्ष आशीर्वाद देता है। २७

अनाधृष्टाः सीदत सहौजसः महि क्षत्रं क्षत्रियाय दधतीः ॥ यजु १०.४

राक्षसों से अपराजित होकर पराक्रम के साथ महान् क्षात्र बल क्षत्रिय के लिए धारण करते हुए रह; यह कहता हुआ यजमान के लिए प्रत्यक्ष क्षात्र-बल की कामना करता है और मैत्रावरुण के आगे धिष्ण्य को रखता है। २८

शतपथ कांड५, अध्याय३, ब्राह्मण५, (राजसूय यज्ञ)

यजमान के अभिषेक के धर्म (उसमें ३३ वाँ पार्थहोम, १२ आहुतियाँ)

तार्प्य आदि का पहनाना और आविन् मन्त्र का वाचन

अध्वर्यु उसका माध्यन्दिन सवन में अभिषेक करता है। यही प्रजापति है जो यह यज्ञ फैलाया जाता है जिससे यह प्रजा पैदा हुई और आगे भी होगी, अतः इसे इस प्रजापति के मध्य में ही रखता और मध्य में अभिषेक करता है। १

माहेन्द्र ग्रह लेने से पहले। क्योंकि यह इन्द्र का निष्केवल्य ग्रह है, निष्केवल्य ही स्तोत्र-शस्त्र हैं, इन्द्र ही यजमान है अतः इसे अपने ही स्थान में अभिषिक्त करता है। २

मैत्रावरुण के आगे रक्खे धिष्ण्य को चीते का चर्म यह यजु १०.५ पढ़कर पहनाता है—

सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयात्। [तू सोम की चमक है तेरे समान मेरी चमक हो।]

जहाँ सोम ने इन्द्र को पाया वह क्योंकि वहाँ चीता हो गया उससे सोम की चमक आयी अतः कहा सोम की चमक। यह कहकर इसमें चीते की चमक धारण कराता है। ३

अब पार्थों का होम करता है। पृथी वैन्य ने मनुष्यों में पहले अभिषेक किया, उसने कामना की कि सब अन्न रोक दूँ। उसके लिए इन्होंने होम किया। उसने यह सब अन्नाद्य रोक लिया। इसके लिए जङ्गली पशुओं तक को बुलाया गया— अरे आओ, राजा तुझे पालेगा। ऐसे यह सब अन्न रुक गये। ऐसा जानने वाले जिस के यहाँ ये बुलाये जाते हैं वह सब अन्नाद्य रोक लेता है। ४

वे १२ आहुतियाँ होती हैं क्योंकि वर्ष के १२ ही महीने होते हैं। ५

अभिषेक के पहले ६ और ६ पश्चात्, अतः इसे प्रजापति के मध्य में ही रखकर अभिषेक करता है। ६

वह जिनका पहले होम करता है उनमें बृहस्पति उत्तम है और बाद के ६ में इन्द्र प्रथम है। ब्रह्म ही बृहस्पति है, इन्द्र इन्द्रिय-शक्ति है, इन दोनों शक्तियों से ही इसे दोनों ओर से बढ़ाता है। ७

वह ६ आहुति देता, है ६ अभिषेक से पहले और ६ बाद, मन्त्र यजु १०.५ से—

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा ।

अग्नि तेज, सोम क्षात्रबल, सविता देवों का प्रेरक, सरस्वती वाणी; पूषा पशु, बृहस्पति ब्रह्म है उन्हीं से इस का अभिषेक करता है। इन्हें अग्नि नाम से कहते हैं । ८

इन्द्राय स्वाहा घोषाय स्वाहा श्लोकाय स्वाहा अंशाय स्वाहा भगाय स्वाहार्यम्णे स्वाहा ॥(य १०.६) इन्द्र-घोष-श्लोक-अंश-भग -अर्यमा ये ६ वीर्य हैं, उन्हीं से अभिषेक कर सबका अर्यमा बनाता है । ये ६ आदित्य के नाम कहे जाते हैं। ९

मैत्रावरुण के धिष्ण्य के आगे अभिषेचनीय पात्र होते हैं जिनमें स्नान का जल रहता है। १०

उनमें एक ढाक का होता है जिस से ब्राह्मण अभिषेक करता है। ढाक ब्रह्म है ब्रह्म से नहलाता है। ११

दूसरा पात्र गूलर का- जिससे स्व अपने नहलाते हैं । क्योंकि यह अन्न-ऊर्ज है वही स्व है, जबतक मनुष्य के पास स्व है तबतक भूखा नहीं मरता। अतः ऊर्ज स्व है। १२

तीसरा बड़ की जड़ का— उससे मित्र क्षत्रिय नहलाता है क्योंकि जड़ों से बड़ प्रतिष्ठित होता और मित्र से क्षत्रिय। १३

चौथा पात्र पीपल का— उससे वैश्य अभिषेक करता है क्योंकि उस पर स्थित होकर इन्द्र-मरुत मन्त्रणा करते हैं। ये अभिषेचीय पात्र हैं ! १४

अब दो पवित्रा बनाता है— सवित्रे स्थः वैष्णव्यौ । (य १०-६) । [हे पवित्राओ! तुम यज्ञ के हो] उनमें सुवर्ण बाँधता है, उनसे जल को पवित्र करता है। क्योंकि सोना अमृत-आयु है जिसे जल में प्रविष्ट करता है। १५

अब जल का उत्पुनन यजु १०-६ से करता है—

सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । अनिभृष्टमसि वाचो बन्धुस्तपोजाः सोमस्य दात्रमसि स्वाहा राजस्वः ॥

[सविता के उत्पन्न जगत् में अछिद्र पवित्रा से सूर्य की किरणों से पवित्र करता हूं, हे जल ! तू क्रिमि-अप्रभावित, वाणी का बन्धु है] क्योंकि जब तक प्राणों में जल रहता है तबतक वाणी से बोलता है।१६

अग्नि से धूम-मेघ-वर्षा होती है अतः 'तपोजा' कहा। १७

जल को सोम का रोग-नाशक रूप इसलिए कहा कि जलसे कुचलने पर ही उसकी आहुति होती है। तू स्वाहा से दीप्त हो इसलिए कहा कि स्वाहा कहकर इसे उत्कृष्ट करता है। १८

इन पात्रों में जल को विशेष रूप से यह यजु १०.७ पढ़कर रखता है—

सधमादो द्युम्निनीराप एता अनाधृष्टा अपस्यो वसानाः ।
पस्त्यासु चक्रे वरुणः सधस्थमपां शिशुर्मातृतमास्वन्तः ॥

यह जल साथ में हृष्ट, चमकीला, अनभिमानी, वीर्यवान्, राक्षस क्रिमियों से अपराजित है । वरुण (राजा) प्रजा का शिशु, राजसूय-कर्ता माता के समान प्रिय प्रजा में प्रतिष्ठा पाये । १९

अब इसे(य १९.८से) वस्त्र पहनाता है जो १ तार्प्य होता है, उसमें सब यज्ञ-रूप अंकित रहते हैं—

क्षत्रस्योल्बमसि क्षत्रस्य जराय्वसि क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसीन्द्रस्य वार्त्रघ्नमसि मित्रस्यासि वरुणस्यासि त्वयायं वृत्रं वधेत् । दृवासि रुजासि क्षुमासि पातैनं प्राञ्चं पातैनं प्रत्यञ्चं पातैनं तिर्यंचं दिग्भ्यः पात ॥ इस प्रकार क्षत्र के उल्ब से इसे उत्पन्न करता है। २०

अब २- पाण्ड्व पहनाता है। यह क्षत्र के जरायु से बाहर आकर जन्म लेता है। २१

अब ३- अधीवास पहनाता है। मानो क्षत्र की योनि से ही इसे पैदा करता है। २२

अब ४-पगड़ी बाँधकर सामने गाँठ बाँधता है। यह मानो क्षत्र की नाभि को इसमें रखता है। २३

कुछ शरीर पर लपेटते हैं यह कहते हुए कि यह नाभि है, किन्तु ऐसा न करे, सामने ही यह नाभि है क्योंकि इसे वस्त्र पहनाता है जो उत्पन्न को नहलाकर वस्त्र पहनाना है। २४

कुछ लोग इनको उतार कर दीक्षित-वस्त्र पहनाते हैं पर ऐसा न करे, वे इसके शरीर के अङ्ग हैं उनसे इसको जन्मे शरीर से बढ़ाते हैं, दीक्षित-वसन निन्द्य है, वह इन्हीं में से एक पहने। २५

कहते हैं कि वह जहाँ अवभृथ स्नान करता, चौर-उबटन कर लोम गिराता है, वहीं इन्हीं कपड़ों में से एक पहन कर निकलता है, उन्हें वपा-होम या उदवसानीया इष्टि हो जाने पर दे दे। २६

अब धनुष तानता है— इन्द्रस्य वात्रघ्नमसि। (य १०-८)[तू यजमान का धनुष है।] क्योंकि यज्ञ दो से इन्द्र है- क्षत्रिय और यजमान। २७

मित्रस्यासि वरुणस्यासि त्वयायं वृत्रं वधेत् - से बाहें ठोंकता है, उन्ही का धनुष, उन से ही क्षत्रिय मैत्रावरुण है। तुझसे यह वृत्र (द्वेषी शत्रु) को मारे यह कह कर धनुष देता है। २८

अब इसके लिए ३ इषु क्षेप्यास्त्र देता है- १. दृबा पृथिवी का, जिसे शत्रु को भेदता है, २. रुजा अन्तरिक्ष का जिससे बिँधा शयन कर जीता-मरता है, ३.क्षुमा द्यौ का, जिससे कर्म सिद्ध करता है। २६

अतः इसके लिए सभी दिशाएँ अहिंसक करता है क्योंकि इसे धनुष देता है जो क्षत्रिय का वीर्य है। मैं वीर्यवान् का अभिषेक करूँ अतः इसे शस्त्र देता है। ३०

अब इसे आविद मन्त्र (य १०.६)बुलवाता है—

आविर्मर्या आवित्तो ऽग्निर्गृहपतिरावित्त इन्द्रो वृद्धश्रवाः आवित्तौ मित्रावरुणौ धृतव्रतौ।
आवित्तः पूषा विश्ववेदा आवित्ते द्यावापृथिवी विश्वशम्भुवावावित्ता दितिरुरुशर्मा॥

[हे मनुष्यो ! यदि ये ७ हों तो सुख मिले]। १, इसे अनिरुक्त प्रजापति के लिए सौंपता है, वह इसे यज्ञ की अनुमति देता है। उससे अनुमत होकर राजसूय करता है। ३१

२. आवित्त(पूर्ण समृद्ध)गृहपति अग्नि जो ब्रह्म है उसके लिए इसे सौंपता०[पूर्ववत्]।३२ ।अर्थप्र६०।

३. आवित्त यशस्वी इन्द्र, जो क्षत्र है उस० [पूर्ववत्]। ३३

४. आवित्त व्रतधारी मित्र-वरुण, जो प्राण-उदान हैं, उनके लिए०[पूर्ववत्]। ३४

५. आवित्त विश्वधनी पूषा, जो पशु हैं, ,, ३५

६. आवित्त विश्व-कल्याणकारी द्यावा-पृथिवी के लिए० ,, । ३६

७, आवित्त महा-सुखदा अदिति, जो माता पृथिवी है, उस० ,, । इस प्रकार जिन अध्वर्यु देवताओं के लिए राजा यजमान को सौंपता है वे इसको अनुमति देते हैं तब उनसे अनुमत होकर यह राजसूय यज्ञ करता है॥ ३७॥

यह अध्याय ३ में ब्राह्मण ५ और पूरे अध्याय ३ का आचार्य वीरेन्द्र सरस्वती रचित
हिन्दी-अनुवाद समाप्त हुआ।

शतपथ ब्राह्मण काण्ड ५, अध्याय ४

ब्राह्मण १

लम्बकेश पुरुष के मुख में लोहे की शलाका डालना, सीसा हटाना, सोना रखना

केशव-पुरुष के मुख में लौह-शलाका को अवेष्टाः दन्दशूकाः (यजु १०-१०) [डसने वाले दूर हों] पढ़कर डालता है। राजसूय-यज्ञ-कर्ता सब मौतों, सब वधों से छूट जाता है। उसका बुढ़ापा ही मौत होता है। डसने वालों का नाश कर वह मौत-वध को दूर करता है। १

केशव पुरुष न स्त्री है न पुरुष। यह लोहायस का बना न लोहा है न सोना। दन्दशूक न क्रिमि हैं न अक्रिमि, लोहायस के बने होने से वे लाल से होते हैं। २

अब अध्वर्यु राजा को यजु १०.१०-१४ पढ़कर दिशाओं पर चढ़ाता है—

प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु रथन्तरं साम त्रिवृत् स्तोमो वसन्त ऋतुर्ब्रह्म द्रविणम् ।। ३

दक्षिणामारोह त्रिष्टुप् त्वावतु बृहत् साम पञ्चदश स्तोमो ग्रीष्म ऋतुः क्षत्र द्रविणम् ।। ४

प्रतीचीमारोह जगती त्वावतु वैरूपं साम सप्तदश स्तोमो वर्षा ऋतुर्विड् द्रविणम् ।। ५

उदीचीमारोह अनुष्टुप् त्वावतु वैराजं सामैकविंशस्तोमः शरदृतुः फलं द्रविणम् ।। ६

ऊर्ध्वामारोह पङ्क्तिस्त्वावतु शाक्वर-रैवते सामनी त्रिणव-त्रयस्त्रिंशौ स्तोमौ हेमन्त-शिशिरावृतू वर्चो द्रविणम् ।। ७

इन दिशाओं में चढ़ाकर ऋतुओं और उनसे संवत्सर तक पहुँच कर यह सब ऊपर-ऊपर हो जाता है, शेष यह सब इससे नीचे ही रहता है। ८

चीता की खाल के नीचे आधे जघन में सीसा रहता है उसे पैर से रगड़ कर हटाता है—

प्रत्यस्तं नमुचेः शिरः ।। (यजु १०-१४) [नमुचि (न छूटने वाले) का सिर कुचल दिया]।

नमुचि नामक असुर था, जिसे इन्द्र ने मारा। उसका सिर पैर से ठुकराया। जब वह उठा तो उसका सिर पैर से काट दिया तब राक्षस हो गया। कहता था— कहाँ जायेगा, कौन मुझे छुड़ायेगा ? ९

अनुवाक९ सूक्त ८३ से ९२ तक

विषय- खगोलादि-होमादि-पापदूरीकरणार्थ प्रार्थनादि वृत्रमेघादि चन्द्रेश्वर नक्षत्रादि-राष्ट्ररक्षादि पदार्थ विद्या-(दयानन्द)

सूक्त ८३ । व। अपनी-कण्ठमाला या गण्डमाला रोग की चिकित्सा

१५४४.अपचितः प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव । सूर्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोऽपोच्छतु ॥१

४५.एन्येका श्येन्येका कृष्णैका रोहिणी द्वे । सर्वासामग्रभं नामावीरघ्नीरपेतन ॥ २

४६.असूतिका रामायण्यपचित्प्र पतिष्यति । ग्लौरितः प्र पतिष्यति स गलुन्तो नशिष्यति ॥३

४७. वीहि स्वामाहुतिं जुषाणो मनसा स्वाहा मनसा यदिदं जुहोमि ॥ ४

हे गण्डमालाओ ! शीघ्र नष्ट हो जाओ जैसे पक्षी निवास स्थान से उड़ जाता है । खगोल में सूर्य इनकी चिकित्सा करे और चन्द्रमा रोग को दूर करे । १

एक एनी(चितकबरी) एक श्येनी(सफेद) एक कृष्णा(काली) और दो रोहिणी (लाल रंग वाली) इस प्रकार सब गंडमालाओं के नाम बताये जा रहे हैं । वीरों की हिंसा न करती हुई ये दूर हो जायं । २

नाड़ी में छिपी, पीब न पैदा करती हुई गण्डमाला दूर हो । घाव की पीड़ा भी दूर हो और सड़ने वाला रोग नष्ट हो । ३

हे रोगी, मन लगाकर उत्तम हवन करता हुआ अपनी औषधि तथा भोजन को स्वीकार कर। यह उपदेश विचार पूर्वक दिया जा रहा है । ४

सूक्त ८४ । निर्ऋति । भूमि पर बन्धन

१५४८. यस्यास्त आसनि घोरे जुहोम्येषां बद्धानामवसर्जनाय कम् ।
भूमिरिति त्वाभिप्रमन्वते जना निर्ऋतिरिति त्वाहं परि वेद सर्वतः ॥ १

४९. भूते हविष्मती भवैष ते भागो यो अस्मासु । मुञ्चेमानमूनेनसः स्वाहा ॥ २

५०. एवोष्व१ स्मन्निर्ऋतेऽनेहा त्वमयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥ ३

५१. अयस्मये द्रुपदे बेधिषे इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् ।
मेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ ४

जिस तेरे भयानक स्थान पर इन रोगबद्ध मनुष्यों की मुक्ति के लिए मैं अच्छे व्यवहार अन्न और सुख को देता हूं , उसे मनुष्य सुख की भूमि मानते हैं । मैं उसे निर्ऋति के रूप में अच्छेप्रकार जानता हूं । १

हे पृथिवी, तू अन्नवाली हो,यह तेरा भाग है जो हमें प्राप्त है । इन और उन सबको तू कष्टसे छुड़ा ।२

हे पृथिवी, तू कष्ट न देती हुई हमारे लोहे के समान दृढ़ गर्भ के बन्धनों को काट दे । यह काल पुनर्जन्म के रूप में फिर तुझ को मेरे भोग के लिए देता है । उस मारक काल के लिए यज्ञ किया जाये। ३

हे भूमि, इस जीवात्मा को लोहमय जैसे शरीर में तू बाँधती है । यह इस शरीर में मारनेवाले हजारों रोगों से घिरा रहता है । तू जीवनकाल और प्राणों के साथ अनुकूल होती हुई इस जीव को उत्तम सुख दे । ४

सूक्त ८५। वरण से रोग दूर हो

१५५२ वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिःयक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन्॥१
५३ इन्द्रस्य वचसा वयं मित्रस्य वरुणस्य च। देवानां सर्वेषां वाचा यक्ष्मं ते वारयामहे ॥२
५४ यथा वृत्र इमा आपस्तस्तम्भ विश्वधा यतीः। एवा ते अग्निना यक्ष्मं वैश्वानरेण वारये॥३

यह दिव्य वनस्पति वरण (वरुण जीरक बिल्व)रोग दूर करे। देव शरीर-प्रविष्ट रोग दूर करें। १
(हे रोगी!) इन्द्र-मित्र-वरुण राजा-वैद्य) तथा सब विद्वानों के वचन से हम तेरा रोग हटायें। २
जैसे मेघ सब ओर जाता जल रोके रहता है वैसे ही मैं तेरा रोग वैश्वानर अग्नि (यज्ञ) से रोक दूँ। ३

सूक्त ८६। एकवृष। श्रेष्ठ बनो

५५ वृषेन्द्रस्य वृषा दिवो वृषा पृथिव्या अयम्। वृषा विश्वस्य भूतस्य त्वमेकवृषोभव॥ १
५६ समुद्र ईशे स्रवतामग्निः पृथिव्या वशी। चन्द्रमा नक्षत्राणामीशे त्वमेकवृषो भव॥ २
५७ सम्राडस्यसुराणां ककुन् मनुष्याणाम्। देवानामर्धभागसि त्वमेकवृषो भव॥ ३

यह ईश्वर सूर्य-द्यौ-पृथिवी-सब भूतों का सुखवर्षक है। हे मनुष्य! तू एकमात्र सुख-वर्षक हो। १
समुद्र नदियों का, वशी अग्नि पृथिवी का, चन्द्र नक्षत्रों का ईश है, ,, । २
तू असुरों(बुद्धिमानों)का सम्राट, मनुष्यों में उच्च, देवों का समृद्धि-भागी है, ,, । ३

सूक्त ८७। राज्ञः स्तुतिः। प्रजातन्त्र

५८आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलत्,विशस्त्वा सर्वावांछन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत्१
५९ इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलत्। इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय॥ २
६० इन्द्र एतमदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा। तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः॥ ३

हे राष्ट्रपति! तुझे चुना है; सभा में अविचलित रह, सब प्रजा तुझे चाहे, तेरा राष्ट्र न बिगड़े। १
हे ,, तू यहीं रह, पद से न गिर,पर्वतवत् स्थायी हो, यहाँ राज्य का पालन कर। २
सेनापति इस स्थायी को अटल नियम से रक्खे; उसके लिए धर्माध्यक्ष तथा वेद-पति सम्मति दे॥३
[मन्त्र १ यजु १२-११ में भी हैं। सम्पूर्ण सूक्त ऋग्वेद १०-१७३ में भी है।]

सूक्त ८८। मन्त्र १५६१ से १५६३ तक। राज्ञः स्तुतिः

६१ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवंविश्वमिदं जगत्।ध्रुवासःपर्वता इमे ध्रुवोराजा विशामयम्
६२ ध्रुवंते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतांध्रुवम्॥
६३ ध्रुवोऽच्युतः प्र मृणीहि शत्रूञ्छत्रूयतोऽधरान् पादयस्व।
सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीर् ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह॥ ३

द्यौ-पृथिवी-यह सब जगत्-पर्वत अटल हैं वैसे ही यह प्रजा का राजा अटल हो। १
तेरे राज्य को वरुण[पुलिस]-न्यायाधीश-सेनापति तथा अग्नि [अग्रणी नेता मन्त्री] अटल करें। २
१५६३. (हे शासक!) तू च्युत न होकर शत्रुओं का नाश कर, शत्रुवत् कार्य-कर्ताओं को अपने नीचे ला। सब दिशाओं के निवासी प्रजा-जन एकमन हो एक साथ समान रूप से निवास करें। स्थायी होने के लिए प्रजा की समिति (संसद्, कमेटी) का यहाँ निर्माण हो। ३

सूक्त ८६ । पुरुषार्थ । वैद्य, रोग दूर करना

१५६४.इदं यत्प्रेण्यः शिरो दत्तं सोमेन वृष्ण्यम् । ततः परि प्रजातेन हार्दिं ते शोचयामसि ॥१

६५.शोचयामसि ते हार्दिं शोचयामसि ते मनः।वातं धूम इव सध्र्यङ् मामेवान्वेतु ते मनः।२

६६मह्यं त्वा मित्रावरुणौ मह्यं देवी सरस्वती।मह्यं त्वा मध्यंभूम्या उभावन्तौ समस्यताम्।३

यह जो तृप्तिकर्त्री औषधि का सिर सोम के साथ बलयुक्त है उसके बल से हृदय-शक्ति दीप्त करें ।१

हम तेरी हृदय-शक्ति तथा मन दीप्त करें ; तेरा मन वायु के पीछे धुएँके समान मेरे पीछे चले ।२

मित्र-वरुण, देवी विद्या, भूमि का मध्य, दोनों अन्त तुझ रोगी)को मुझ (वैद्य)से सङ्गत करें ।३

सूक्त ६० । रुद्र (वैद्य)

६७ यां ते रुद्र इषुमास्यदङ्गेभ्यो हृदयाय च । इदं तामद्य त्वद्वयं विषूचीं वि वृहामसि ॥१

६८ या ते शतं धमनयो अङ्गान्यनु विष्ठिताः । तासां ते सर्वासां वयं निर्विषाणि ह्वयामसि॥२

६९ नमस्ते रुद्रास्यते नमः प्रतिहितायै । नमो विसृज्यमानायै नमो निपतितायै ॥ ३

रुद्र (वैद्य) तेरे अङ्गों और हृदय के लिए जो इषु(इंजेक्शन)देता है उसे बढ़ाकर हैजा आदि दूर करें ।१

(हे रोगी !) जो तेरी सैकड़ों धमनियाँ अङ्गों में फैली हैं उन्हे हम (वैद्य) विष-हित कर दें । २

हे वैद्य! औषधि देनेवाले तुझे, दीगयी, दीजाती और शरीरमें पहुँची औषधि को नमः(आदर)हो ।३

सूक्त ६१ । यव, आत्मा । जल

७० इमं यवमष्टायोगैः षड्योगेभिरचर्कृषुः । तेना ते तन्वोरपः अपाचीनमप व्यये ॥ १

७१ न्यग् वातो वाति न्यक् तपति सूर्यः । नीचीनमघ्न्या दुहे न्यग् भवतु ते रपः ॥ २

७२ आप इद्वाउ भेषजीरापो अमीवचातनीः।आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्तेकृण्वन्तुभेषजम्॥३

विद्वान् इस यव (संयोग-वियोग-कर्ता शरीर, आत्मा, जौ, औषधि-मिश्रण, ईश्वर) को ८ और ६ योगों से पाते हैं। उससे तेरे शरीर का दोष बाहर खींच कर हटाता हूं ।१

८ योग— यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारा-ध्यान-समाधि, आयुर्वेद के ८ अङ्ग, कृषि के जोतना-हैंगाई-बोना-सींचना-निराना-काटना-मड़ाना-पिसाना निर्विकार चिन्तन-दर्शन-श्रवण-कथन-मनन-चित्त-ज्ञान-कर्तव्य । ६ योग (क्रियाएँ) — शम-दम-उपरति-तितिक्षा-श्रद्धा-मुमुक्षुत्व, मित निद्रा-आहार-श्रम-विहार-व्यायाम-प्राणायाम, वेद पढ़ना-पढ़ाना-यजन-याजन-दान-प्रतिग्रह, खेती-औषधि में कूटना-फटकना-छानना-पीसना-पकाना-खाना ।

वायु नीचे बहता, सूर्य नीचे की ओर तपता, गौ नीचे की ओर दुहाती है, तेरा रोग नीचा हो। २

जल निस्सन्देह औषधि, रोग-नाशक सबकी औषधि है, वह तेरी भी औषधि हो। ३(३.७.५ भी)

सूक्त ६२ । प्रजापति । वाजी (प्राण, अश्व, राजा)

७३ वातरंहा भव वाजिन् युज्यमान इन्द्रस्य याहि प्रसवे मनोजवाः ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु ॥ १

७४ जवस्ते अर्वन् निहितो गुहा यः श्येने वात उत योऽचरत् परीत्तः ।
तेन त्वं वाजिन् बलवान् बलेनाजिं जय समने पारयिष्णुः ॥ २

७५ तनूष्टे वाजिन् तन्वं नयन्ती वाममस्मभ्यं धावतु शर्म तुभ्यम् ।
अह्रुतो महो धरुणाय देवो दिवीव ज्योतिः स्वमा मिमीयात् ॥ ३

हे वाजी(अन्न-बल-युक्त)! युक्त होकर तू वायुवद् वेगयुक्त हो, इन्द्र की प्रेरणा से मन के वेग से चल। सब ज्ञान-धन-युक्त सैनिक तेरा प्रयोग करें, त्वष्टा तेरे पैरों में पूर्ण बेग धारण कराये। १

हे अर्वा(गतिशील) वाजी! जो वेग तेरे अन्दर पूर्ण, जो बाजमें, वायु में, अन्यत्र भी फैलता है उस बल से बली तथा संग्राम में पार लगाने वाला होकर विजयी हो। २।(दोनों मन्त्र य ९.८-६ में भी हैं)

हे वाजी तेरा शरीर मुझे आगे ले जाता हुआ हमें धन, तुझे सुख दे। वह अकुटिल हो हमें ले जाने के लिए द्यौ में ज्योति के समान अपनी महान् ज्योति का निर्माण पूर्णतया करे। ३

अनुवाक १० सूक्त ९३-१०२

यमो मृत्युरीश्वरादि-ओत इत्यादि-नैरोग्यार्थ प्रार्थनादि-वज्रबाहुरीश्वरादि पदार्थविद्या [म.दयानन्द)

सूक्त ९३। यम, विश्वेदेवाः।

१५७६ यमो मृत्युरघमारो निर्ऋथो बभ्रुः शर्वो अस्ता नीलशिखण्डः।
देवजनाः सेनयोत्तस्थिवांसस्ते अस्माकं परि वृञ्जन्तु वीरान्॥१

७७ मनसा होमैर्हरसा घृतेन शर्वायास्त्र उत राज्ञे भवाय।
नमस्येभ्यो नम एभ्यः कृणोम्यन्यत्रास्मदघविषा नयन्तु॥ २

७८ त्रायध्वं नो अघविषाभ्यो वधाद् विश्वे देवा मरुतो विश्ववेदसः।
अग्नीषोमा वरुणः पूतदक्षा वातापर्जन्ययोः सुमतौ स्याम॥ ३

यम-मृत्यु-पापमारक-सदा पीडक-पोषक-हिंसक-अस्त्रक्षेपक-नीली टोपी ये ८ विभागों के सेनाके साथ उठे हुए सैनिक हमारे वीरों को सर्वथा बचायें। १

अस्त्रक्षेपक, कष्ट-नाशक, सुखद शासक के लिए मन-होम-स्नेह-प्रकाश से इन नमस्यो के लिए नमः करता हूं। ये पाप रूपी विष वालों को हम से अलग अन्यत्र ले जायें। २

विश्व के ज्ञाता विद्वान् सैनिक और पवित्र-बलवान् अग्नि-सोम-वरुण (नेता-आचार्य-न्यायाधीश) हमें पापियों के वध से बचायें, हम वायु-पर्जन्य(गतिशील सेनापति, सुखद शासक)की सुमति में हों।३

७९ सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि।अमी ये विव्रता स्थन तान्वः संनमयामसि॥१

८० अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनु वर्त्मान एत॥२

८१ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवीसरस्वती।ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्चर्ध्यास्मेदं सरस्वति॥३

सूक्त ९४। प्रजापति। सङ्गठन

हम तुम्हारे मन-कर्म-सङ्कल्पों, तथा जो ये विरुद्ध-कर्मी हैं उन्हें एकता में झुकाते हैं। १(३.८.५ में भी)

मैं मन से मनों को लेता हूं, तुम चित्तों के साथ मेरे चित्त तक पहुँचो। मैं तुम्हारे हृदयों को अपने वश में करता हूं। मेरे अनुकूल मार्ग वाले होकर यहाँ आओ। २ (३-८-६ में भी है)

द्यावा-पृथिवी, देवी विद्या! इन्द्र-अग्नि(सम्राट्-मन्त्री)मुझसे मिले हों; हे विद्या! अब हम समृद्ध हों।२

८२ अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि। तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत॥ १

८३ हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि। तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत॥ २

८४ गर्भो अस्योषधीनां गर्भो हिमवतामुत। गर्भो विश्वस्य भूतस्येमं मे अगदं कृधि॥ ३

[१५८२-१५८३ पहले सं० ९४६-६४७ में ५-४-३, ४ में, १५८४ भी कुछ भेद से १२०२ में आया है।]
१५८४ हे पुष्करमूल कूट ! तू औषधियों, हिमवाले पहाड़ों तथा जगत् का गर्भ है, इसे नीरोग कर। ३

सूक्त ९६। औषधियाँ

८५ या ओषधयः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः।बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१
८६ मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत।अथो यमस्य पड्वीशाद्विस्वस्माद्देवकिल्बिषात्॥ २
८७ यच्चक्षुषा मनसा यच्चवाचोपारिम जाग्रतो यत्स्वपन्तः।सोमस्तानि स्वधया नःपुनातु॥३

सोम के साथ बहुत सैकड़ों प्रभाव वाली वैद्य से दी गयी औषधियाँ हमें रोग से छुड़ायें। १
वे मुझे दुर्वचन-शोक के प्रभाव, मोह-अपस्मार-जल-पाप से उत्पन्न रोग, यम-पाश से छुड़ायें।२
जागते-सोते हमें आँख-मन-वाणी के पाप से मिले रोगों को सोम अपनी शक्ति से दूर करे। ३

सूक्त ९७। आत्म। शत्रुओं को हटाना

८८ अभिभूर्यज्ञो अभिभूरग्निरभिभूः सोमो अभिभूरिन्द्रः।
अभ्यहं विश्वाः पृतना यथासान्येवा विधेमाग्निहोत्रा इदं हविः ॥ १
८९ स्वधास्तु मित्रावरुणा विपश्चिता प्रजावत् क्षत्रं मधुनेह पिन्वतम्।
बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत् ॥ २
९० इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम्।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ॥ ३

यज्ञ-अग्नि-होम-इन्द्र शत्रु-नाशक हैं, अग्निहोत्री ऐसे यज्ञ करें कि मैं सब सेनाएँ जीत सकूँ।१
हे विद्वान् मित्र-वरुण(न्यायाधीश-आरक्षी-पति) !तुम यहाँ स्वशक्ति से प्रजायुक्त राज्य को मधुरता से पुष्ट करो। दुर्गति को दूर करो, इससे हुए पाप-दुःखों को हमसे छुड़ाओ। २

सूक्त ९८। इन्द्र। विजयी राजा

९१ इन्द्रो जयाति न परा जयाता अधिराजो राजसु राजयातै।
चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्यो भवेह ॥ १
९२ त्वमिन्द्राधिराजः श्रवस्युस्त्वं भूरभिभूतिर्जनानाम्।
त्वं दैवीर्विश इमा विराजायुष्मत् क्षत्रमजरं ते अस्तु ॥ २
९३ प्राच्या दिशस्त्वमिन्द्रासि राजोतोदीच्या दिशो वृत्रहन् छत्रुहोऽसि।
यत्र यन्ति स्रोत्यास्तज्जितं ते दक्षिणतो वृषभ एषि हव्यः ॥ ३

हे मित्रो ! इस उग्र वीर सेनापति के साथ हर्षित होओ, ग्राम-गौ-विजेता, वज्र के समान बाहुवाले शस्त्रधारी, ओज से शत्रु-नाशक उस युद्ध-विजयी के अनुकूल होकर तय्यारी करो। ३
इन्द्र जीतताहै,हारता नहीं,राजाओंमें सम्राट् शोभित होताहै, कर्म-कुशल तू यहाँ स्तुत्य-वन्द्य-नमस्य हो।१
हे इन्द्र, तू सम्राट् यशस्वी, जन-समृद्धिप्रद हो इस दिव्य प्रजापर विराज, तेरा राज्य बड़ा चिरायु हो।२
हे शत्रु-हन्ता श्रेष्ठ इन्द्र! पूर्व और उत्तर दिशा के शत्रु-नाशक राजा तू ने समुद्र तक दक्षिण जीता है।३

सूक्त ९९ । इन्द्र । देश को बचाने के उपाय

९४ अभि त्वेन्द्र वरिमतः पुरा त्वांहूरणाद्धुवे । ह्वयाम्युग्रं चेतारं पुरुणामानमेकजम् ॥ १

९५ यो अद्य सेन्यो वधो जिघांसन् न उदीरते । इन्द्रस्य तत्र बाहू समन्तं परि दद्मः ॥ २

९६ परि दद्म इन्द्रस्य बाहू समन्तं त्रातुस्त्रायतां नः ।
देव सवितः सोम राजन्त्सुमनसं मा कृणु स्वस्तये ॥ ३

हे इन्द्र ! श्रेष्ठ होने से संकट से पहले ही मैं पुकारता; उग्र-सचेतक अनेक नाम के एक तुझे बुलाता हूं ।१
जो आज शत्रु-सेना का हिंसक शस्त्र हमपर उठे तो वहाँ हम इन्द्र की बाहें सब ओर उद्यत पायें ।२
इन्द्रकी बाहें (सेनाएँ) सब ओर हमें रक्षार्थ मिलें, बचायें, हे देव-सोम-सविता-राजन्! कल्याण के लिए तू मुझे उत्तम मन वाला बना ।३

सूक्त १०० । विश्वेदेवाः । विष की चिकित्सा

९७ देवा अदुः सूर्यो अदाद् द्यौरदात् पृथिव्यदात् तिस्रः सरस्वतीरदुः सचित्ता विषदूषणम् ॥

९८ यद्वो देवा उपजीका आसिञ्चन् धन्वन्युदकम् । तेन देवप्रसूतेनेदं दूषयता विषम् ॥ २

९९ असुराणां दुहितासि सा देवानामसि स्वसा। दिवस्पृथिव्याःसम्भूता सा चकर्थारसं विषम्

देव-सूर्य-द्यौ-पृथिवी-३ सचित्त सरस्वतियाँ (इडा-भारती-मही) विष-नाशक उपाय को देते हैं ।१
हे आश्रितो ! देव तुम्हें मरुस्थल में जो सींचते हैं उस दिव्य जल से यह विष निवारण करो। २
(हे बांबी की मिट्टी-लाख) तुम द्यौ-पृथिवी से उत्पन्न, असुरोंकी पुत्री, देवोंकी बहिन हो, विष दूरकरो।३

सूक्त १०१ । राजा का धर्म

१६०० आवृषायस्व श्वसिहि वर्धस्व प्रथयस्व च। यथाङ्गं वर्धतां शेपस्तेन योषितमिज्जहि॥१

१ येन कृशं वाजयन्ति येन हिन्वन्त्यातुरम् । तेनास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ॥२

२ आहं तनोमि० [शेष संख्या ६१६, ४.४.७ के समान] ॥ ३

(हे राजन्) सब ओर श्रेष्ठबन, प्राण धारण कर, बढ, बढ़ा, अङ्गानुसार शक्ति बढ़े, उससे नीति जीत।१
जिस कर्मसे कृशको बली, अशान्त को शान्त बनाते हैं उसीसे हे वेदपति! इसका राज्य धनुषवत् तान।२
मैं तेरा राज्य धनुष पर ज्या के समान तानता हूं, तू अश्रान्त हो हिरनपर सिंहवत् शत्रुपर चढ़।३

सूक्त १०२ । आत्मा । पति-पत्नी

३ यथायं वाहो अश्विना समैति सं च वर्तते । एवा मामभि ते मनो समैतु सं च वर्तताम् ॥१

४ आहं खिदामि ते मनो राजाश्वः पृष्ठ्यामिव। रेष्मच्छिन्नं यथा तृणं मयि ते वेष्टतां मनः॥२

५ आंजनस्य मदुघस्य कुष्ठस्य नलदस्य च । तुरो भगस्य हस्ताभ्यामनुरोधनमुद्भरे ॥३

जैसे यह वाहन अश्व अश्वी सवार के साथ जाता-रहता है वैसे तेरा मन मेरे साथ मिले-रहे ।१
मैं तेरा मन खींचता हूं जैसे वाहक लगाम को । वह मुझमें लिपटा रहे जैसे आँधी से टूटा तिनका।२
मैं शीघ्रकारी पति के हाथों से आग्रह से अंजन-प्रसाधन-कूठ-खस के पर्दे आदि लेती हूं। ३

ॐ❀ॐ

प्रपाठक १५ अनुवाक ११ सूक्त १०३-११३

संदान बृहस्पति रिस्यादि०समुद्रादि०सूर्यादि पदार्थ विद्या मेघादि पदार्थविद्या अग्न्यादि पदार्थविद्या

सूक्त १०३। इन्द्र। शत्रु-नाश

६०६संदानं वो बृहस्पतिः संदानं सविता करत्।संदानं मित्रो अर्यमा संदानंभगोअश्विना।।१
सं परमान्त्समधमानथो संद्यामि मध्यमान्।इन्द्रस्तान् पर्यहार्दाम्ना तानग्ने सं द्या त्वम् ।।२
८ अमी ये युधमायन्ति केतून् कृत्वानीकशः १० (पूर्ववत्) ।। ३

शत्रुओ, बड़ा सेनापति-सविता-मित्र-अर्यमा-भग अश्विनौ(वायु-जल-सेनाध्यक्ष)तुम्हारा खंडन करें।।१
मैं बड़े-छोटे-मध्यम शत्रुओं का खंडन करूँ, सेनापति-अग्रणी उन्हें पकड़कर नष्ट कर दें। २
जो शत्रु झण्डे उठाये टोलियों में युद्धार्थ आयें उन्हें इन्द्र पाश में बाँधे, हे अग्रणी! उन्हें नाशकर। ३

सूक्त १०४। इन्द्र। शत्रु-पराजय

आदानेन संदानेनामित्राना द्यामसि। अपाना ये चैषां प्राणा असुनासून्त्समच्छिदन् ।।१
इदमादानमकरं तपसेन्द्रेण संशितम्। अमित्रा येऽत्र नः सन्ति तानग्न आ द्या त्वम्।। २
१ऐनान्द्यतामिन्द्राग्नी सोमो राजा च मेदिनौ।इन्द्रो मरुत्वानादानममित्रेभ्यःकृणोतु नः।।३

मैं शत्रुओं को घेर-पकड़ कर नाश करें, अपनी बुद्धि से उनके प्राण-अपान छिन्न-भिन्न करें।१
यह आकर्षण यन्त्र बिजली-शक्ति से तीक्ष्ण बनाया हो। हे सेनापति! यहां हमारे शत्रुओं को बाध। २
सेनापति-मन्त्री-हर्षित युद्धमन्त्री-राजा इन्हें खण्डित करें, सैनिक-सहित इन्द्र हमारे शत्रुओं को बाँधे।३

सूक्त १०५। मनुष्य। खाँसी

१ यथा मनो मनस्केतैः परापतत्याशुमत्।एवा त्वङ्कासे प्रपत मनसोऽनु प्रवाय्यम् ।।१
२ यथा बाणः सुसंशितः परापतत्याशुमत्।एवा त्वङ्कासे प्रपत पृथिव्या अनु संवतम् ।।२
३ यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत्।एवा त्वङ्कासे प्रपत समुद्रस्यानु विक्षरम् ।।३

जैसे मन मनके विषयों के साथ शीघ्र दूर जाता है ऐसे हे खाँसी! तू मन के अनुकूल दूर देश जा। १
जैसे तीक्ष्ण बाण शीघ्र दूर जाता है ऐसे हे खांसी! तू पृथिवी के निम्न स्थान को जा। २
जैसे सूर्य-किरणों शीघ्रता से दूर तक जाती हैं ऐसे ही हे खांसी! तू समुद्र के प्रवाह को जा। ३

सूक्त १०६। शाला। घरकी शोभा

१आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः।उत्सो वा तत्र जायतां ह्रदो वा पुण्डरीकवान्।१
२ अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम्। मध्ये ह्रदस्य नो गृहाः पराचीना मुखा कृधि।।२
हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परि व्ययामसि। शीतह्रदा हि नो भुवोऽग्निष्कृणोतु भेषजम्।।३

१६१५ तेरे मकान के आगे-पीछे फूल वाली दूब उगे, वहाँ हौज या कमल वाला ताल हो। १
यह जल का स्थान या समुद्र के पास हो। ताल के मध्य में हमारे मकान हों, खिड़कियाँ सामने हों।
हे शाला ! तुझे हिम के घेरे (कूलर) से घेरते हैं, तू हमारे लिए शीत ह्रद वाली हो, अग्नि दवा हो।

सूक्त १०७। ईश्वर। औषधियाँ

१८ विश्वजित्त्रायमाणायै मा परि देहि। त्रायमाणे द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद्यच्च नः स्वम्॥१
१९ त्रायमाणे विश्वजिते मा परि देहि। विश्वजित् ,, ॥२
२० विश्वजित्कल्याण्यै मा परि देहि। कल्याणि० ,, ॥३
२१ कल्याणि सर्वविदे मा परि देहि। सर्वविद् द्वि० ,, ॥४

हे विश्वजित् (ईश्वर-वैद्य !) तू मुझे त्रायमाणा (त्रायन्ती-बलभद्रिका औषधि) दे। हे त्रायमाणा
हमारे सब पशु-मनुष्य-धन की रक्षा कर। १
हे त्रायमाणा ! मुझको विश्वजित् के लिए सौंप दे, हे विश्वजित् हमारे ० (पूर्ववत्) ।
हे विश्वजित् ! मुझको कल्याणी (माषपर्णी औषधि) के लिए सौंप दे वह० ,, ।
हे कल्याणी ! मुझ को सर्वविद् (ईश्वर) के लिए सौंप दे, वह० ,, ।

सूक्त १०८। मेधा

२२ त्वं नो मेधे प्रथमा गोभिरश्वेभिरा गहि। त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया॥
२३ मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम्। प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे॥
२४ यां मेधामृभवो विदुर्यां मेधामसुरा विदुः। ऋषयो भद्रां मेधां यां विदुस्तां मय्या वेशयामसि॥
२५ यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः। तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृणु॥४
२६ मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां मध्यन्दिनं परि। मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेशयामहे॥
हे मेधा ! तू हमारी प्रथम पूज्य है, हमारे पास गौ-अश्व-इन्द्रिय-प्राण-सूर्य-किरणों के साथ आ।
मैं इन्द्रिय-रक्षार्थ ज्ञानयुक्त, ब्रह्मज्ञ-ऋषि-स्तुत, ब्रह्मचारियों से पान कीगयी मेधा को बुलाता हूं॥
जिस कल्याणी मेधा को शिल्पी-बुद्धिमान्-ऋषि जानते हैं उनको हम अपने में धारण करें। ३
हे अग्नि ईश्वर ! जिस मेधा को कर्मशील मेधावी पाते हैं, उससे मुझको सदा मेधावी करो।
[यह मन्त्र कुछ भेद से यजु ३२-१४ में है।]
१६२६ हम मेधा को सायं, प्रातः, मध्य दिन भर सूर्य की किरणों के द्वारा उत्तम वेद-वचन
से अपने अन्दर स्थापित करें। ५॥

सूक्त १०९। पिप्पली

२७ पिप्पली क्षिप्तभेषज्यू३तातिविद्धभेषजी। तां देवाः समकल्पयन्नियं जीवितवा अलम्॥
२८ पिप्पल्यः समवदन्तायतीर्जननादधि। यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः॥
२९ असुरास्त्वा न्यखनन् देवास्त्वोदवपन् पुनः। वातीकृतस्य भेषजीमथो क्षिप्तस्य भेषजीम्॥

१६२७ पीपल उन्माद और पक्षाघात की दवा है, उसे विद्वान् मानते हैं,यह जीने के लिए पर्याप्त है । १
पीपलें जन्मस्थान से आती हुई कहती हैं कि जिस जीव को हम मिलती हैं वह पुरुष नष्ट नहीं होता । २
हे पिप्पली ! गठिया और उन्माद की दवा तुझे बादल बातें और सूर्य-किरणें उगाती हैं । ३

सूक्त ११०। अग्नि। आचार्य

१६३० प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि ।
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रायस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व । १

३१ ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात् परिपाह्येनम् ।
अत्येनं नेषद् दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।। २

३२ व्याघ्रेऽह्न्यजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः ।
स मा वधीत् पितरं वर्धमानो मा मातरं प्र मिनीज्जनित्रीम् ।। ३

हे अग्नि(आचार्य) ! तू पुराना,-स्तुत्य- नया होकर यज्ञों में सदा सुख से बैठता है । अपना शरीर प्रीतियुक्त कर और हमें सौभाग्य दे । १ [कुछ भेद से ऋ ८-११-१०]
जिसका पहला बच्चा मर गया हो उसके उत्पन्न दूसरे को मूलनाड़ी के काटने के समय से बचाओ इसे सब दुःखों से बचाकर सौ वर्ष की दीर्घायु तक ले जाओ । २
व्याघ्र(विशेष वीर्यवान् ब्रह्मचारी-गृहस्थ पिता) के होते पर युद्ध आदि भयङ्कर दिन में उत्पन्न अच्छा वीर होता है, बढ़ता हुआ वह पिता और जन्मदात्री माता को नहीं सताता । ३

सूक्त १११ । अग्नि । वैद्य, यज्ञाग्नि, उन्माद-चिकित्सा

३३ इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्ध्ययं यो बद्धः सुयतो लालपीति ।
अतोऽधि ते कृणवद् भागधेयं यदानुन्मदितोऽसति ।। १

३४. अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्युतम् । कृणोमि विद्वान्भेषजं यथानुन्मदितोऽससि ।।२

३५ देवैनसादुन्मदितमुन्मत्तं रक्षसस्परि । कृणोमि विद्वान्भेषजं यदानुन्मदितोऽसति ।। ३

३६. पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्भगः । पुनस्त्वा दुर्विश्वे देवा यथानुन्मदितोऽससि ।।४

हे अग्नि(वैद्य), यह जो जकड़ा बँधा बकता है इस मेरे रोगी को छोड़, जब यह उन्माद से छूट जाये तो तुझे अधिक भाग्यशाली बनाये । १
यदि तेरा मन व्याकुल है तो अग्नि शान्त करे, विद्वान् मैं औषधि देता हूं जिससे उन्माद-रहित बन ।२
यदि देवों के प्रति किये पाप या रोग से उन्माद है तो मैं वैद्य उस की दवा करूँ जिससे यह छुटे । ३
हे रोगी ! अप्सराएँ (कार्य-रत स्त्रियाँ जल-विद्युत्)-सूरज-चन्द,-वायु-अन्न-सब देव पुनः पुनः शक्ति दें जिससे तू उन्माद-रहित हो जाये । ४

सूक्त ११२। अग्नि। ग्राहि के पाश

१६३७ मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां मूलबर्हणात् परि पाह्येनम् ।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् तुभ्यं देवा अनु जानन्तु विश्वे ॥१

३८ उन्मुञ्च पाशांस् त्वमग्न एषां त्रयस्त्रिभिरुत्सिता येभिरासन् ।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् पितापुत्रौ मातरं मुञ्च सर्वान् ॥ २

३९ येभिः पाशैः परिवित्तो विबद्धोऽङ्गे अङ्ग आर्पित उत्सितश्च ।
वि ते मुच्यन्तां विमुचो हि सन्ति भ्रूणघ्नि पूषन्दुरितानि मृक्ष्व ॥ ३

हे अग्रणी ! यह बड़े भाई को न मारे, इसे इनके मूल वंश के नाश से बचा, वह तू जानता हुआ गाहि (गठिया आदि) के बन्धन खोल, तुझे सब विद्वान् अनुमति दें । १

हे अग्नि, इनके वे तीन पाश खोल जिनसे ये तीन बँधे हैं, पिता-पुत्र-माता सबको गाहि-पाश से छुड़ा । २

जिन पाशों से बड़ा भाई बँधा, अङ्ग-अङ्ग में जकड़ा, दुःखी हो वे यदि खुलनेयोग्य हों तो खुल जायें, हे पोषक, गर्भघात करने वाली के रोगों को दूर कर । ३

सूक्त ११३। त्रित। ज्ञान से पाप-निवारण

४० त्रिते देवा अमृजतैतदेनस्त्रित एनन्मनुष्येषु ममृजे ।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥ १

४१ मरीचीर्धूमान् प्र विशानु पाप्मन्नुदारान् गच्छोत वा नीहारान् ।
नदीनां फेनाँ अनु तान् वि नश्य भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व ॥ २

४२ द्वादशधा निहितं त्रितस्यापमृष्टं मनुष्यैनसानि । ०(शेष पूर्ववत्) ॥३

इन्द्रियों ने पाप को मेधायुक्त मन में रक्खा जो इसे मनुष्यों में फैलाता है उससे यदि तुझे गठिया पकड़ ले तो उसे वैद्य वेद-ज्ञान-चिकित्सा से नाश करदें । १

हे पापी, दण्ड भोगने के लिए तू सूर्य-किरणों-धुओं में घुस, बादलों या कोहरे में जा, या नदियों के फेनों के पीछे जाकर नष्ट हो। हे पोषक, भ्रूण-हत्या में हुए पापों को दूर कर । २

मनुष्य के बारह स्थानों (५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, मन, बुद्धि) में रहने वाले पाप मेधावी के दूर हो जाते हैं। तो भी यदि ग्राहि पकड़ ले तो विद्वान् उसे वेदज्ञान से नष्ट करें ।

अनुवाक १२, सूक्त ११४–१२४

विषय– देव विद्वद्विद्या०, विद्या-प्रशंसादि०, अनणपापनिवारणार्थ प्रार्थनादि०, वैश्वानरेश्वर-सुकृत लोकादि-पदार्थ-विद्या देवाः, पितर इत्यादि। (महर्षि दयानन्द सरस्वती)

सूक्त ११४। विश्वेदेवाः। पाप के त्याग का उपदेश।

१६४३. यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम्। आदित्यास्तस्मान्नो यूयमृतस्यर्तेन मुञ्चत॥१

४४ ऋतस्यर्तेनादित्या यजत्रा मुञ्चतेह नः। यज्ञं यद्यज्ञवाहसः शिक्षन्तो नोपशेकिम॥ २

४५ मेदस्वता यजमानाः स्रुचाज्यानि जुह्वतः। अकामा विश्वे वो देवाः शि०(पूर्ववत्)॥३

हे आदित्य विद्वानो! हम क्रीडा करतेहुए जो देवोंका अनादर करें तो उससे हमें सत्य-धर्मसे छुड़ाओ।१
हे याज्ञिक आदित्यो! तुम यहाँ हमें सत्य-धर्म द्वारा मुक्त करो यदि यज्ञ को सीखते हुए न कर सकें। २
हे निष्काम सब देवो! यदि सीखते हुए पूरा न कर सकें तो भी चिकने चमचे से घी की आहुति दो। ३

सूक्त ११५। विश्वे देवाः। पाप से बचना।

४६ यद्विद्वांसो यदविद्वांस एनांसि चकृमा वयम्। यूयं नस्तस्मान्मुञ्चत विश्वेदेवाः सजोषसः॥१

४७. यदि जाग्रद्यदि स्वपन्नेन एनस्योकरम्। भूतं मा तस्माद्भव्यं च द्रुपदादिव मुंचताम्॥२

४८. द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नात्वा मलादिव। पूतं पवित्रेणेवाज्यं विश्वे शुम्भन्तु मैनसः॥३

हे सब देवो! यदि हम जाने या अनजाने पाप करें तो तुम सप्रेम होकर हमें उससे छुड़ाओ। १
यदि पापी मैं जागते या सोते पाप करूँ तो खूँटे के समान उस पाप से भूत-भविष्य मुझे छुड़ायें। २
खूँटे से छूटे पशु, मैल से छूटे नहाए मनुष्य, छन्ने से छाने घी के समान मुझे पापसे सब छुड़ायें। ३

सूक्त ११६। वैवस्वत। विशेष धन (कर)-अधीक्षक

४९ यद्यामं चक्रुर्निखनन्तो अग्रे कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया।
वैवस्वते राजनि तज्जुहोम्यथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोअन्नम्॥ १

५० वैवस्वतः कृणवद्भागधेयं मधुभागो मधुना संसृजाति।
मातुर्यदेन इषितं न आगन्यद्वा पितापराद्धो जिहीडे॥

५१ यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः परि भ्रातुः पुत्राच्चेतस एन आगन्।
यावन्तो अस्मान् पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः॥

कृषिशास्त्र के अनुसार पहले ही भूमि अच्छी तरह से खोदते हुए किसान जो नियम बनाएँ तदनुसार वैवस्वत(कर-संग्रहीता) को कर दे दूँ फिर हमारा अन्न यज्ञ-योग्य मधुर हो। १
मधुर अन्न-भागी वैवस्वत हिस्साबाँट करता हुआ अन्न से सम्पन्न करता है। माता का इष्ट अन्न यदि हमें मिले या पिता के प्रति अपराध हो तो पाप है। २
यदि यह पाप माता-पिता-भाई-पुत्र के प्रति हमारे चित्त में आये तो हमारे जितने पितर हैं उन सबका क्रोध कल्याण-कारी हो। ३

सूक्त ११७। अग्नि। ऋण-मुक्ति

१६५२ अपमित्यमप्रतीत्तं यदस्मि यमस्य येन बलिना चरामि ।
इदं तदग्ने अनृणो भवामि त्वं पाशान् विचृतं वेत्थ सर्वान् ॥ १

५३ इहैव सन्त प्रतिदद्म एनज्जीवा जीवेभ्यो नि हराम एनत् ।
अपमित्य धान्यं यज्जघसाहमिदं तदग्ने अनृणो भवामि ॥ २

५४ अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन् तृतीये लोके अनृणाः स्याम ।
ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः सर्वान्पथो अनृणा आ क्षियेम ॥ ३

हे राजन् ! मैं जिस अपमान-जनक ऋणको न चुका पाऊँ और राज-कर से भोजन चलाता सोऊँ तो उसे मैं चुका दूँ क्योंकि तू ही सब बन्धन खोलना जानता है । १

हे ईश्वर ! हम यहाँ रहते हुए ही यह ऋण चुका दें और जीते रहते अन्य जीवों के लिए ऋण अदा कर दें । जो अन्न उधार लेकर खाता हूं उसे वापिस कर ऋण-रहित हो जाऊँ । २

हम इस-दूसरे-तीसरे लोक [बाल-युवा-वृद्ध पन, ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ में ऋण-रहित रहें, जो देवयान-पितृयान मार्ग हैं उनपर हम अनृण होकर चलें । ३

सूक्त । ११८ । अप्सरसौ । २ शक्तियाँ

५५ यद्धस्ताभ्यां चकृम किल्बिषाण्यक्षाणाङ्गत्नुमुपलिप्समानाः ।
उग्रम्पश्ये उग्रजितौ तदद्याप्सरसावनुदत्तामृणं नः ॥ १

५६ उग्रम्पश्ये राष्ट्रभृत्किल्विषाणि यदक्षवृत्तमनु दत्तं न एतत् ।
ऋणान्नो नर्णमेर्त्समानो यमस्य लोके अधिरज्जुरायत् ॥ २

५७ यस्मा ऋणं यस्य जायामुपैमि यं याचमानो अभ्यैमि देवाः ।
ते वाचं वादिषुर्मोत्तरां मद्देवपत्नी अप्सरसावधीतम् ॥ ३

इन्द्रियों के नाश के इच्छुक हम यदि दोनों हाथों से पाप करें तो उग्र दो अप्सराएँ (कार्य-कत्री) उग्रम्पश्या-उग्रजित (तीक्ष्ण-दर्शक न्यायालय तीक्ष्ण-धारिका आरक्षी पुलिस) हमारा ऋण दिलायें । १

हे उग्रम्पश्या और राष्ट्रभृत् (उग्रजित पुलिस) ! पाप और इन्द्रिय-दुर्व्यवहार के अनुकूल हमें दण्ड दे। [illegible] से बाँध कर यमलोक[कचहरी] में ले जाये ।२

हे विद्वानो ! मैं जिनका ऋण लूँ या जिनकी पत्नी के पास पहुँचूँ। वे मुझ से उत्तम वाणी न बोलें तो इसे दोनों देव-रक्षक अप्सराएँ (न्यायालय-पुलिस) समझें । ३

सूक्त । ११९ । वैश्वानर । अपराध-स्वीकृति

५८ यददीव्यन्नृणमहं कृणोम्यदास्यन्नग्न उत संगृणामि ।
वैश्वानरो नो अधिपा वसिष्ठ उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥ १

५९ वैश्वानराय प्रति वेदयामि यद्यृणं सङ्गरो देवतासु ।
स एतान् पाशान् विचृतं वेद सर्वानथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ २

६० वैश्वानरः पविता मा पुनातु यत् सङ्गरमभि धावाम्याशाम् ।
अनाजानन्मनसा याचमानो यत् तत्रैनो अप तत् सुवामि ॥ ३

१६५८ हे अग्रणी वैश्वानर उत्तम शासक ! मैं जो ऋण क्रीडा न करते हुए लूँ, न दे पाने पर देने का प्रण करूँ तो तू हमें पुण्य के लोक में उन्नत कर। १

मैं वैश्वानर के लिए बता दूँ जो ऋण-प्रण मैं विद्वानों के मध्य करूं, वह इन सब पाशों को खोलना जानता है, और हम पक्के वचन से बंधे रहें। २

पवित्र वैश्वानर मुझे पवित्र करे, यदि मैं प्रण की आशा पर पानी फेर दूं, अनजाने मन से याचना करता हुआ यदि पाप करूं तो उसे भी दूर करूं। ३

सूक्त १२०। प्रजापति, स्वर्ग

१६६१ यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहिंसिम।
अयन्तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम्॥ १

६२ भूमिर्मातादितिर्नो जनित्रं भ्रातान्तरिक्षमभिशस्त्या नः।
द्यौर्नः पिता पित्र्याच्छम्भवाति जामिमृत्वा माव पत्सि लोकात्॥ २

६३ यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः।
अश्लोणा अङ्गैरह्रुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान्॥ ३

यदि अन्तरिक्ष-पृथिवी-द्यौ के प्राणियों को या माता-पिता की हम हिंसा करें तो यह गृहपति का अग्रणी हमें उस पाप से हटाकर उत्तम पुण्य दशा में पहुंचाये। १

अदीन मातृभूमि हमारी जननी, अन्तरिक्ष भाई, सूर्य पिता है, ये हमें विपत्ति से बचाकर कल्याण कर हों। किसी सम्बन्धी को पाकर मैं पिता के नियमों से गिर न जाऊँ। २

जहाँ अच्छे हृदयवाले सुकर्मा अपने शरीरका रोग छोड़कर अङ्गों से विकृत न होकर अकुटिल,हृष्ट रहते हैं वहाँ स्वर्ग(सुखमय)स्थानमें हम अपने माता-पिता और पुत्रों को देखें।३(आधा ३.२८.५ में भी)

सूक्त १२१। अग्नि। बन्धन से मुक्ति

६४ विषाणा पाशान् वि ष्याध्यस्मद् य उत्तमा अधमा वारुणा ये।
दुःष्वप्न्यं दुरितं निः ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम्॥ १

६५ यद्दारुणि बध्यसे यच्च रज्ज्वां यद् भूम्यां बध्यसे यच्च वाचा। [आधा १६६१ वत्]२

यद्दारुणि बध्यसे यच्च रज्ज्वां यद् भूम्यां बध्यसे यच्च वाचा। प्रेहामृतस्य यच्छतां प्रैतु बद्धकमोचनम्॥ ३

६६ उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके। प्रेहामृतस्य यच्छतां प्रैतु बद्धकमोचनम्॥ ३

६७ विजिहीष्व लोकं कृणु बन्धान्मुञ्चासि बद्धकम्।योन्या इव प्रच्युतो गर्भः पथः सर्वां अनु क्षिय॥४

हे आचार्य ! ईश्वर के दिये जो उत्तम-नीच बन्धन हैं उन्हें दूर करते हुए हमारा बुरा स्वप्न हम से दूर करो, पश्चात् हम उत्तम पुण्य की दशा को प्राप्त हों। १

हे जीव ! जो तू शरीर-प्रकृति-भूमि में वाणी से बाँधा जाता है उससे छुड़ाकर यह घर का रक्षक ईश्वर-आचार्य हमें शुभ कर्म के लोक को ही प्राप्त कराये। २

ऐश्वर्य-युक्त, विशेष सम्बद्ध, प्रसिद्ध दो तारने वाले [प्राण-अपान, शुद्ध विचार-पवित्र प्रेम]जब उदय हों तो वे अमृत [मोक्ष] दें और जीव बन्धन से मुक्ति पाये। ३

[हे जीव!]विशेष चल, दशा सुधार, बँधे अपने को बन्ध से छुड़ा, योनि से बाहर आये बालक-समान सब मार्गों में स्वतन्त्र रह। ४

सूक्त १२२ । प्रजपति । गृहस्थाश्रम

१६६८ एतम्भागम्परि ददामि विद्वान् विश्वकर्मन् प्रथमजा ऋतस्य ।
अस्माभिर्दत्त जरसः परस्तादच्छिन्नं तन्तुमनु सन्तरेम ।। १

६९ ततन्तन्तुमन्वेके तरन्ति येषां दत्तम्पित्र्यमायनेन ।
अबन्ध्वेके ददतः प्रयच्छन्तो दातुं चेच्छिक्षान्त स स्वर्ग एव ।। २

७० अन्वारभेथामनु स रभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।
यद्वां पक्वम्परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दम्पती सं श्रयेथाम् ।। ३

७१ यज्ञं यन्तं मनसा बृहन्तमन्वारोहामि तपसा सयोनिः ।
उपहूता अग्ने जरसः परस्तात् तृतीये नाके सधमादं मदेम ।। ४

७२ शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु पपृथक् सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददातु तन्मे ।। ५

हे विश्वकर्ता ईश्वर! तू ऋत का पहला प्रवर्तक है यह जानता हुआ मैं यह शरीर सौंपता हूं। अपने दिये शरीरको हम बुढ़ापेके बाद तक अच्छिन्न-तन्तु [ईश्वर-यज्ञ-सन्तान]के सहारे पार करें।१
कुछ इन फैले तन्तु के सहारे तर जाते हैं जिन्होंने दान द्वारा पितृ-ऋण चुका दिया है। कुछ निस्सन्तान अनाथों को दान और विद्या दान करते हुए यदि समर्थ रहें तो वह स्वर्ग ही है। २
हे पति-पत्नी! धर्म-कार्य आरम्भ और पूर्ण करते रहो, श्रद्धालु यह लोक पाते हैं। जो आग पका भोजन दोनों को मिले उसकी रक्षार्थ परस्पर आश्रय लो। ३
मैं व्यापक महान् पूज्य यज्ञ-ईश्वर को तप से युक्त होकर मन से प्राप्त होऊँ। हे ईश्वर, बुढ़ापे के बाद बुलाये गये हम तीसरे आनन्द (मोक्ष) में हर्ष-पूर्वक रहें। ४
इन शुद्ध-पवित्र-यज्ञ करनेवाली स्त्रियों को विद्वानों के हाथों में अलग-अलग सौंपता हूं। हे विद्वानो, मैं(अभिभावक)जिस धर्म-कामना से यह तुम्हारा अभिषेक करता हूं उसे महान् ईश्वर मुझे दे। ५

सूक्त १२६ । प्रजापति । मोक्ष

७३ एतं सधस्थाः परि वो ददामि यं शेवधिमावहाज्जातवेदाः ।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्ति तं स्म जानीत परमे व्योमन् ।। १

७४ जानीत स्मैनं परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद लोकमत्र ।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्तोष्टापूर्तं स्म कृणुताविरस्मै ।। २

७५ देवाः पितरः पितरो देवाः । यो अस्मि सो अस्मि ।। ३

७६ स पचामि स ददामि स यजे स दत्तान्मा यूषम ।। ४

७७ नाके राजन् प्रतितिष्ठ तत्रैतत् प्रतितिष्ठतु। विद्धि पूर्तस्य नो राजन्त्स देव सुमना भव ।।५

१६७३ हे साथियो ! मैं तुम्हें वह कोश(आत्म-शक्ति)देता हूं जिसे विद्वान् प्राप्त करे। यज्ञकर्ता का
ल्याण होगा। उस ईश्वर को परम आकाश में अवश्य जानो। १
उसे परम आकाश में व्यापक जानो। हे साथियो ! संसार को उसमें समझो। याज्ञिक कल्याण को
गा। इनके पाने के लिए यज्ञ-परोपकार करो। २
देव [विद्वान्] पितर [पालन-कर्ता] बनें और पितर देव। मैं जो हूँ वह हूँ। ३
वह मैं पकाता-खाता-देता-यज्ञ करता हूँ। यह मैं दान देने से अलग न होऊँ। ४
राजन्-देव ! तू आनन्द में रह; तेरा यह कर्म प्रतिष्ठित हो, हमारा परोपकार जान; प्रसन्न हो। ५

सूक्त १२४। अग्नि। पवित्रता

६७८ दिवो नु मां बृहतो अन्तरिक्षादपां स्तोको अभ्यपप्तद् रसेन।
समिन्द्रियेण पयसाहमग्ने छन्दोभिर्यज्ञैः सुकृतां कृतेन ॥ १
यदि वृक्षादभ्यपप्तद् फलं तद् यद्यन्तरिक्षात् स उ वायुरेव।
यत्रास्पृक्षत् तन्वो यच्च वासस आपो नुदन्तु निर्ऋतिं पराचैः ॥ २
अभ्यञ्जनं सुरभि सा समृद्धिर्हिरण्यं वर्चस्तदु पूत्रिममेव।
सर्वा पवित्रा वितताध्यस्मत् तन्मा तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥ ३

द्यौ और बड़े अन्तरिक्ष से जल का समूह मुझ पर रस के साथ बरसता है। हे अग्नि (ईश्वर) !
इन्द्रिय-दूध-जल-छन्द-यज्ञ-सुकर्मियों के कर्म से संयुक्त रहूँ। १
यदि वृक्ष से गिरा फल है वह, जो अन्तरिक्ष से मिला (वह जल) वायु ही (के समान जीवन) है।
शरीर और वस्त्र पर जो निर्ऋति (मैल) स्पर्श करे तो जल उसे रगड़ने से हटा दे। २
मालिश-अञ्जन-सुगन्धि समृद्धि है, सुवर्ण-तेज पवित्रता है। सब पवित्र पदार्थ हम पर फैले अतः
न निर्धनता सताये और न कंजूसी। ३

ॐ꣸ॐ

अनुवाक १३ सूक्त १२५ से १४२ तक

अनुवाक विषय— वनस्पति-सुवर्ण-रोगनाशार्थादि०, विशल्यौषधिविद्या०, अग्निपदार्थविद्या०, अनु-
आदि-पदार्थविद्या०, मेखलाबन्ध यज्ञोपवीतादि पदार्थविद्या, सीमन्तोन्नयनादि पदार्थविद्या (द०)

सूक्त १२५। सुवीर। युद्ध-रथ

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः।
गोभिः संनद्धो असि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥ १
दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज ॥ २
इन्द्रस्यौजो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः।
स इमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥ ३

यह सूक्त कुछ भेद से ऋ० ६-४७ और यजु २९.५२-५४ में भी है।

१६८१ हे लकड़ी आदि से बना रथ, तू दृढ़ अङ्ग वाला हो हा, हमारा नेता, तारने वाला, सुवीर-युक्त, वाण-वज्रों से तय्यार हो। हमें वीर बना, तुझ पर चढ़ने वाला शत्रु-सेनाओं को जीते। १

इसमें सूर्य-पृथिवी का ओज, वनस्पति(वृक्षों)का, और किरणों से सब ओर ढँके जल का बल लिया गया है। तू इस वज्र रथ को इन्द्र (बिजली) के गुण से जोड़, २

हे दिव्य रथ! तू इन्द्र का ओज, सैनिकों का बल, मित्र-वरुण(आक्सीजन-हाइड्रोजन बमों) का गर्भ केन्द्र है। वह तू हमारे इस ग्राह्य पदार्थ(पेट्रोल आदि) युक्त कर पदार्थों को ले जा। ३

सूक्त १२६। वीर। दुन्दुभि (नगाड़ा)

१६८४ उपश्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते वन्वतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अप सेध शत्रून् ॥ १

८५ आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा अभि ष्टन दुरिता बाधमानः ।
अप सेध दुन्दुभे दुच्छुनामित इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ॥ २

८६ प्रामूं जयाभीमे जयन्तु केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीतु ।
समश्वपर्णाः पतन्तु नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥ ३

हे दुन्दुभि और तत्समान गरजने वाले वीर! तू पृथिवी-द्यौ में जान डाल, जगत् अनेक स्थानों में तेरा आश्रय ले। विजली और वीरों के साथ तू शत्रुओं को दूर से दूर हटा। १

हे दुन्दुभि! तू शत्रु-सेना को रुला, हम में ओज भर, दुःख दूर करता हुआ सब ओर गरज। दुःखद कुत्तों(शत्रुओं) को यहाँ से दूर भगा, तू इन्द्र की मुट्ठी(वज्र) है, हमें दृढ़ कर। २

हे सेनापति! शत्रु-सेना को अच्छे प्रकार जीत, ये वीर जीतें, झण्डे वाला नगाड़ा बजे, हमारे घुड़सवार शत्रु पर टूट पड़ें, हमारे रथी जीतें। ३

सूक्त १२७। प्रजापति। चीपुद्रु औषधि

८७ विद्रधस्य बलासस्य लोहितस्य वनस्पते। विसल्पकस्यौषधे मोच्छिषः पिशितं चन ॥ १

८८ यौ ते बलास तिष्ठतः कक्षे मुष्कावपश्रितौ। वेदाहं तस्य भेषजं चीपुद्रुरभिचक्षणम् ॥ २

८९ यो अङ्ग्यो यः कर्ण्यो यो अक्ष्योर्विसल्पकः। वि वृहामो विसल्पकं विद्रधं हृदयामयम्।
परा तमज्ञातं यक्ष्ममधराञ्चं सुवामसि ॥ ३

हे वनस्पति! तू फोड़े-सन्निपात-रुधिर-विकार-हड्फूटनकी औषधि है, इनका स्वल्प भी शेष न छोड़। १

हे कफ-रोग! जो तेरी दो गिल्टियाँ बगल में निकलती हैं मैं उसकी चीपुद्रु (चीड़वृक्ष)-जटामांसी शिफा औषधि को जानता हूँ। २

जो अङ्गों-कानों-आँखों में विसल्पक रोग (हड्फूटन-ऐग्जिमा) हो हम उसकी और फोड़ों-हृदय रोग विशेष नाश करें और अज्ञात यक्ष्मा रोग को नीचे दबाकर दूर कर दें। ३

समाचार

विश्व वेदपरिषद् की द्विवार्षिक सभा (चुनाव) लखनऊ में दशहरा २६-९-९० को प्रातः ६ से हुई। इससे पहले ७ बजे से यज्ञ और शरीर में जीवात्मा का स्थान विषय पर वेदगोष्ठी हुई।

२३-२६ दिसम्बर १९९० को अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महा सम्मेलन दिल्ली और नैरोबी में होगा।

श्रद्धानन्द का भव्य स्मारक आ. सार्वदेशिक प्र० सभा दिल्ली शीघ्र बनाये, -आ० स० नया बाँस दिल्ली को इस मार्मिक अपील को सभा अवश्य स्वीकार करेगी, यह पूर्ण आशा है। —वीरेन्द्र सरस्वती

चण्डीगढ़ में गुरुदत्त विद्यार्थी-शताब्दी ६-७ अक्टूबर ९० को मनाई जायेगी।

अजमेर में ऋषि-मेला और वेदगोष्ठी परोपकारिणी सभा द्वारा २५-२३ अक्टूबर ९० को होंगी।

विश्व वेदपरिषद् आख्या ४५-४६ वि०

१. स्थापना— २७-१२- १९७५ ई०। निबन्धन (रजिस्ट्रेशन) २७-२-७७, संख्या १६८१/१३०३९२

२. संस्थापक एवं प्रथम सदस्य — श्री वीरेन्द्र शास्त्री। संस्थापक सभापति— डा० सुधीर कुमार गुप्त

३. अध्यक्ष (७५-७८) स्वामी धर्मानन्द सरस्वती, वीरेन्द्र शास्त्री (२६.११.७८-२१.१०.८४)
स्वामी विद्यानन्द सरस्वती (८५), वीरसेन वेदश्रमी (८५-८७), स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती (८७)
स्वामी सर्वानन्द सरस्वती (८८-९०)

४. सदस्य-संख्या — १५८३-१७११, १२६ नये बने। आजीवन ९३, अन्य शुल्क नवीनीकरण से ४७।

५. पत्रव्यवहार—४०८० और २९२० कुल ५००० पत्र भेजे गये और लगभग इतने ही आये।

६-११ दूरभाष-वाचनालय-वेद-विद्यालय-पूर्णिमा-वेद-गोष्ठियाँ-वेदज्योति-परीक्षाएँ पूर्ववत् रहीं। रूपचन्द्र दीपक वेद-विशारद-भूषण में, सन्तराम यादव, वेदप्रिय शर्मा यजुर्वेदाचार्य में उत्तीर्ण हुए।

१२. अधिवेशन — द्विवार्षिक एक, प्रबन्धसमिति के ५ हुए जिनमें निम्नांकित १ बार भी नहीं आये— सर्वश्री जयदत्त शास्त्री, स्वामी सत्यप्रकाश, स्वा० सर्वानन्द।

१३. पुस्तकालय— १००२ पुस्तकें हैं, मूल्य लगभग ३०००) है। नयी ४० क्रय की गयीं।

१४. प्रकाशन— अष्टाध्यायी-वेदार्थपारिजातखण्डन-साम वंश-देवताध्याय-संहितोपनिषद्, कुल ५ ग्रन्थ।

१५. मानद उपाधि 'वेदर्षि वेदाचार्य' आगे लिखे वेदज्ञों को दी गयी— सर्वश्री स्वामी सर्वानन्द, विद्यानन्द, सत्यप्रकाश सरस्वती, आचार्य प्रियव्रत, रामनाथ, विश्वश्रवाः, विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड, हरिशरण, युधिष्ठिर मीमांसक, वीरेन्द्र मुनि, डा० सुधीरकुमार गुप्त।

१६. आय-व्यय — २०४५ में आय ११७३९.५५; ४६ में १२५९८.५० योग २४३३८.०५
,, व्यय ११९५९.८५ ,, ११३५७.५५ ,, २२५१७.४० शेष १८५८.८१

इन में से १६७६.५० रुपये चण्डीगढ़ शाखा पर हमारे शेष हैं और जो हमें प्राप्य हैं, वे हमें दे दें।

१७. अथर्ववेद-प्रकाशन में सहायता—सर्वश्री स्वा० सर्वानन्द १५००) रमेश वर्मा-गङ्गाराम बानप्रस्थी-रमेशचन्द्र चोपड़ा तीनों सौ-सौ, महात्मा आर्यभिक्षु २००) संजय-आभा-आलोक-जया-अक्षय २०००) विद्यावती शास्त्री १५००), मनोरमा १००) वीरेन्द्र दुबे ३२ बाँकेलाल आर्य २०), विमला-गीता-अनिल-विशाल- मयंक ५००), रवीन्द्रनाथ शास्त्री १००)। सबको धन्यवाद।— ओजोमित्र शास्त्री, मन्त्री

पृ.२४ वर्ष १४, अङ्क १० कार्तिक २०४७ ❀ वेद-ज्योति ❀ अक्टूबर ९० ६९२१/६२१ डाक लख २०१

उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार

वर्ष १४ अङ्क १० कार्तिक (शुचि) संवत् २०४७ वि०, प० गुरुदत्त विद्यार्थी शताब्दी

श्रीमन् ! नमस्ते, आपका वर्ष ००-९० को पूर्ण हो चुका है, कृपया वार्षिक शुल्क ३०) शीघ्र भेजिए। उसके मिलने पर ही अगला अंक भेजा जायेगा। अंकों को सँभाल कर रखिये, फिर न मिल सकेंगे। सभी सदस्य, विशेषतः आजीवन संरक्षक अथर्ववेद के प्रकाशन में कृपया आर्थिक सहायता १००) दें।

अष्टाध्यायी, शतपथ, निरुक्त,

अनुवादक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम. ए. काव्यतीर्थ

साम संहितो निषद् ब्राह्मण १०), देवताध्याय १०), शतपथ काण्ड १-२, २०), वेदार्थपारिजात खण्डन २०) सामवंश ब्राह्मण १०), अष्टाध्यायी २०), शतपथ काण्ड ३-४, २०), निरुक्त ३०) अथर्ववेद १००) मगाइये।

—वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, उपाध्यक्ष, ओ३मित्र शास्त्री मन्त्री, विश्ववेदपरिषद्, सी ८१७ महानगर लखनऊ

वैदिक दैनन्दिनी मार्गशीर्ष २०४७ विक्रम

तिथि कृ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ९ १० ११ ११ १२ १३ १४ ३० शु १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ पू

वार श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र

नक्षत्र भ कृ रो मृ आ पु न पु श्ले म पू उ ह चि स्वा वि अनु ज्ये मू पू पू उ श्र ध श पू उ रे अ भ रो

ता. ८ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० दि १ २

प्रेषक— मुद्रक आदर्श प्रेस,
सी ८१७, महानगर, लखनऊ
उ० प्र०, भारत, पिन २२६००६

सेवा में क्रमांक
श्री पुस्तकालयाध्यक्ष
स्थान गुरुकुल कांगड़ी
पत्रालय विश्वविद्यालय पुस्तकालय
पिन
जनपद गुरुकुल कांगड़ी
प्रदेश (हरिद्वार)

ओ३म्

ऋग्वेद
वर्ष १४
अंक ११
अथर्व खंड १२

यजुर्वेद
मार्गशीर्ष २०४७
नवम्बर १९९०

उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार
वेद-मानव-सृष्टि-संवत् १ ९६ ०८ ५३ ०९१, दयानन्दाब्द १६६
शुल्क वार्षिक ३०), आजीवन ३००) विदेश में २५ पौंड, ५० डालर
सम्पादक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती शास्त्री एम. ए. काव्यतीर्थ उपाध्यक्ष विश्व वेद परिषद्
सहायक—विनता शास्त्री, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६ दूरभाष ७३५०१
दिल्ली कार्यालय—श्री पङ्कजयकुमार, मन्त्री, बी६ हिल व्यू वसन्तविहार नयी दिल्ली ५७ दूर० ६०१४५२

सत्यार्थ प्रकाश—मन्त्र-व्याख्या

क्रमाङ्क ६१, ऋषि अघमर्षण देवता भाववृत्तम्, छन्द अनुष्टुप्, स्वर गान्धार, विनियोग सन्ध्या।

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥ ऋ१०.१९०.३

धाता परमेश्वर ने जैसे पूर्व कल्प में सूर्य, चन्द्र, विद्युत, पृथिवी, अन्तरिक्ष आदि बनाये थे, वैसे ही अब बनाये हैं, और आगे भी वैसे ही बनायेगा। (पुनः दुबारा—) धाता परमात्मा ने जिस प्रकार के सूर्य, चन्द्र, द्यौ, भूमि, अन्तरिक्ष और इनमें स्थित सुखविशेष पदार्थ पूर्व कल्प में रचे थे, वैसे ही इस कल्प अर्थात् इस सृष्टि में रचे हैं, तथा सब लोक-लोकान्तरों में भी बनाये हैं, भेद किञ्चिन्मात्र नहीं होता।(८)

वेद का अनर्थ (१६) इन्द्रायेन्दो परिस्रव

में कोई कहानी नहीं
हे इन्दु! तू इन्द्र के लिए बढ़

स्वामी गङ्गेश्वरानन्द उदासीन ने वेदप्रदीप अक्टूबर ९० के अंक में पृष्ठ १८ पर अपनी वेदोपदेश-चन्द्रिका के श्लोक ८६ की व्याख्या में ऋग्वेद ९-११२-१ में सोम राजा और प्रजापति-कन्याओं की कहानी का होना बताया है जो असत्य है। सृष्टि के आदि में ईश्वर-दत्त वेद में कहानी नहीं हो सकती।

इन्द्रायेन्दो परिस्रव १९ मन्त्रों [९-११२ के ४, १३ के ११ और १४ के ४] के अन्त में आया है। इसे विदेशी निरर्थक, या सायण सोम निचोड़ने के समय ध्रुपद राग की टेक और क्षयरोगी दामाद चन्द्र की नीरोगता के लिए प्रजापति की प्रार्थना बतायें किन्तु सच्चा अर्थ महर्षि दयानन्द ने संस्कार-विधि के संन्यास संस्कार में किया है. पाठक वहाँ देखें।

हे जीव, हे संन्यासी! तू ऐश्वर्य बढ़ा। —वी० स०

हे इन्दु परमात्मन्! तू जीव के लिए ऐश्वर्य बढ़ा। — अथर्व वेद

साम वेद

दयानन्दीय मान्त्रिक व्याख्यान और वैदिक स्वर

डा. सुधीर कुमार गुप्त, निदेशक भारतीमन्दिर अनुसन्धानशाला, ए-१, वेदसदन,
विश्वविद्यालय-पुरी, गोपालपुरा मार्ग, जयपुर— ३०२०९ [राज.]

पिछले कुछ मासों से श्री राजवीर शास्त्री और डा. वेदपाल वर्णी ने स्वर-विषयक हमारे लेख 'वैदिक स्वर और वेदार्थ' के आधार पर हमें ऋषि दयानन्द और उनके द्वारा मान्य पूर्वतर ऋषि-आचार्यों आदि की अवमानना और विरोध करने का दोषी घोषित किया है। अतः सर्वश्री युधिष्ठिर मीमांसक, राजवीर शास्त्री, वेदपाल वर्णी आदि के विचार-समाधान-निमित्त दयानन्द-भाष्यगत अर्थों के साथ कुछ मान्त्रिक पद यहाँ प्रस्तुत करते हुए अनुरोध है कि दयानन्दीय व्याख्यान को अंकित स्वर से संगत लगाने का अनुग्रह करें। अपने समाधान में वे न व्यत्यय का आश्रय लें और न प्रकरणादि की बात करें।

१. अकृत ऋ ५-३४-८ करोति। अकृतः १-६३-४ कृतसि। अकृतम् ६-१८-१५ अक्रियमाणं कर्म ये तीनों पद आद्युदात्त अर्थात् 'अ' उदात्त वाले हैं। रूप भी तीनों का लगभग एक ही है। अंकित स्वर से अर्थ और क्रियात्व आदि का बोध कैसे होता है ?

२. अक्तः अक्तम् अक्ता। ये तीनों पद अन्तोदात्त हैं और एक ही धातु से निष्पन्न हैं। ऋषि ने इनके युक्त, रात्रि, प्रसिद्ध और सम्बद्ध आदि अर्थ किए हैं। प्रकरण-ज्ञान के बिना स्वर से इन अर्थों का बोध कैसे होता है ?

३. अक्षित्यै यजु ६-२८ परिपूर्ण होने के लिए; अक्षिति ऋ १-४०-४ अविद्यमाना क्षितिः क्षयो यस्य तत् पहले में नञ् तत्पुरुष समास है और दूसरे में बहुव्रीहि। दोनों आद्युदात्त हैं। स्वर से दोनों में भेद का बोध कैसे होता है ?

४ अख्यम् ऋ० १-१०६-१ अन्यान् प्रति कथयेयम्, अख्यम् ऋ ५-४८-४ कथनीयम्

पहले में पूर्व मन्त्र में 'हि' पद होने से आद्युदात्त है। दूसरा, यजु ४-२३ में प्रयुक्त क्रियापद अख्ये के समान, सर्वानुदात्त है और इस कारण पाणिनि के तिङ्ङतिङः सूत्र की परिधि में आता है। इसके विशेषण के रूप में और अख्यम् (आद्युदात्त) के क्रियावत् व्याख्यान का भेद अंकित स्वरों के आलोक में व्याख्येय है।

५, अगन् ऋ १-१६४-३७ समन्तात्प्राप्ताः। अगन् ऋ ३-६७-१० प्राप्नुवन्ति। अत्र लडर्थे लुङ्।
अगन् ऋ १-१२३-२ गच्छति [लङ् प्रथम पुरुष एक वचन]
-- यहाँ आद्युदात्त अगन् १-१६४-३७ के व्याख्यान में दयानन्द-भाष्य में वैदिक कोष के अनुसार 'अत्र लडर्थे लुङ्' लेख है, और वेदार्थकोष के अनुसार ३-३७-१० में। मेरे संग्रह के संस्करणों में दोनों ही स्थलों पर यह पाठ नहीं है। इन कोषों के लेख के आधार पर यह मान लेते हैं कि पहले मूल में इन दोनों में से किसी स्थल पर अथवा दोनों ही स्थलों पर यह पाठ रहा होगा। ऋ० १-१२३-२ में सर्वानुदात्त अगन् की लङ् के एकवचन की व्याकरण की प्रक्रिया प्रदर्शित की गयी है। प्रश्न यह है कि इन दोनों में ही स्वर के आलोक में लकार के भेद का ज्ञान कैसे होता है ? (शेष पृष्ठ २३ पर)

उसको सीसा से मारा । अतः कोमल उसने वेग-रहित को पूरे बल से मारा । अत; हिरण्य-रूप कुछ योग्य नहीं जैसे उसने दुष्ट राक्षस मारे वैसे ही यह मारता है। १०

अब इसी यह यजु १०-१५ पढ़ कर चीते के चर्म पर चढ़ाता है। —

सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयात् । मृत्योः पाह्योजोऽसि सहोऽस्यमृतमसि ॥

[तू ऐश्वर्य की दीप्ति है, तेरे समान मेरी दीप्ति हो, ओज-बली-अमृत है मुझे मौत से बचा।]

जहाँ सोम इन्द्र से आगे निकला कि चीता बन गया अतः सोम को दीप्ति कहा । यह कहकर इसमें चीता की दीप्ति को ही धारण कराता है । ११

अब 'मौत से बचा' कहकर सोना नीचे निकट रखता और इसे अमृत-आयु में रखता है। १२

रुक्म शत या नौ वितृण्ण (छिद्र कैरेट) का होता है। यदि शत का हो तो यह पुरुष शतायु-शततेज-शतवीर्य बने । यदि ९ का हो तो पुरुष के नवों प्राण पुष्ट बनें । १३

तू ओज आदि है कहकर रुक्म सिर पर रखता और इस में अमृत-आयु धारण कराता है । वह ऊपर-नीचे दोनों ओर सोना रखकर आयु के अमृत से ही दोनों ओर से बढ़ाता है। १४

यजु १०-१६ का यह मन्त्र पढ़कर उसकी बाहें खड़ी करता है—

हिरण्यरूपा उषसो विरोक उभाविन्द्रा उदिथः सूर्यश्च ।
आ रोहतं वरुण मित्र गर्तं ततश्चक्षाथामदितिं दितिं च ॥

बाहें ही मित्र-वरुण हैं, पुरुष गड्ढा है अतः कहा— हे पुरुष ! बाहें खड़ी कर, और तब अपने-पराये को देख । १५

बाहें मित्रो असि वरुणो असि कहकर खड़ी करे, वे मित्र-वरुण हैं जिन से क्षत्रिय मैत्रावरुण है। १६

बाहु खड़े किये हुए का अभिषेक करता है । ये क्षत्रियका वीर्य हैं और अभिषेकार्थ एकत्रित जल भी वीर्य है, कहीं दोनों टकरा न जायें अतः बाहु खड़े करा कर अभिषेक करता है। १७ ❋

शतपथ ब्राह्मण काण्ड ५, अध्याय ४

ब्राह्मण २

अभिषेक

पूर्वाभिमुख बैठे राजा का पहले ब्राह्मण अध्वर्यु या जो इस का पुरोहित हो, अभिषेक करता है, पीछे अन्य, । १

सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभिषिञ्चाम्यग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेण क्षत्राणां क्षत्रपतिरेध्यतिदिद्यून् पाहि ॥ (यजु १०.१७) [मैं तुझे सोम-अग्नि-सूर्य-बिजली के वीर्य से अभिषिक्त करता हूं। तू राजाओं का अधिराजा हो, बाण-पीडितों की रक्षा कर । २

इमं देवाः० आदि य १०.१७ [पहले ५-३-३-१२ में य ९.४० पृष्ठ ४४७ पर आचुका है] । ३

अब इस अभिषेक को काले सींग से रगड़ता है क्योंकि यह अभिषेक में प्रयुक्त एकत्रित जल का रस वीर्य है यह सब मुझ में समा जाये अतः उसे मलता है । ४

वह मलता है— प्र पर्वतस्य वृषभस्य पृष्ठान्नावश्चरन्ति स्वसिच इयानाः ।
ता आववृत्रन्नधरागुदक्ता अहिं बुध्न्यमनु रीयमाणाः ॥ (य १०.१९)

[वर्षक मेघ के नीचे स्वचालित विमान चलते हैं, वे मेघों के ऊपर गति करते हुए छा जाते हैं।]

जैसे यह पर्वत अति स्थिर है, जैसे साँड पशुओं में अति बली है वैसे ही यह सबमें बड़ा हो, राज-सूत्र-कर्ता से यह सब नीचे ही होता है। ५

अब चीता के चर्म पर य १०-१६ पढ़ कर ३ पग चलाता है—

विष्णोर्विक्रमणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि विष्णोः क्रान्तमसि ॥

ये लोक विष्णु के विक्रमण,-विक्रान्त-क्रान्त हैं, उन्हीं लोकों पर चढ़ कर यह सब ऊपर-ऊपर हो जाता है और अन्य उससे नीचे। ६

अब ब्राह्मण के पात्र में संस्रवों को देता है जिसे यह राजा को अनुयश करता है अतः ब्राह्मण राजा का अनुयश है। ७

यह उसे अपने प्रियतम पुत्र को देता है कि यह मेरा पुत्र मेरे वीर्य को आगे बढ़ाये। ८

अब गार्हपत्य के पास लौट कर उसे प्रज्वलित कर यजु १०-२० से आहुति देता है—

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्त्वयममुष्य पितासावस्य पिता वयं स्याम पतयो रयीणाम् स्वाहा ॥

जो पुत्र है उसे पिता करता है और जो पिता है उसे पुत्र। और दोनों के वीर्य को बदल कर फिर यथापूर्व करके आशीर्वाद देता है, जिसकी यह आशा करता है। ९

अब जो यह संस्रव अतिरिक्त होता है, आग्नीध्रीय में आहुत कर देता है वह भी अतिरिक्त है गार्हपत्य में हव्यायाँ पकाता, आहवनीय में आहुति देता, अब यह अतिरिक्त है जिसके अर्थ में आहुति देता है क्योंकि यह उस रुद्र देवकी दिशा है- रुद्र यत्ते क्रिवि परं नाम तस्मिन्हुतमस्यमेष्टमसि स्वाहा। १०

ब्राह्मण ३

रथ को पास लाना

अपने जन के पास १०० या अधिक गौएँ आहवनीय के उत्तर में रखता है। १

अभिषेक-समय वरुण का इन्द्रिय-वीर्य निकल गया, राजा के अभिषेक-काल में जो जल का रस एकत्र होता है वह पशुओं में गया जानकर जैसे वह पुनः अपने में रखता है वैसे यहाँ भी। राजसूय वरुण का यज्ञ है जैसे उसने किया था वैसे यह करता है। २

अब यजु १०-२१ पढ़ कर रथ लाता है जिससे दूर तक पहुँचता है—३

इन्द्रस्य वज्रोऽसि मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युनज्मि।

अव्यथायै त्वा स्वधायै त्वारिष्टोऽर्जुनो मरुतां प्रसवेन जयापाम मनसा समिन्द्रियेण ॥

तू इन्द्र (यजमान) का वज्र (रथ) है। यजमान-क्षत्रिय इन दो से इन्द्र होता है। ४

इसे अन्तर्वेदी में ले जाकर जोड़ता है। तुझे प्रशासक मित्र-वरुण (बाहों) के शासन से जोड़ता हूं। ५

उसमें ४ अश्व जोड़ता है। वह पैदल सदः के आगे जिधर से शाला के दक्षिण जाते हैं उधर से चात्वाल के आगे आग्नीध्र तक पहुँचता और रथ पर बैठता है। ६

अव्य । और रथ के लिए अर्जुन (इन्द्र का गुह्य नाम) यजमान नीरोग है। ७

दाहिने जुट के पास बोलता है- मरुतों (वैश्यों) के संसार में जीत। जयेच्छु क्षत्रिय वैश्यों को जीतता है। ८

(बैलों के पास बोलता है- हमने मन से पा लिया। मन से ही यह सब पाया जाता है। ९

अब धनुष-कोटि से यजु १०-२१ पढ़ कर गौ को छूता है— समिन्द्रियेण ॥
इन्द्रिय-वीर्य गौएँ हैं उन्हें अपने में धारण करता है। अब कहता है- इन्हें पालन करें। १०
अपनी गौओं में से देता है क्योंकि जब पुरुषों से दूर होता है तो यश या जो कुछ इस में कम हो जाता है, उसे अपनों से ही लेकर पूरा करता है।११
उन्हें उतनी या अधिक वापस कर देता है। जब यजमान कहता है कि मैं इनका उपयोग करूँगा तो वह कोई क्रूर कर्म नहीं करता ; उतनी या अधिक वापस कर देता है। १२
अब दक्षिण ओर आता है। यूर के आगे दक्षिण ओर से सदः के आगे से शाला आता है। १३
मा त इन्द्र ते वयम्। तुराषाडयुक्तासो अब्रह्मता विदसाम।
तिष्ठा रथमधियं वज्रहस्ता रश्मीन् देव यमसे स्वश्वान् ॥
यह पढ़कर रासों को खोल देता है। अब रथ-विमोचनीय आहुतियाँ देता है कि प्रसन्न होकर मुक्त हो-
अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहा मरुतामोजसे स्वाहेन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा। (य १०.२३)
जो रथ का आग्नेय भाग, या वाहक आग्नेय हैं वे प्रसन्न हों। श्री इसके गार्हपत राज्य को, जितने-जितने का यह ईश होता है, युक्त होती है।१५
दो वनस्पति के बने हैं, रथ के पहिए और अनस, दोनों को यह ठीक करता है। सोम ही वनस्पति रथ के लकड़ी के अंश ठीक रखता है। सोम-क्षत्र राज्य का क्षात्र-बल बढ़ाता है। १६
रथ के मारुत अंश, ४ अश्व, ५वाँ रथ, ६ठे-७वें दो सारथि ये ७-७ मारुत गण हैं, वे और प्रजा राज्य को ठीक रक्खें। १७
इन्द्र वामस्थ सारथि को प्रसन्न करता और राज्य में इन्द्रिय-शक्ति बढ़ाता है। १८
अब वाराही उपानह से छूटता है। देवोंने आगमें घी का कुम्भ प्रविष्ट किया जिससे वराह (मेघ) हुआ घी से पुष्ट मेघ में किरणें और यह अपना रस छिपाता है, पशुओं के ही रस पर रहता है। १९
अब इस पृथिवी को देखता हुआ जपता है— पृथिवि मातर्मा मा हिंसीर्मो अहन्त्वाम् ॥(य १०.२३)
अभिषिक्त होते वरुण से भूमि और भूमि से वरुण डरे कि ये तो बड़े हुए, कहीं हमें कष्ट न दें। इसलिए इस मन्त्र से मैत्री की। माँ-पुत्र परस्पर नहीं मारते। २०
यह राजसूय वरुण-यज्ञ है, यहाँ भी परस्पर डरते हैं अतः यह मन्त्र जपता है। २१
हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद् धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद् वरसद् ऋतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहद् ॥(यजु १०.२४)
इस अतिछन्द को जपता हुआ पापी नहीं होता। अतिछन्द में सभी छन्द आ जाते हैं। २२
उसके साथ पीछे संग्रहीता न बैठे, नहीं तो उस लोक में पहुँचेगा जहाँ सुप्रेरित पहुँच जाता है। रथसहित उसे सारथि सहारा दिये रहता है जिससे गिरता-साता नहीं। २३
आहवनीय के उत्तर, पूर्वाग्नि उठता है; सारथि के दक्षिण जाकर दो शतमान पूवृत्त बाँधता है। २४
गूलर-शाखा को लपेटता है। दोनों में से एक को यजु १०.२५ पढ़कर छूता है—
इयदस्यायुरस्यायुर्मयि युङ्ङसि वर्चा असि वर्चो मयि धेह्यूर्गस्यूर्जं मयि धेहि।
इन्द्रस्य वां वीर्यकृतो बाहू अभ्युपावहरामि ॥ २५
इस प्रकार अपने में आयु-वर्च-ऊर्जा धारण करता है। २ शतमान दक्षिणा ब्रह्मा को देता है। २६
मैत्रावरुण के धिष्ण्य के आगे रक्खी उसकी पशु-रस पयस्या (खीर) को बाहों से लेता है। २७।❀

शतपथ कांड५, अध्याय४, ब्राह्मण४, (राजसूय यज्ञ)

पयस्या का प्रचार

यह मैत्रावरुणी पयस्या को बाँटता है। उसके अनिष्ट में ही स्विष्टकृत् होता है। अब इसके लिए गद्दी को लाते हैं। वह इससे ऊपर अन्तरिक्ष में स्थित को जीतता है, प्रजा इसकी उपासना करती है। यह खैर कीचौड़ी, चर्म-रस्सियों से भरतों का बुनी होती है। १

उसे मैत्रावरुण के धिष्ण्य के आगे अध्वर्यु रखता, चादर बिछाता और राजा बैठता है— २-३

स्योनासि सुषदासि क्षत्रस्य योनिरसि। स्योनामासीद सुषदामासीद क्षत्रस्य योनिमासीद ॥(य॰१० .२६)

(हे रानी और गद्दी !)तू कल्याण-कारिणी, सुखदा, क्षात्र-बल का स्थान है, राजन् ! उसे पा । ४

इस बीच में यजु १०-२६ विचार कर जपता है—

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥

व्रतधारी राजा, न नत्र के लिए कथन-कर्म से, अपितु जो ही ठीक कहे-करे उनके लिए यह और श्रोत्रिय ये ही दो मनुष्यों में व्रतधारी हैं। प्रजाओं में राज्य के लिए राजा श्रेष्ठ -कर्मा है। ५

अब इस के हाथ पर ५ अक्ष यजु १०.२८ पढ़कर रखता है—

अभिभूरस्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्ताम्। ब्रह्मंस्त्वं ब्रह्मासि सवितासि सत्यप्रसवो वरुणोसि सत्यौजा इन्द्रोसि विशौजा रुद्रोसि सुशेवः। बसुकार श्रेयस्कर भूयस्करेन्द्रस्य वज्रोसि तेन मे रध्य ॥

यह कलि गतिशील तिरस्कर्ता है। ५ दिशाएँ हैं। उन्हें विजय कराता है। ६

अब इसे पीठ पर धीरे से डण्डा से मार कर बताते हैं कि अनुचित करने पर यह भी दण्ड्य है। ७

अब वर देता है। सुप्रेरित होकर दिया वर समृद्धि करता है। ८

पहले ब्रह्मा से कहता है कि पहले ब्रह्म कहूं, ब्रह्म से उत्पन्न वाणी कथन करूँ। हे ब्रह्मन् ! तू ब्रह्मा है, वह बदले में कहता है- तू सत्यप्रेरक सविता बन। यह कहकर वीर्य धारण करा सविता बनाता है।९

दूसरे से – हे ब्रह्मन् ! तु ब्रह्मा है। दूसरा— सच्चा वरुण बन, ,, वरुण ।१०

ऐसे ही तृतीय बदले में कहता है— प्रजाशक्तिवाला इन्द्र बन। ,, इन्द्र ।११

,, चौथा ,, शामक रुद्र ,, ,, रुद्र ।१२

,, पाँचवाँ ,, अनिरुक्त ,, ,, अनिरुक्त ।१३

अब सुमङ्गल नामक को बुलाता है— बहुकार-श्रेयस्कर-भूयस्कर ! ऐसे नामवाले का कल्याण होताहै।१४

अब ब्राह्मण अध्वर्यु या पुरोहित उसे स्फ्य (वज्र भाला) देता है, और अपने से कम बली करके शत्रुओं से अधिक बली बनाता है। १५

उसे राजा भाई के लिए देकर अपने से अबली बनाता है। १६

राज-भ्राता स्फ्य सूत या शिल्पी के लिए देकर अपने से अबली बनाता है। १७

वह ग्रामणी ,, । १८

ग्रामणी सजाति ,, । ऐसे न करें तो पापी हों। १९

अब सजाति और प्रतिप्रस्थाता स्फ्य से पूर्वाग्नि में शुक्र के पुरोरुक् से अधिदेवय करते हैं। अक्ष ही शुक्र है, उसी के लिए करते हैं। २०

सूक्त १२८ । शकधूम । शक्ति से कँपाने वाला राजा

१६६०. शकधूमं नक्षत्राणि यद्राजानमकुर्वत । भद्राहमस्मै प्रायच्छन्निदं राष्ट्रमसादिति ॥ १

६१ भद्राहं नो मध्यन्दिने भद्राहं सायमस्तु नः।भद्राहंनो अह्नां प्राता रात्रो भद्राहमस्तु नः॥२

६२ अहोरात्राभ्यां नक्षत्रेभ्यः सूर्याचन्द्रमसाभ्याम्।भद्राहमस्मभ्यं राजञ्छकधूम त्वं कृधि ॥ ३

६३ यो नो भद्राहमकरः सायं नक्तमथो दिवा । तस्मै ते नक्षत्रराज शकधूम सदा नमः ॥ ४

नक्षत्रवत् निर्बल प्रजा ने शक्ति से शत्रु ! कँपाने वाला चन्द्रवत् राजा चुना, इस के लिए शुभ दिन दिया कि उसका ही यह राष्ट्र बन जाये ।१

हमारे लिए दोपहर-शाम-प्रातः-रात्रि भद्रा कल्याण-कारी शुभ हों । २

हे शकधूम राजन्, तू दिन-रात-नक्षत्र-सूर्य-चन्द्र को हम रे लिए शुभ बना । ३

हे शकधूम चन्द्रवत् राजन्, हमारे लिए शाम-रात-दिन को शुभ बनाने वाले तुझे नमः हो । ४

सूक्त १२९ । इन्द्र । ऐश्वर्य-प्राप्ति

६४ भगेन मा शांशपेन साकमिन्द्रेण मेदिना । कृणोमि भगिनं माप द्रान्त्वरातयः ॥ १

६५ येन वृक्षाँ अभ्यभवो भगेन वर्चसा सह । तेन मा भगिनं कृणु अप द्रान्त्वरातयः ॥ २

६६ यो अन्धो यः पुनः सरो भगो वृक्षेष्वाहितः । तेन ० (पूर्ववत्) ॥ ३

मित्र इन्द्र (ईश्वर-राजा-बिजली) के साथ मैं अपने को शंशपा वृक्ष वत् शान्ति के स्पर्श से ऐश्वर्य-शाली करूँ, कृपणताएँ दूर हों । १

शशपा जिस ऐश्वर्य-तेज से अन्य वृक्षों से बढ़ जाता है उसी से मुझे ऐश्वर्य-शाली बना, शत्रु दूर हों । २

जीवन-आधार बढ़ाने वाला जो ऐश्वर्य पेडों मे रक्खा है उससे मुझे युक्त कर, ,, । ३

सूक्त १३० । स्मर । स्मरण-शक्ति

६७ रथजितां राथजितेयीनामप्सरसामयं स्मरः । देवाः प्रहिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥१

६८ असौ मे स्मरतादिति प्रियो मे स्मरतादिति । देवाः० (पूर्ववत्) ॥ २

६९ यथा मम स्मरादसौ नामुष्याहं कदा चन । देवाः० (,,) ॥ ३

१७००. उन्मादयत मरुत उदन्तरिक्ष मादय । अग्न उन्मादया त्वमसौ मामनु शोचतु ॥ ४

रथ(शरीर) से जीती, जीतने योग्य प्राण-व्यापक शक्तियों में एक यह स्मरण-शक्ति है । हे देवो ! तुम इसे बढ़ाओ, यह मुझमें अनुकूल होकर शुद्ध रहे । १

वह(प्रभु)मुझे स्मरण आये, प्रिय(विषय)स्मरण आये, पति-पत्नी परस्पर स्मरण करें, हे देवो० (पूर्ववत्)।२

जैसे वह मेरा स्मरण करे क्या मैं उसका स्मरण कभी न करूँ ? हे देवो ० (पूर्ववत्) । ३

हे वायु-अन्तरिक्ष-अग्नि ! तुम उत्तम रीति से हर्षित करो, वह मुझे अनुकूल होकर शुद्ध करे ।४

सूक्त १३१ । विद्वान् । (स्मरण-प्रेम)

१ नि शीर्षतो नि पत्तत आध्यो३ नि तिरामि ते । देवाः प्रहिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥१

२ अनुमते ऽन्विदं मन्यस्वाकूते समिदं नमः । देवाः० (पूर्ववत्) ॥ २

३ यद्धावसि त्रियोजनं पञ्चयोजनमाश्विनम्।ततस्त्वं पुनरायसि पुत्राणां नो असः पिता ॥३

मैं तेरी सिर से पैरों तक की व्याधि हटाता हूं; हे देवो ! मेरी स्मृति बढ़ाओ, वह मुझे शुद्ध करे । १
हे अनुमति ! तू इसको अनुकूल मान । हे विचार-शक्ति, तुझको नमः हो । हे देवो० ,, । २
यदि तू ३या ५योजन भी अश्व आदि से चला जाये तो भी वापस आ जा,तू हमारे पुत्रों का पिता है ।३

सूक्त १३२ । स्मर । स्मृति

४ यं देवाः स्मरमसिञ्चन्नप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या । तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥१
५ यं विश्वे देवाः० [पूर्ववत्] ॥ २
६ यमिन्द्राणी स्मरमसिञ्चद्० ,, ॥ ३
७ यमिन्द्राग्नी स्मरमसिञ्चताम्० ,, ॥ ४
८ यम्मित्रावरुणौ० , ॥ ५

जिस स्मृति को १. विद्वान्, २. सब देव [प्राकृतिक शक्तियाँ],३. इन्द्राणी[आत्म-शक्ति], ४-५ इन्द्र-अग्नि; ६-७. प्राण-उदान ध्यान के साथ प्रकाशमान करके पूजा में सींचते [बढ़ाते] हैं उसे मैं वरुण के धर्म से तेरे लिए तप से सम्पन्न करता हूँ । १-५

सूक्त १३३ । मेखला

९ य इमां देवो मेखलामाबबन्ध यः संननाह य उ नो युयोज ।
यस्य देवस्य प्रशिषा चरामः स पारमिच्छात् स उ नो विमुञ्चात् ॥ १
१० आहुतास्यभिहुत ऋषीणामस्यायुधम् । पूर्वा व्रतस्य प्राश्नती वीरघ्नी भव मेखले । २
११ मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचन् भूतात् पुरुषं यमाय ।
तमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेणानयैनं मेखलया सिनामि ॥ ३
१२ श्रद्धाया दुहिता तपसोऽधि जाता स्वसा ऋषीणां भूतकृतां बभूव ।
सा नो मेखले मतिमा धेहि मेधामथो नो धेहि तप इन्द्रियं च ॥ ४
१३ यां त्वा पूर्वे भूतकृत ऋषयः परिबेधिरे । सा त्वं परि ष्वजस्व मां दीर्घायुत्वाय मेखले ॥५

१७०६ जो देव [आचार्य] यह मेखला बाँधता, जो तैयार करता, योगी बनाता है, जिस देव की शिक्षा से हम चलते हैं वह हमें पार करने की इच्छा करे और वही हमें मुक्त करे । १
हे मेखला ! गुरु-प्रदत्त, कांट में लपेटी ऋषियों का शस्त्र, व्रत के पहले बाँधी तू वीरों को गति-प्रद हो ।२

मैं पुरुष की आई मौत से बचाता हुआ नियम के लिए ब्रह्मचारी हूँ। मैं उस अपने को ब्रह्म-तप-श्रम और इस मेखला से बाँधता हूँ । ३

हे मेखला ! तू श्रद्धा की पुत्री, तप से उत्पन्न सत्यकर्मी ऋषियों की बहिन है । तू हमें सुमति-मेधा-तप-इन्द्रियशक्ति दे ।

हे मेखला ! जिसे तुझे श्रेष्ठ सत्यकर्मी मन्त्र-दृष्टा बाँधा करते हैं वह तू मुझे लम्बी आयु देने के लिए लिपट । ५

सूक्त १३४ । वज्र

१७१४ अयं वज्रस् तर्पयतामृतस्यावास्य राष्ट्रमप हन्तु जीवितम् ।
शृणातु ग्रीवाः प्र शृणातूष्णिहा वृत्रस्येव शचीपतिः । १
१५ अधरोऽधर उत्तरेभ्यो गूढः पृथिव्या मोत्सृपत् । वज्रेणावहतः शयाम् ॥ २
१६यो जिनाति तमन्विच्छ योजिनाति तमिज्जहि।जिनतो वज्र त्वंसीमन्तमन्वंचमनुपातय।३

१७१४ यह सत्य का वज्र(शस्त्र)हमें तृप्त, हृष्ट करें, शत्रु के राष्ट्र और जीवन का नाश करे, शक्ति का पति सूर्य जैसे मेघ को काटता है वैसे ही यह शत्रु की गरदनों-धमनियों को काट दे । १
शत्रु श्रेष्ठों से नीचा-नीचा, भूमि में छिपा रहे, प्रकट न हो, वज्र से ताड़ित हो कर सो जाये । २
हे वज्र ! जो अत्याचार करता है उसे तू ढूँढ़ और मार, अत्याचारी का सिर नीचा कर गिरा । ३

सूक्त १३५ । आत्मा । भोजन

१७ यदश्नामि बलं कुर्व इत्थं वज्रमा ददे । स्कन्धानमुष्य शातयन् वृत्रस्येव शचीपतिः ॥ १
१८यत्पिबामि संपिबामि समुद्र इव संपिबः ।प्राणानमुष्य संपाय सम्पिबामो अमुं वयम्॥२
१९ यद्गिरामि सङ्गिरामि समुद्र इव संगिरः ।प्राणानमुष्य संगीर्य सङ्गिरामोअमुं वयम् ।।३

मैं जो खाऊँ उससे बल बढ़े, शस्त्र ऐसे लूँ कि शत्रु के कन्धे वैसे ही काट दूँ जैसे सूर्य मेघ को । १
जो पान करूँ समुद्रवत् अच्छे प्रकार करूँ, हम इसके तत्त्व चूस कर इसे पियें । २
जो निगलूँ समुद्र के समान निगलूँ हम इसको चबा कर इसका रस निगलें । ३

सूक्त १३६ । नितत्नी औषधि । केश-चिकित्सा

२०देवी देव्यामधिजाता पृथिव्यामस्योषधे।तां त्वा नितत्नि केशेभ्यो दृंहणाय खनामसि।।१
२१ दृंह प्रत्नान् जनयाजातान् जातानु वर्षीयसस् कृधि । २
२२ यस्ते केशोऽवपद्यते समूलो यश्च वृश्चते ।इदं तं विश्वभेषज्याभि षिञ्चामि वीरुधा ॥ ३

हे भूमि में पैदा देवी (सौराष्ट्र-मिट्टी, नितत्नी [काकमाची-काकादनी-जीवन्ती-भृङ्गराज] औषधि ! हम तुझे केश दृढ़ करने के लिए खोदते हैं । १
तू पुराने केश दृढ़ कर, न पैदा हुओं को पैदा कर और पैदा हुओं को लम्बा कर । २
तेरा जो केश झड़ जाये और जो जड़-सहित गिर जाये उसे मैं वैद्य विश्व-भेषजी जड़ी से सींचूँ । ३

सूक्त १३७ । नितत्नी

२३ यां जमदग्निरखनद् दुहित्रे केशवर्धनीम् । तां वीतहव्य आ भरदसितस्य गृहेभ्यः ॥ १
२४ अभीशुना मेया आसन् व्यामेनानुमेयाः।केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताःपरि।२
२५ दृंह मूलमाग्रं यच्छ वि मध्यं यामयौषधे । केशाः° (पूर्ववत्) ॥ ३

जिस केशवर्धनी को दीप्ताग्नि गृहस्थ पुत्री के लिए खोदता है उसे हव्य-प्राप्त नील के घरोंसे लाता है । १
तेरे सिर के उँगली से नापने-योग्य काले केश बाँह से नापने-योग्य हों, नरकटों के समान बढ़ें । २
हे औषधि ! तू केशों की जड़ दृढ़ कर, अगला भाग बढ़ा, मध्य भाग सुगठित कर । ३

सूक्त १३८, औषधि और इन्द्र (वैद्य)

१७२६ त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमाभिश्रुतास्योषधे । इमम्मे अद्य पूरुषं क्लीबमोपशिनङ्कृधि ॥ १
२७ क्लीबङ्कृध्योपशिनमथो कुरीरिणङ्कृधि । अथास्येन्द्रो ग्रावभ्यामुभे भिनत्त्वाण्ड्यौ ॥ २
२८ क्लीब क्लीबन्त्वाकरं वध्रे वध्रि त्वाकरमरसारसं त्वाकरम् ।
कुरीरमस्य शीर्षणि कुम्बं चाधि नि दध्मसि ॥ ३
२९ ये ते नाड्यौ देवकृते ययोस्तिष्ठति वृष्ण्यम् । ते ते भिनद्मि शम्ययामुष्या अधि मुष्कयोः ॥ ४
३० यथा नडङ्कशिपुने स्त्रियो भिन्दन्त्यश्मना । एवा भिनद्मि ते शेपोऽमुष्या अधि मुष्कयोः ॥ ५

हे औषधि ! तू वनस्पतियों में श्रेष्ठतम प्रसिद्ध है, मेरे इस निर्बल पुरुष को सदा उपयोगी बना । १
निर्बलको उपयोगी और कर्मशील बना, वैद्य पत्थरवद् यन्त्रों से इसके अण्डों की शल्य-क्रिया करे । २
हे निर्बल-बन्धक-अरस-कारी रोग, तुझी को मैं निर्बल-बन्धक-अरस बना दूँ, इस स्वस्थ के सिर पर कर्म-सामर्थ्य और पगड़ी आदि आभूषण हम धारण करायें । ३
(हे रोगी !) जो तेरी दो नाड़ियाँ उन्माद-पीड़ित हैं, जिनमें ढीलापन है, उन्हें शम्या यन्त्र से, उस नीरोग नाड़ी से अलग, दोनों अण्डकोशों की शल्यक्रिया (हायड्रोसील का आपरेशन) करता हूँ । ४
जैसे स्त्रियाँ नरकट को चटाई आदि बनाने के लिए पत्थर से कूटती हैं वैसे ही मैं वैद्य रोगी के उस नीरोग नाड़ी से अलग, तुझ रोगी की अण्डकोशों की शल्य-क्रिया करता हूँ । ५

सूक्त १३९ । दम्पती । कल्याणी मापपर्णी औषधि

३१ न्यस्तिका रुरोहिथ सुभगङ्करणी मम । शतन्तव प्रतानास्त्रयस्त्रिंशन्नितानाः ।
तया सहस्रपर्ण्या हृदयं शोषयामि ते ॥ १
३२ शुष्यतु मयि ते हृदयमथो शुष्यत्वास्यम् । अथो नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ॥ २
३३ सं वननी समुष्पला बभ्रु कल्याणि संनुद । अमूं च मां च संनुद समानं हृदयङ्कृधि ॥ ३
३४ यथोदकमपपुषोऽपशुष्यत्यास्यम् । एवा नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ॥ ४
३५ यथा नकुलो विच्छिद्य संदधात्यहिं पुनः । एवा कामस्य विच्छिन्नं सं धेहि वीर्यावति ॥ ५

१७३१ हे औषधि और विद्या ! तू गार्हस्थ्य-दोष-नाशक, मेरा सौभाग्य करने वाली होकर बढ़ । तेरी सैकड़ों शाखाएँ और ३३ (देवता) जड़ें हैं । १
[हे पत्नी !] मुझमें तेरा हृदय और मुख सूख जाये, मुझे काम से सुखा, तू सूखे मुखवाली घूम । २
हे भूरी कल्याणी [माषपर्णी] ! प्रेम-उत्साह-वर्धक तू उसे और मुझे प्रेरणा दे, हृदय समान कर । ३
हे पत्नी ! जैसे जल न पीने वाले का मुख सूखता है वैसे मुझे काम से सुखा, शुष्क-मुख विचर । ४
हे बलवती ! जैसे नेवला साँप को छिन्न कर फिर जोड़ता है ऐसे ही तू काम से छिन्न मुझे जोड़ । ५

सूक्त १४० । दो बड़े दाँत । अन्नप्राशन और मांस-त्याग

३६ यौ व्याघ्राववरूढौ जिघत्सतः पितरं मातरं च । तौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौ कृणु जातवेदः ॥ १
३७ व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिलम् ।
एष वां भागो निहितो रत्नधेयाय दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥ २

१७३८ उपहूतौ सयुजौ स्योनौ दन्तौ सुमङ्गलौ ।
अन्यत्र वां घोरं तन्व१: परैतु दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥ ३

जो व्याघ्र नामक चीरने-फाड़ने वाले दो दाँत बचपन में माता-पिता को काटना और बड़ी आयु में नर-मादा पशु-पक्षियों को खाना चाहते हैं उन्हें हे वेदज्ञ विद्वान्, तू कल्याणकारी बना। १

[हे दाँतो !] चावल-जौ-उड़द-तिल आदि खाओ, तुम्हारा यह भाग उत्तम रत्न पाने के लिए रक्खा गया। पिता-माता को न काटो (नर-मादा की हिंसा न करो)। २

समान जुड़े सुखकर दो दाँत सुखप्रद-मङ्गलकारी हों। हे दाँतो ! तुम्हारा घोर कर्म (काटना और मांस खाना) शरीर से अलग हो, पिता-माता को न काटो, नर-मादा की हिंसा न करो। ३

सूक्त १४१ । आचार्य माता-पिता । नामकरण-कर्णवेध-उपनयन

३९.वायुरेनाःसमाकरत्त्वष्टा पोषाय ध्रियताम्।इन्द्र आभ्यो अधि ब्रवद्रुद्रो भूम्ने चिकित्सतु॥१

४०.लोहितेन स्वधितिना मिथुनङ्कर्णयोःकृधि।अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु ॥ २

४१. यथा चक्रुर्देवासुरा यथा मनुष्या उत । एवा सहस्रपोषाय कृणुतं लक्ष्माश्विना ॥ ३

वायु (पिता)इन सन्तानों को(प्राणायाम से) ठीक करे, माता त्वष्टा निर्मात्री होकर पोषण के लिए इन्हें रक्खे, इन्द्र (आचार्य) इन के लिए उपदेश करे, रुद्र (वैद्य) वृद्धि के लिए चिकित्सा करे। १

सन्तान के दोनों कान तपाकर लाल की गयी सुई से या स्वर्ण-शलाका से छेदे। माता-पिता ऐसा नाम रक्खें कि वह सन्तान को बहुत लाभकारी हो। २

हे माता-पिता ! विद्वान्-बलवान्-मननशील जैसा नाम रखते हैं वैसा ही सन्तानों का नाम तुम उनके हजारों प्रकार के पोषण के लिए रक्खो। ३

सूक्त १४२ । यव । अन्न की वृद्धि

४२.उच्छ्रयस्व बहुर्भव स्वेन महसा यव।मृणीहि विश्वा पात्राणि मा त्वा दिव्याशनिर्वधीत्।१

४३. आशृण्वन्तं यवन्देवं यत्र त्वाच्छावदामसि । तदुच्छ्रयस्व द्यौरिव समुद्र इवैध्यक्षितः ॥ २

१७४४.अक्षितास्त उपसदोऽक्षिताःसन्तु राशयः । पृणन्तो अक्षिताःसन्त्वत्तारः सन्त्वक्षिताः ॥३

हे जौ आदि अन्न ! तू अपनी महिमा से ऊपर उठ, बढ़, बहुत हो और सब पात्रों को भर दे। आकाश की बिजली और ओले तेरा नाश न करें। १

सुनाये जाते हुए हर्षकारी स्तुत्य जो का जहाँ हम अच्छा बताते हैं वहां यह भी चाहते हैं कि वह सूर्य के समान ऊँचा बढ़े और समुद्र के समान कम न होने वाला हो। २

१७४४. हे अन्न ! तेरे समीप कार्यों के लिए बैठने वाले किसान, तेरे ढेर, तेरे खिलाने-खाने वाले सभी अक्षित (हानि-रहित) हों। ३

यह सूक्त १४२, अनुवाक १३, प्रपाठक १५ और पूरे काण्ड ६ का आचार्य वीरेन्द्र सरस्वती रचित हिन्दी-अनुवाद समाप्त हुआ।

❀ ओ३म् ❀

अथर्व वेद कांड ७ सूची

प्रपाठक १६-१७ में ५-५, सब १० अनुवाक हैं जिनके विषय म० दयानन्द के अनुसार हैं।

प्र.अनु.	सूक्त	मन्त्र	ऋषि	देवता	छन्द	विषय
१६.१	१	२	अथर्वा	आत्मा प्रजापति	त्रि०	मनोवाग्विद्येत्यादि०, यज्ञेश्वर-
	२-४	१-१	,,	,, वायु	,,	आदित्यादि-पदार्थविद्या
	५	५	,,	,,	,, प०अ०	
	६	४	,,	अदिति	,, ज०	
	७-८	१-१	,, उपरिबभ्रवः	देवाः ,, आत्मा बृहस्पति	,,	,,
	९	४	,,	पूषा ,,	गा०	,,
	१०-११	१-१	शौनक	पर्जन्य सरस्वती	,,	
	१२	४	,,	सभापति इन्द्र	,,	,,
	१३	२	अथर्वा	सोम	,,	
२	१४	४	,,	सविता	,,	,, सावित्रीश्वरादि० बृहस्पतिरित्यादि०
	१५-१६	१-१	भृगु	,,	,,	प्रजापतिरित्यादि० जगदुत्पत्तिरित्यादि
	१७	४	,,	धाता ,,	गा० ,,	,, पदार्थविद्या
	१८	२	अथर्वा	पृथिवी पर्जन्य	,,	,,
	१९	१	ब्रह्मा	अनुमति	ज	
	२०	६	,,	,,	ज अ त्रि	
	२१	१	,,	विश्वेदेवाः आत्मा	ज	
	२२	२	,,	परमेश्वर ब्रह्म	पं अ	
३	२३-२४	१-१	यम	ब्रह्मा दुःस्वप्ननाशन सविता	अ त्रि	सत्यधर्मेश्वरादि विष्णुना जगदुत्पत्ति०
	२५	२	मेधातिथि	विष्णु-वरुण	त्रि	अग्नि विष्णु द्वं बत्यागादि पदार्थ-
	२६	८	,,	,,	त्रि अ गा	विद्या
	२७-२८	१-१	,,	इडा विश्वेदेवाः	त्रि	
	२९	२	,,	अग्नि-विष्णु ,,	,,	
	३०-३४	१-१	भृग्वङ्गिरा ब्रह्मा अथर्वा	इन्द्र ,, आयु ,,	,, अ प	
	३५	३	,,	जातवेदाः	,, अ	
	३६-३७	१-१	,,	अक्षि मित्र दम्पती ,,	,,	
४	३८	५	,,	वनस्पति आसुरी ,,	अ	दिव्य-सुपर्णेश्वर-सोम-रुद्र-भेषज-
	३९	१	प्रस्कण्व	सुपर्ण सूर्य वृष्टि	त्रि	प्रजोत्पत्ति-रायस्पोष-दान-रक्षणादि प०

प्र	अनु.	सूक्त	मन्त्र	ऋषि	देवता	छन्द	विषय
		४०–४२	२–२	प्रस्कण्व	सरस्वान् श्येन सोम-रुद्र	त्रि	
		४३–४४	१–१	,,	वाचः इन्द्र-विष्णु	,,	
		४५	२	,,	भेषज ईर्ष्यापनयन	अ	
		४६	३	अथर्वा	विष्णुपत्नी सिनीवाली	,, ,,	
		४७–४९	२–२	,,	अमृतपत्नी कुहू राका देवपत्नी	,, ज प	
		५०	६	अङ्गिरा	इन्द्र आत्मा	,, अ	
		५१	१	,,	,, बृहस्पति	त्रि	
	५	५२	२	अथर्वा	प्रजापति सामनस्य अश्विनौ	अ ,,	सम्यग्विज्ञानकरणार्थोपदेश-
		५३	७	ब्रह्मा	आयु वृपस्पति अग्नि अश्वी	त्रि प अ	स्वर्गादीश्वरौषधादि पदार्थ
		५४	२	,, भृगु	ऋक्साम इन्द्र शचीपति	अ	विद्या
		५५	१	,,	,, वसु	उ	
		५६	८	अथर्वा	औषधि ब्रह्मणस्पति	अ बृ	
		५७-५८	२–२	वामदेव कौरुपथि	सरस्वती इन्द्रावरुण	ज त्रि	
		५९	१	बादरायणि	अरिनाशन शपथ	अ	
१७	६	६०	७	ब्रह्मा	वास्तोष्पति गृह	प अ	वैरत्यागोपदेश तपोधर्मानुष्ठान-
		३१	२	अथर्वा	अग्नि	अ	प्रार्थनादि० रोगनिवारण-सर-
		६२–६३	१–१	कश्यप मारीच	,,	ज अ	स्वती-यज्ञ-मृत्यु-सत्यानृतादि पदार्थ
		६४	२	यम	निर्ऋति आपः अग्नि	अ	विद्या
		६५	३	शुक्र	अपामार्ग	अ	
		६६–६७	१–१	ब्रह्मा	ब्राह्मण मन्त्रोक्त	त्रि बृ	
		६८	३	शन्ताति	सरस्वती	अ ,, गा	
		६९	१	,,	सुखम् वात आदि	प	
		७०	५	अथर्वा	श्येन इन्द्र अग्नि	त्रि अ	
		७१	१	,,	,,	अ	
		७२	३	,,	,,	अ त्रि	
		७३	११	,,	अश्वी सविता अघ्न्या ,,	ज त्रि	
	७	७४	४	,,	वैद्य त्वष्टा जातवेदा:	अ त्रि	वृतादि-जाया-पुरुष-सन्तान-प्रार्थना-
		७५	२	उपरिबभ्रवः	अघ्न्याः प्रजा	त्रि बृ	धनप्राप्त्यर्थ स्वर्ग-प्राप्त्यादि० नवो
		७६	६	अथर्वा	अपचिद् भैषज्य ज्यावानिन्द्र	अ ज त्रि	नवो जायमानः पदार्थ विद्या
		७७	३	अङ्गिराः	मरुतः	गा त्रि	
		७८	२	अथर्वा	अग्नि	,,	
		७९–८०	४–४	,,	अमावास्या पौर्णमासी प्रजापति	त्रि अ	
		८१	६	,,	सावित्री सोमार्क चन्द्र	ज ,, प	
	८	८२	६	शौनकः (सम्पत्कामः)	अग्नि	त्रि बृ ज	ईश्वरप्रार्थनादि० घृत-वरुण-इन्द्रादि०
		८३	४	शुनःशेप	वरुण		रक्षार्थ जल तेजोसि पदार्थ विद्या

अनु.	सूक्त	मन्त्र	ऋषि	देवता	छन्द	विषय
	८४	३	भृगु	जातवेदाः अग्नि इन्द्र	ज त्रि	
	८५-८८	१-१	अथर्वा (स्वस्त्ययनकाम)	तार्क्ष्य ,; रुद्र तक्षक	त्रि बृ	
	८६	४	सिन्धुद्वीप	अग्नि आपः समिद्	अ गा	
	९०	३	अङ्गिराः	इन्द्र	,, ज	
६	९१-९४	१-१	भृगु ,, अथर्वा	चन्द्र ,, सोम	त्रि	,, इन्द्र-स्त्री-पुरुष-व्यवहार-यज्ञादी-
	९५	३	कपिञ्जल	गृध्रौ	अ	ईश्वर प्रार्थनाद्यनेकविध पदार्थ विद्या
	९६	१	,,	वय प्रजापति	अ	
	९७	८	अथर्वा	इन्द्राग्नि विश्वेदेवाः यज्ञ	त्रि गा बृ ज	
	९८-१०२	१-१	,,	यम प्रजापति दुःस्वप्ननशान इन्द्र यजमान ब्रह्म प्रजापति	त्रि अ बृ	
१०	१०३-१०७	१-१	ब्रह्मा अथर्वा भृगु	आत्मा अग्नि वरुण सूर्य आपः	त्रि अ	प्रश्नोत्तरादि० ईश्वरा-
	१०८	२	,,	,,	त्रि	ग्न्यादि० सोम ब्रह्मचर्यादीन्द्राग्नी-
	१०९	७	बादरायणि	प्रजापति ,,	अ त्रि	ईश्वरप्रार्थना लक्ष्मीनाशनार्थं लक्ष्मी-
	११०	३	भृगु	इन्द्राग्नी	गा त्रि अ	प्राप्त्यर्थादि पदार्थ विद्या
	१११	१	ब्रह्मा	वृषभ ईश्वर	त्रि	
	११२-११४	२	,, भार्गव	आपः वरुण तृष्टिका अग्नि-सोम	त्रि अ उ	
	११५	४	अथर्वाङ्गिराः	सविता जातवेद	,,	
	११६	२	,,	चन्द्रमा तक्मनाशन प्रजापति	उ अ	
	११७-११८	१-१	,,	,, इन्द्र स्वस्त्ययन कवच सोम वरुण	बृहती त्रि	

योग २ १० ११८ २८६ २४ ६६ विषय की दृष्टि से चौदह गण हैं--

स्वस्त्ययन -बृहत् शान्ति- पत्नीवन्त-दुःस्वप्न नाशन-अभय-पुष्टिक-वास्तु -इन्द्र महोत्सव-आयुष्य-सांमनस्य-कृत्या-रौद्र-अहोलिङ्ग-तक्मनाशन ।

—वीरेन्द्र सरस्वती, कार्तिक कृष्ण ६, २०४७ वि०, वेद-संवत् १९६०८५३०६१, १२-१०-९०

अथर्व वेद कांड ७

प्रपाठक १६-१७

अनुवाक १, सूक्त १ से १३ तक

अनुवाक-विषय— मनो वाग्विद्येत्यादि, यशेश्वर आदित्यादि पदार्थविद्या (महर्षि दयानन्द सरस्वती)

सूक्त १ । प्रजापति । ईश्वर का उपदेश

१-४५ धीती वा ये अनयन् वाचो अग्रं मनसा वा येऽवदन्नृतानि ।
तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधानास्तुरीयेणामन्वत नाम धेनोः ॥ १

४६ स वेद पुत्रः पितरं स मातरं स सूनुर्भुवत् स भुवत् पुनर्मघः ।
स द्यामौर्णोदन्तरिक्षं स्व१: स इदं विश्वमभवत् स आभवत् ॥ २

जो ध्यान-कर्म के द्वारा वाणी के मूल को पाते और मनो-ज्ञान से सच बोलते हैं वे पार करने वाले तीसरे (ईश्वर) के ज्ञान से बढ़कर चौथे (मोक्ष) के साथ धेनु (आनन्दरूप ईश्वर) की कामना करते हैं । १

वह पुत्र (जीव) अपने पिता-माता (ईश्वर-प्रकृति; सूर्य-पृथिवी) को जानता; देह में रहा हो कर कर्म-फल-युक्त होता, द्यौ-अन्तरिक्ष-मोक्ष तक पहुँचता, विश्व में घूमता और जन्म लेता है । २

सूक्त २ । अथर्वा और प्रजापति । (जीवात्मा)

४७ अथर्वाणं पितरं देवबन्धुं मातुर्गर्भं पितुरसुं युवानम् ।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः ॥ १

जो इस जीव को अपने विचार से निःसंशय, इन्द्रियों का बन्धु, माता के गर्भ में आने वाला, पिता का प्राण-स्वरूप, सदा युवा समझ लेता है वही विद्वान् यहाँ बोले और हमें उपदेश करे। १

सूक्त ३ । प्रजापति

४८ अया विष्ठा जनयन् कर्वराणि स हि घृणिरुरुर्वराय गातुः ।
स प्रत्युदैद् धरुणं मध्वो अग्रं स्वया तन्वा तन्वमैरयत ॥ १

वह जीव इस रीति से कर्म करता हुआ प्रकाशमान होकर श्रेष्ठता पाने के लिए ऊपर उठता और अपनी विस्तृत शक्ति से उस ज्ञान के धारक व्यापक परमेश्वर के आनन्द तक पहुंचता है। १

सूक्त ४ । प्रजापति-वायु

४९ एकया च दशभिश्च सुहुते द्वाभ्यामिष्टये विंशत्या च ।
तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता च वियुग्भिर्वाय इह ता वि मुञ्च ॥१

हे अच्छे समर्पित जीव ! तू ग्यारह [दस इन्द्रियों और नाभि] से तथा बाईस [मन-बुद्धि-चित्त-अहङ्कार, ५ तन्मात्रा-ज्ञान-प्रयत्न] एवं तेंतीस देवों की विशेष योजनाओं से चलता है इन्हें यहाँ छोड़। १

सूक्त ५ । प्रजापति

५० यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ १

५१ यज्ञो बभूव स आ बभूव स प्र जज्ञे स उ वावृधे पुनः ।
स देवानामधिपतिर्बभूव सो अस्मासु द्रविणमादधातु ॥ २

५२ यद् देवा दवान् हविषायजन्तामर्त्यान् मनसामर्त्येन ।
मदेम तत्र परमे व्योमन् पश्येम तदुदितौ सूर्यस्य ॥ ३

५३ यत्पुरुषेण हविषा यज्ञं देवा अतन्वत । अस्ति नु तस्मादोजीयो यद् विहव्येनेजिरे ॥ ४

५४ मुग्धा देवा उत शुनायजन्तोत गोरङ्गैः पुरुधायजन्त ।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः ॥ ५

विद्वान् योग-यज्ञ से पूज्य ईश्वर की पूजा करते हैं। वे धर्म श्रेष्ठ हैं। वे महिमा वाले निश्चय ही उस मोक्ष को पाते हैं जहाँ श्रेष्ठ साधक विद्वान् पहुँचते हैं। १

यज्ञ (ईश्वर) सदा, है, रहेगा, वह पैदा कर पालता है, देवों का पति है। वह हमें ज्ञान-धन दे। २

विद्वान् भक्ति से जिसके दिव्य गुणों की अमर मन से सङ्गति करते हैं उस परम रक्षक आकाश के समान व्यापक ईश्वर में हम आनन्द पायें और सूर्योदय-काल में उसकी शक्ति देखें। ३

अपने समर्पण से विद्वान् जिसका यज्ञ फैलायें वह ईश्वर उनसे ओजस्वी है कि बिना हव्य से यज्ञ हो। ४

ईश्वर में मुग्ध देव प्राणों से और वाणी के अङ्गों से विविध प्रकार से यज्ञ करते हैं। जो इस यज्ञ (पूजनीय ईश्वर) को मन से जानता है वही हमें उसका उपदेश दे और यहाँ पर ही बताये। ५

सूक्त ६ । अदिति [अखण्डनीय]

१७५५ अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ १

५६ महीमू षु मातरं सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हवामहे ।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ॥ २

५७ सुत्रामाणम्पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसो अस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥ ३

५८ वाजस्य नु प्रसवे मातरम्महीमदितिं नाम वचसा करामहे ।
यस्या उपस्थ उर्वन्तरिक्षं सा नः शर्म त्रिवरूथं नि यच्छतात् ॥४

द्यौ-अन्तरिक्ष-मात (प्रकृति-पृथिवी)-पित (ईश्वर-सूर्य)-पुत्र(जीवात्मा)-सब देव-पञ्च जन(४वर्ण ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र पाँचवाँ निषाद)-उत्पन्न भूत-होनेवाला भविष्य ये ९ अदिति(अखण्डनीय)हैं ॥ १
[यह ऋ १-८६-१०, यजु २५-२३, निरुक्त ४-२३ में भी है, इसमें श्लेष और अनुप्रास अलङ्कार हैं ।
महान्-श्रेष्ठ नियमों-व्रतों की पालक-बहुत बलवान्-उत्तम व्यवस्थापक-सुखद-विशाल-नित्य-अदिति (अखण्डित परमात्मा की शक्ति) को अपनी रक्षा के लिए स्मरण करें। २
उत्तम रक्षक-विराज-प्रकाशमान-उत्तम घर और सुख देने वाली-अखण्डित-शुभ मार्ग में ले जाने-वाली-उत्तम पतवार(साधन)युक्त-न चूनेवाली(निर्दोष)-दिव्य नाव (ईश्वर-वेद-यज्ञ-जहाज) का हम निष्पाप हो कर कल्याण के लिए आश्रय लें । [यह मन्त्र ऋ १०-६३-१० यजु २१-६ में भी है।] ३
अन्न के उत्पादन में हम बड़ी अदिति (अखण्डित पृथिवी) को हम[वेद के] वचन से तय्यार करें। जिसके समीप बड़ा अन्तरिक्ष है वह पृथिवी हमें ३ भवन का घर, ३ सुख(आत्मिक-दैविक-भौतिक)दे। ४

सूक्त ७ । देवाः । [प्राणौं की शक्ति]

५९ दितेः पुत्रणामदितेरकारिषमव देवानां बृहतामनर्मणाम् ।
तेषां हि धाम गभिषक् समुद्रियं नैनान्नमसा परो अस्ति कश्चन ॥ १

खण्डित पृथिवी के पदार्थों को मैं अविनाशी चिति और अव्यथित प्राणों के नीचे करूँ । क्योंकि उन का आत्मा से उत्पन्न तेज अति गम्भीर है। इनके अन्न-सामर्थ्य से बड़ा कोई नहीं है । १

सूक्त ८ । आत्मा ।

६० भद्रादधि श्रेयः प्रेहि बृहस्पतिः पुरएता ते अस्तु ।
अथेममस्या वर आ पृथिव्या आरेशत्रुं कृणुहि सर्ववीरम् ॥ १

(हे मनुष्य !) तू भद्र से मोक्ष को आगे पा. आचार्य तेरा आगे ले जाने वाला हो। इस भूमि के श्रेष्ठ स्थान में अपने को शत्रुओं से दूर सब प्रकार से वीर बना। १

सूक्त ९ । पूषा । (पोषक परमेश्वर, शासक)

६१ प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ॥ १

१७६२ पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरो ऽप्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन् ॥ २

६३ पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन । स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ३

६४ परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् । पुनर्नो नष्टमाजतु सं नष्टेन गमेमहि ॥ ४

पूषा सब पथों में, द्यौ और पृथिवी के श्रेष्ठ पथ पर विद्यमान रहता और सब जानता है। वह दोनों प्रियतम स्थानों को ठीक ठीक जानता हुआ निकट और दूर तक गति करता है। १

पूषा इन सब दिशाओं को जानता है। वह हमें सब से अधिक निर्भय मार्ग से ले जाये। वह कल्याण-प्रद-तेजस्वी-सर्ववीर जानता और सावधानी रखता हुआ आगे रहे। २

हे पूषा ! हम तेरे नियम में कभी दुःखी न हों, यहां तेरे प्रशंसक होकर रहें। ३

पूषा दूर तक सब ओर अपना दाहिना हाथ (सहारा) दे; नष्ट बल हमें फिर मिले, उससे सङ्गत रहें। ४

सूक्त १० । सरस्वती (विदुषी माता, आचार्या, जल-धारा)

६५ यस्ते स्तनः शशयुर्यो मयोभूर्यः सुम्नयुः सुहवो यः सुदत्रः ।
येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवे कः ॥ १

हे सरस्वती ! जो तेरा स्तन (दुग्ध-जल-भण्डार) शान्तिप्रद-सुखद-प्रसन्न करने वाला-ग्रहण-योग्य-उत्तम दाता है, जिससे तू सब वरणीय को पुष्ट करती है, उसे यहाँ पीने के लिए दे। १

सूक्त ११ । पर्जन्य (मेघ)

६६ यस्ते पृथु स्तनयित्नुर्य ऋष्वो दैवः केतुर्विश्वमाभूषतीदम् ।
मा नो वधीर्विद्युता देव सस्यं मोत वधी रश्मिभिः सूर्यस्य ॥ १

हे देव मेघ ! जो तेरी बड़ी गरजने वाली, आघातकारी, प्रकाशमान ध्वजा के समान बिजली इस विश्व को शोभित करती है उससे और सूर्य की किरणों से हमारा अन्न नष्ट न कर।

सूक्त १२ । सभापति । सभा और समिति

६७ सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने ।
येना सङ्गच्छा उप मा स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः सङ्गतेषु ॥ १

६८ विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि । ये ते के च सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः ॥ २

६९ एषामहं समासीनानां वर्चो विज्ञानमाददे । अस्याः सर्वस्याः संसदो मामिन्द्र भगिनङ्कृणु ॥ ३

७० यद्वो मनः परागतं यद् बद्धमिह वेह वा । तद्व आ वर्तयामसि मयि वो रमतां मनः ॥ ४

राष्ट्रपति की पुत्रियाँ लोक-सभा संसद् और कार्यकारिणी एकमत होकर मेरी रक्षा करें, मैं जिससे मिलूँ वह परामर्श दे। हे पितरो (पालक सदस्यो) ! अधिवेशनों में मैं उत्तम बोलूँ। १

हे सभा ! हम तेरा नाम जानें, तू नरिष्टा (नरों की इष्ट-अदम्य-अहिंसक) नाम वाली है। जो कोई तेरे सभासद हों वे मेरे लिए समान-वाणी हों। २

इन बैठे हुओं से मैं तेज-विज्ञान लूँ। हे इन्द्र! तू मुझे इन सब संसद् का ऐश्वर्य-शाली बना। ३

(हे सदस्यो !) यदि तुम्हारा मन दूर या इधर-उधर बँधा हो तो मैं उसे लौटा लूँ, वह मुझ पर लगे। ४

सूक्त । १३ । आत्मा शत्रु-तेज-अपहरण

१७७१.यथा सूर्यो नक्षत्राणामुद्यंस्तेजांस्याददे।एवा स्त्रीणा च पुंसां च द्विषतां वर्च आददे ।।१

७२.यावन्तो मा सपत्नानामायन्तं प्रतिपश्यथ।उद्यन्त्सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आददे ।। २

जैसे उदय होता हुआ सूर्य नक्षत्रों का तेज ले लेता है ऐसे ही मैं द्वेषियों का तेज ले लूं । १

जितने शत्रु मुझे आता हुआ देखें मैं उनका वर्च वैसे ही हरलूँ जैसे उदय होता सूर्य सोते हुओं का। २

[रामायण में भरत ने कहा था कि यदि राम को वन भेजने की मेरी तनिक भी इच्छा हो तो मुझको वही पाप हो जो सूर्य के उदय तक सोता पड़ा रहने वाले को होता है। अतः सूर्योदय-पूर्व उठे]।

अनुवाक २ सूक्त १४-२२

विषय- सावित्रोस्वरादि०, बृहस्पतिरित्यादि०, प्रजापतिरित्यादि०, जगद्गुरुत्तिरित्यादि पदार्थविद्या(द.)

सूक्त १४ । सविता । ईश्वर

७३.अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुम्।अर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियमतिम् ।।१

७४.ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि । हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपात् स्वः ।।२

७५ सावीर्हि देव प्रथमाय पित्रे वर्ष्माणमस्मै वरिमाणमस्मै ।

अथास्मभ्यं सवितर्वार्याणि दिवोदिव आ सुवा भूरि पश्वः ।। ३

७६ दमूना देवः सविता वरेण्यो दधद् रत्नं दक्षं पितृभ्य आयूंषि ।

पिबात्सोमं ममददेनमिष्टे परिज्मा चित् क्रमते अस्य धर्मणि ।। ४

द्यौ-पृथ्वी के उत्पादक-ज्ञानी-जगत्कर्ता-सत्यप्रेरक,रत्न लोक-धारक-प्रिय-मान्य सविता की भक्ति करूँ। १

जिसकी बड़ी दीप्ति सृष्टि में चमकती है वह सुकर्मा लोक-धारक प्रभु स्व-कृपा से सुख देता है २

हे सविता परमात्मा ! तू श्रेष्ठ प्राणी जीव के लिए सब पदार्थ-शरीर-सौन्दर्य प्रदान करता है, हमारे लिए वरणीय पदार्थ, बहुत पशु, इन्द्रिय-शक्ति दिनों दिन बढ़ा। ३

दमनकर्ता-वरणीय सविता देव परमात्मा पालनकर्ताओं को रत्न-धन-बल आयु देता है,उस के धर्म में रहकर जीव सोम औषधि पीता है जो इसे हृष्ट करता है, वह इष्ट परमात्मा में गतिमान् होता है। ४

सूक्त १५ । सविता

७७ तां सवितः सत्यसवां सुचित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्ववाराम् ।

यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीनां सहस्रधारां महिषो भगाय ।। १

हे सविता ! मैं उस सत्य-प्रेरक, अति अद्भुत, विश्व-रक्षक सुमति को मागता हूं जिस हजारों की धारक बहुत बड़ी बुद्धि को महान् ज्ञानी इस जगत् के ऐश्वर्य के लिए दुहा करता है। १

सूक्त १६ । विश्वे देवाः

७८ बृहस्पते सवितर्वर्धयैनं ज्योतयैनं महते सौभगाय ।

संशितं चित् सन्तरं सं शिशाधि विश्वमेनमनु मदन्तु देवाः ।। १

हे सविता आचार्य ! तू इस पुरुष को बड़े सौभाग्य के लिए बढ़ा, ज्योति-युक्त कर, इस तीक्ष्ण-बुद्धि को शिक्षा दे। सब विद्वान् इस का अनुमोदन करें। १

सूक्त १७ । धाता

१७७९. धाता दधातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः । स नः पूर्णेन यच्छतु ॥ १

८०. धाता दधातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमक्षिताम् । वयं देवस्य धीमहि सुमतिं विश्वराधसः ॥ २

८१ धाता विश्वा वार्या दधातु प्रजाकामाय दाशुषे दुरोणे ।
तस्मै देवा अमृतं सं व्ययन्तु विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ॥ ३

८२ धाता रातिः सवितेदञ्जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपतिर्नो अग्निः ।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणो यजमानाय द्रविणन्दधातु ॥ ४

विधाता, जगत् का पति ईश हमें ऐश्वर्य दे । वह हमें पूर्णता से सम्पन्न करे । १
धाता दानी के लिए उत्तम-अक्षय जीवन-शक्ति दे, हम सर्वधनी देव की सुमति को धारण करें । २
धाता प्रजा की कामना वाले दानी गृहपति के लिए सब वरणीय पदार्थ दे । इसके लिए विद्वान्, सब प्राकृतिक शक्तियाँ, अदिति प्रीतियुक्त होकर अमृत (आत्मिक शक्ति) दें । ३
धाता-दाता-सविता(सूर्य), प्रजापति-कोश-रक्षक अग्नि(विद्वान्-राजा-यज्ञाग्नि) इस अमृत की रक्षा सप्रेम करें । निर्माता-व्यापक ईश्वर और यज्ञ प्रजा के साथ प्रसन्न होकर यज्ञकर्ता को धनदे । ४

सूक्त १८ । प्रजापति

८३. प्रनभस्व पृथिवि भिन्द्धीदं दिव्यन्नभः । उद्नो दिव्यस्य नो धातरीशानो विष्या दृतिम् १॥

८४ न घ्रंस्तताप न हिमो जघान प्र नभतां पृथिवी जीरदानुः ।
आपश्चिदस्मै घृतमित् क्षरन्ति यत्र सोमः सदमित् तत्र भद्रम् ॥ २

हे पृथिवी ! आकाश देख, इस दिव्य मेघ को भेदन कर, हे धाता ! दिव्य जल का पात्र(मेघ)खोल । १
प्रचण्ड सूर्य न तपाये, शीत न मारे. अन्न देने वाली पृथिवी जोती जाये, जल भी इस(जगत्) के लिए घी की ही वर्षा करे । जहाँ सोम तत्व है वहाँ सदा ही कल्याण है । २

सूक्त १९ । प्रजापति

८५ प्रजापतिर्जनयति प्रजा इमा धाता दधातु सुमनस्यमानः ।
सञ्जानानाः संमनसः सयोनयो मयि पुष्टम्पुष्टपतिर्दधातु ॥ १

प्रजापति परमात्मा ये प्रजा उत्पन्न करता है, वह सु-मनाः धारक होकर धारण करे जिससे वे ज्ञान-युक्त, एक मन वाली, बन्धुवत् रहती हैं । पुष्टि का पति परमात्मा मुझे पुष्टि दे । १

सूक्त २० । अनुमति । अनुकुल बुद्धि

८६. अन्वद्य नोऽनुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् । अग्निश्च हव्यवाहनो भवतां दाशुषे मम ॥ १

८७. अन्विदनुमते त्वं मंससे शञ्च नस्कृधि । जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥ २

८८ अनुमन्यतामनुमन्यमानः प्रजावन्तं रयिमक्षीयमाणम्
तस्य वयं हेडसि मापि भूम सुमृडीके अस्य सुमतौ स्याम ॥ ६

१७८९ यत् ते नाम सुहवं सुप्रणीतेऽनुमते अनुमतं सुदानु ।
तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥ ४

९० एमं यज्ञमनुमतिर्जगाम सुक्षेत्रतायै सुवीरतायै सुजातम् ।
भद्रा ह्यस्याः प्रमतिर्बभूव सेमं यज्ञमवतु देवगोपा ॥ ५

९१ अनुमतिः सर्वमिदं बभूव यत् तिष्ठति चरति यदु च विश्वमेजति ।
तस्यास्ते देवि सुमतौ स्यामानुमते अनु हि मंससे नः ॥ ६

१७८६ हमारी अनुमति (विद्या-बुद्धि-पत्नी) विद्वानों में सङ्गठन के नए अनुकूल हो, और अग्रणी मुक्त दाता के लिए लेने योग्य पदार्थ देने वाली हो। १

हे अनुमति ! तू इसे मान और हमारा कल्याण कर। दिया हुआ ले; हे देवी ! हमें सन्तान दे। २

अनुमति-दाता अक्षय-प्रजायुक्त-ऐश्वर्य दे, हम उसके क्रोध में न पड़ें, इसकी सुखद सुमति में रहें। ३

हे उत्तम नीति वाली अनुमति ! क्योंकि तेरा नाम अच्छा बुलाने योग्य, बड़ा दानी माना गया है, अतः हे विश्व से वरणीय, सौभाग्य-शालिनी! तू हमारे सङ्गठन को पूर्ण कर हमें सुवीर ऐश्वर्य दे। ४

इस अच्छे यज्ञ में अच्छा स्थान पाने और अच्छी वीरता के लिए अनुमति आये, इसकी सुबुद्धि निश्चय ही कल्याणकारी है, विद्वानों से रक्षित वह इस यज्ञ की रक्षा करे। ५

जो स्थिर-चल विश्व चलता है, वह अनुमति है, देवी अनुमति! हम तेरी सुमति में हों, तू अनुकूल हो। ६

सूक्त २१ । विश्वे देवाः

९२ समेत विश्वे वचसा पतिं दिव एको विभूरतिथिर्जनानाम् ।
स पूर्व्यो नूतनमाविवासत् तं वर्तनिरनु वावृत एकमित् पुरु ॥ १

सभी सत्य (वेद के) वचन से द्यौ के पति (परमात्मा) तक पहुंचो, वह व्यापक एक मनुष्यों का अतिथि (जिसकी साक्षात्कार-तिथि नियत नहीं) है। पूर्व से विद्यमान वह नये बने में भी बसता है, घूमने वाला जगत् उस एक के ही पीछे चलता है। १

सूक्त २२ । परमात्मा, सूर्य

९३ अयं सहस्रमा नो दृशे कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्मणि ॥ १

९४ ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयन् । अरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमत्तमाश्चिते गोः ॥ २

यह (परमात्मा) हम हजारों के देखने का साधन, कवियों की बुद्धि; विरुद्ध धर्म में ज्योति है। १

९४ सूर्य परस्पर मिली-निर्मल-चिताने वाली-चमकती उषाओं को दिन में पृथिवी-ज्ञानार्थ भेजता है। २

यह सूक्त २२, अनुवाक २ का आचार्य वीरेन्द्र सरस्वती रचित हिन्दी-अनुवाद समाप्त हुआ।

अनुवाक ३ सूकत २३ से ३७ तक

विषय— सत्य धर्मेश्वरादि०, विष्णु का जगदुत्पत्ति०, अग्नि विष्णु द्वेषत्यागादि पदार्थविद्या (द०)

सूक्त २३ । प्रजा । औषधि

१७९५ दौःष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः। दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि

हम ७ बुराइयाँ नष्ट करें — बुरे स्वप्न-बुरा जीवन-हिंसा-गरीबी-कंजूसी-दुर्नाम (गाली)-दुर्वचन । १

[यह मन्त्र क्रमांक ७३१ पर ४-१७-५ में आ चुका है ।]

सूक्त २४ । सविता

९६ **यन्न इन्द्रो अखनद् यदग्निर्विश्वे देवा मरुतो यत् स्वर्काः ।**
तदस्मभ्यं सविता सत्यधर्मा प्रजापतिरनुमतिर्नि यच्छात् ॥ १

जिसको प्राण-प्रकाशित शक्तियाँ-इन्द्र जिसको रचाएँ जो रक्षित रखती हैं उसे हमें सत्य-धर्मा, प्रजा-रक्षक सूर्य और अनुकूल मति दे । १

सूक्त । २५ । विष्णु-वरुण

९७ **ययोरोजसा स्कभिता रजांसि यौ वीर्यैर्वीरतमा शविष्ठा ।**
यौ पत्येते अप्रतीतौ सहोभिर्विष्णुमगन् वरुणं पूर्वहूतिः ॥ १

९८ **यस्येदं प्रदिशि यद्विरोचते प्र चानति वि च चष्टे शचीभिः ।**
पुरा देवस्य धर्मणा सहोभिर्विष्णु० (पूर्ववत्) ॥ २

जिसके ओज से लोक बँधे हैं, जो शक्तियों से अत्यन्त वीर-बली हैं, जो अपराजित हैं, स्वबलों से ऐश्वर्य शाली हैं उन दोनों विष्णु-वरुण (सूर्य-जल) का पहले आवाहन हो । १ [कुछ भेद से य ८.५९]

जिनके शासन में यह जगत् है जो शोभित होता, प्राण धारण करता और धर्म-पराक्रम-बलों से अनेक चेष्टा कर रहा है, उस विष्णु-वरुण को पहली पुकार हो । २

सूक्त २६ । विष्णु । सूर्य

९९ **विष्णोर्नु कं प्रावोचं वीर्याणि यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।**
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥ १

१८००. प्र तद्विष्णु स्तवते वीर्याणि मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
परावत आ जगम्यात् परस्याः ॥ २

मैं विष्णु [सूर्य] के पराक्रम बताता हूं जो पार्थिव लोकों को विविध रूप बनाता है, जो अत्यन्त प्रशंसित, तीनों लोकों में विशेष पराक्रम करता हुआ सनक्षत्र द्यौ को आकर्षण में रखता है । १

वह उन पराक्रमों से प्रशंसनीय है, भयानक सिंह के समान सर्वत्र पृथिवी-पर्वतों पर प्रकाश देता है दूर रह कर भी वह हमें प्रकाश-उष्णता देता है । २ । [यह ऋ १-१५४-२, य ५-२० में भी है ।]

६. अगस्त्यः यहाँ ग उदात्त है ऋ १-१७६-६ अगमपराधमर्म्यान्ति पृक्षिपन्ति तेषु साधुः । ७-३३-१० अस्तदोषः अगस्त्ये [,, [१-११७ ११ अगस्तिषु ज्ञातव्येषु व्यवहारेषु साधुनि कर्मणि । अत्रागमधातोरौ-णादिकस्तिः प्रत्ययोऽनुडागमश्च । १-१८४-५ अपराधरहिते मार्गे । अगस्त्य १-१७०-३[सर्वानुदात्त] । अगस्तौ विज्ञाने सावो । अंकित स्वरों से अर्थों और व्याकरण के विभेद कैसे ज्ञात होते हैं ?

७. अग्नीषोमा — १-९३-१—४, ६, ६-११ में आद्युदात्त है और पाद के आदि में आया है अतः आमन्त्रितस्य च [अष्टा० ६-१-१९८] से यह सम्बोधन पद अभीष्ट है । दयानन्द-भाष्य में मन्त्र १-२ में इसे सम्बोधन रूप, मन्त्र ३ में षष्ठचन्त और शेष सर्वत्र प्रथमान्त माना है ।

अग्नीषोमा । ऋ १-९३-८ वाय्वग्नी । वायु और अग्नि को (सेवे) । उभय पद प्रकृति स्वर होने से यहाँ ग्नी षो दोनों उदात्त हैं । द०भाष्य में इसे द्वितीयान्त (कर्म) माना है । अंकित स्वर के आलोक में इन सब अर्थों की सङ्गति अपेक्षित है । उस स्वर से ये अर्थ कैसे प्राप्त हो जाते हैं ?

८. अघः ५-२९-८ अहन्तव्यः । अघः १-४२-२ अघं पापं विद्यते यस्मिन् सः । अघाः ६-५९-८ हिंस्याः अघम् ऋ १-९७-१ रोगालस्यं पापम्, २-४१-११ पापम्, ५-३-७ क्रिल्विषम्, १-९७-५ दारिद्र्यम् ६-६-२८ अपराधम् । इनमें पहला प्रयोग आद्युदात्त है, शेष सब अन्तोदात्त हैं । अंकित स्वरों से ये विभिन्न अर्थ कैसे प्राप्त होते हैं ?

९. अजः ऋ ६-५०-१४ यः कदाचिन्न जायते स ईश्वरः, १-१६२-४ प्राप्तव्यश्छागः, यजु २-२५ जन्मादि-रहितः, २९-२३ क्षेपणशीलः; २१-२९ प्राप्तव्यो मेषः, २५-२७ पशु-विशेषः इनमें दो व्युत्पत्तियाँ हैं — न-जन् से और अज् से । स्वर से इन दोनों का बोध कैसे होता है ? यह अन्तोदात्त है, छाग या पशु-विशेष अर्थ स्वर से कैसे प्राप्त हुआ है ?

१०. अत्रिः ऋ १-१३९-९ भोक्ता, ५-७-१० सततं पुरुषार्थी, ५-७३-६ अविद्यमानत्रिविध दुःखम् अत्रिम् ५-१५-५ पालकम् । ये दोनों आद्युदात्त हैं, इनमें विभिन्न व्युत्पत्तियाँ हैं । स्वर से उन सब का बोध कैसे हो रहा है ?

११. आज्यपाः यजु २१-४० य आज्यं ज्ञातं पान्ति रक्षन्ति ते । य २१-४८ य आज्यं पातुमर्हं रतं पिबन्ति ते । यह अन्तोदात्त है । स्वर से 'रक्षा करने' और 'पीने' के अर्थों का भेद कैसे ज्ञात होता है ?

१२. शेवे ऋ १०-१८-८ बाकी पुरुषों में से (सत्यार्थप्रकाश चतुर्थ समुल्लास, कलकत्ता, १९८१ वि०स. पृष्ठ ७४ । यहाँ दोनों अक्षर अनुदात्त हैं । इसे अन्य भाष्यकारों आदि ने शी धातु का मध्यमपुरुष एक वचन मान कर 'तिङ्ङतिङः' से सर्वानुदात्त माना है । यजु १२-३६ में पादादि में प्रयुक्त आद्युदात्त शेवे का स्वामी जी ने भी शी का रूप माना है । अतः उपर्युक्त ऋग्वेदीय प्रयोग के अर्थ की स्वरानुसार सङ्गति अपेक्षित है ।

पृ. २४ अङ्क ११ मार्गशीर्ष (सह) २०४७ ❀ वेद-ज्योति ❀ नवम्बर ९०, ६९२१/६२१ डाक लख २०९

श्रीमन् ! नमस्ते, आपका वर्ष -११-९० को पूर्ण हो चुका है, कृपया वार्षिक शुल्क ३०) [illegible] उनके मिलने पर ही अगला अंक भेजा जायेगा। अंकों को सँभाल कर रखिये, [illegible] सभी सदस्य, विशेषतः आजीवन संरक्षक अथर्ववेद के प्रकाशन में कृपया आर्थिक सहायता करें।

अष्टाध्यायी, शतपथ, निरुक्त,

अनुवादक— वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र सरस्वती शास्त्री, एम. ए. काव्यतीर्थ [illegible]

साम संहितोपनिषद् ब्राह्मण १०), देवताध्याय १०), शतपथ काण्ड१-२, २०), वेदार्थपारिजातखण्ड[illegible]
साम वंश ब्राह्मण१०), अष्टाध्यायी २०), शतपथ काण्ड ३-४, २०), निरुक्त ३०) अथर्ववेद १००) मगाइये।
—वीरेन्द्र सरस्वती, अध्यक्ष, श्री [illegible] शास्त्री मन्त्री, विश्ववेद परिषद्. सी ८१७ महानगर लखनऊ

समाचार २९-९-९० को श्री सत्यदेव भारद्वाज वेदालङ्कार, नैरोबी विश्ववेद परिषद् के अध्यक्ष हुए। राम-जन्मभूमि-रथयात्रा में श्री अडवाणी की गिरफ्तारी पर भा०ज०पा० ने सरकार का समर्थन वापस लिया, २४ अ०को भारत-बन्द में लाखों गिरफ्तार हुए, अनेक स्थानोंपर गोली चली।

वैदिक दैनन्दिनी पौष २०४७ विक्रम

तिथिकृ १ २ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १४ ३० शु १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १४ १५
वार सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो
नक्षत्र मृ आ पु न पु श्ले म पू उ ह चि स्वा वि अनु ज्ये ज्ये मू पू उ श्र ध श पू उ रे अ भ कृ रो मृ
दि ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१

प्रेषक— मुद्रक आदर्श प्रेस
सी ८१७ महानगर, लखनऊ ६
उ० प्र०, भारत, पिन २२६००६

सेवा में क्रमांक
श्री लाइब्रेरियन
स्थान गुरुकुल कांगड़ी
पत्रालय यूनीवर्सिटी
पिन
जनपद (हरिद्वार)
प्रदेश

ऋग्वेद ओ३म् यजुर्वेद

वर्ष १४ अंक १२ अथर्व वेद खण्ड १३

वेद-ज्योति

पौष २०४७ दिसम्बर १९९०

उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार
वेद-मानव-सृष्टि-संवत् १ ९६ ०८ ५३ ०९१, दयानन्दाब्द १६६

शुल्क वार्षिक ३०), आजीवन ३००) विदेश में २५ पौंड, ५० डालर
सम्पादक— वेदाचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती शास्त्री एम. ए. काव्यतीर्थ उपाध्यक्ष विश्व वेदपरिषद्
सहायक— विमला शास्त्री, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६' दूरभाष ७३५०१
दिल्ली कार्यालय—श्री सञ्जयकुमार, मन्त्री, बी६ हिल व्यू वसन्तविहार नयी दिल्ली ५७, दूर० ६०१४५२

विश्व वेदपरिषद् के उपाध्यक्ष
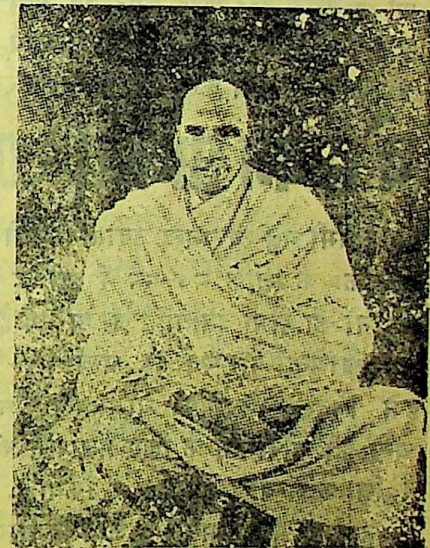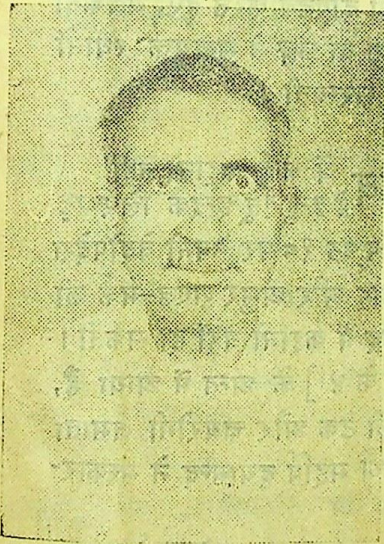
पं० आशुराम आर्य चण्डीगढ़
देहान्त १०-११-९०

महर्षि के सच्चे शिष्य

अमर बलिदानी महात्मा स्वामी श्रद्धानन्द
गोली मारने से बलिदान २३-१२-१९२६ ई०

श्रद्धा से श्रद्धानन्द ने सीने पर खायीं गोलियाँ! धन्य है! तुमको ऐ स्वामी, तुमने धर्म बचा लिया।

सामवेद अथर्व वेद

सत्यार्थ प्रकाश-मन्त्र-व्याख्या

क्रमाङ्क ६२। ऋषि आङ्गिरस सव्य, देवता इन्द्र, छन्द जगती, स्वर निषाद, विनियोग उपदेश

विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता सधमादेषु चाकन ॥ ऋग्वेद १.५१.८

आदिसृष्टि में एक मनुष्य-जाति थी, पश्चात् श्रेष्ठों का नाम 'आर्य' विद्वान् देव, और दुष्टों के 'दस्यु' अर्थात् डाकू मूर्ख (अविद्वान्) नाम होने से आर्य और दस्यु दो नाम हुए। ...आर्यों में पूर्वोक्त प्रकार से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र चार भेद हुए। द्विज = विद्वानों का नाम 'आर्य' और मूर्खों का नाम शूद्र और 'अनार्य' अर्थात् अनाड़ी नाम हुआ। (पुनः-) यह लिख चुके हैं कि 'आर्य' नाम धार्मिक विद्वान् आप्त पुरुषों का, और इनसे विपरीत जनों का नाम 'दस्यु' अर्थात् डाकू-दुष्ट-अधार्मिक और अविद्वान् है। तथा ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य द्विजों का नाम 'आर्य' और शूद्र का नाम 'अनार्य' अर्थात् अनाड़ी है। [समुल्लास ८]

महर्षि-भाष्य- फिर वह सभाध्यक्ष क्या करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

हे सभाध्यक्ष! आप उत्तम ज्ञानादि गुणवाले व्यवहार की सिद्धि के लिए (आर्यान्) सर्वोपकारक धार्मिक विद्वान् मनुष्यों को जानो, और जो (दस्यवः) पर-पीड़ा करनेवाले अधर्मी दुष्ट मनुष्य हैं उन को जानकर नष्ट करो, और उन सत्य-भाषणादि-धर्म-रहित मनुष्यों को दण्डित करते हुए, यज्ञकर्ता के प्रेरक होते हुए उत्तम शक्ति सामर्थ्य वाले बनिये, जिससे आपके उपदेश वा सङ्ग से सुखयुक्त स्थानों पर उन सब कर्मों की ही मैं इच्छा करता हूं। (महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती)

वेद का अनर्थ (२०) इन्द्रायेन्दो परिस्रव में कोई कहानी नहीं हे इन्दु! तू इन्द्र के लिए बढ़

स्वामी गङ्गेश्वरानन्द उदासीन ने वेदप्रदीप नवम्बर ९० के अंक में पृष्ठ १८ पर अपनी वेदोपदेश चन्द्रिका के श्लोक ८७-८८ में ऋग्वेद ९-११३-२ में सोम-सावित्री-विवाह और असुर शण्ड-मर्क की कहानी का होना बताया है जो असत्य है। सृष्टि के आदि में ईश्वर-दत्त वेद में कहानी नहीं हो सकती।

इन्द्रायेन्दो परिस्रव १९ मन्त्रों [९-११२ के ४, १३ के ११ और १४ के ४] के अन्त में आया है, इसे विदेशी निरर्थक, या सायण सोम निचोड़ने के समय ध्रुपद राग की टेक और क्षयरोगी जमाता चन्द्र की नीरोगता के लिए प्रजापति की प्रार्थना बतायें किन्तु सच्चा अर्थ महर्षि दयानन्द ने संस्कार-विधि के संन्यास संस्कार में किया है, पाठक वहाँ देखें।

हे इन्दु परमात्मन्! तू जीव के लिए ऐश्वर्य बढ़ा। हे जीव, और हे संन्यासी! तू ऐश्वर्य बढ़ा।

ऋ ९-११३-२ में कहानी बतायी कि सोम ने हथेली में वेद छिपालिये, सावित्री ने उनसे लेकर पिता प्रजापति को दिये। असुर-पुरोहितों के विश्वास-घात करके देवों से मिल जाने पर भी साथ न मिलने पर मन्त्र में किसी का कोई तनिक भी सङ्केत तक नहीं—

आ पवस्व दिशां पत आर्जीकात्सोम मीढ्वः। ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥

भावार्थ- हे सौम्य संन्यासी! तू पवित्र कर, ईश्वर के लिए सब ओर से गमन कर। (दयानन्द)
हे इन्दु ईश्वर! तू राजा का अभिषेक करा (आर्यमुनि), हे तेजस्वी, तू ऐश्वर्यार्थ प्रयत्नशील हो (जयदेव शर्मा)

—वीरेन्द्र सरस्वती

अब मन्थी पुरोरुक् से विमित को बनाते हैं क्योंकि मन्थी आद्य है अतः अत्ता को ही यह करके और इसके लिए यह आद्य पैदा करते हैं। २१

अब अध्वर्यु चार बार लिया घी लेकर अधिदेवन में सोना रखकर य १०-२६ से होम करता है—

अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिर्जुषाणो अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिराज्यस्य वेतु स्वाहा। २२

अब अक्षों को रखता है— स्वाहाकृताः सूर्यस्य रश्मिभिर्यातध्वं सजातानां मध्यमेष्ठ्याय। (य १०.२६)

यह पृथु अग्नि अधिदेवन है जिसके अङ्गारे अक्ष(पाँसे) हैं, उसे ही इससे हृष्ट करता है। उसके अनुमत यह घरों में लायो जाती है। जो राजसूय करता या जानता है वह इन अक्षों पर कहता है— गौ से क्रीडा करो। दक्षिणा २ पूर्णवाह हैं। २३

अब कहता है— स्विष्टकृत् अग्नि के लिए मन्त्र बोलो, यह कर्म दो आहुतियों के बीच में किया जाता है क्योंकि यह यज्ञ प्रजापति है जिससे यह प्रजा पैदा हुई,आगे भी होगी, अतः इसे प्रजापति के मध्य रखता और प्रेरणा देता है। आश्रावण कर कहता है—स्विष्टकृत् अग्नि का यज्ञ कर। वषट् कहकर आहुति देता है। २४

अब इडा के बुलाये जाने पर जल का आचमन-अङ्गस्पर्श कर माहेन्द्र ग्रह लेकर स्तोत्र पढ़ता है,उसे बुलाता है। वह उतरता है। यह तात्र-शस्त्र के अन्त में होता है। २५

यह अध्याय ४ में ब्राह्मण ४ पूर्ण हुआ।

शतपथ कांड५, अध्याय४, ब्राह्मण५, (राजसूय यज्ञ)

संसृपा हवि, दश पेय, उपसद् याग

अभिषिक्त होते वरुण से भर्ग हट गया। भर्ग-वीर्य विष्णु यज्ञ से हट गया। जो यह एकत्रित जल-रस है जिससे यह इसे अभिषिक्त करता है,उसने, इसका भर्ग मार दिया। १

उसे इन देवताओं से फिर इस यजु १०-३० से संसर्पण करता है—

सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्ट्रा रूपैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रेणास्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसा ऽग्निना तेजसा सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूतः प्रसर्पामि। २

क्योंकि १० देवताओं को १० दिन पेय देकर संसर्पण किया अतः दशपेय और संसृपा-हवि नाम है। ३

कहते हैं— १० सोमपा पितामहों को गिन कर सरके तब वे इसका सोमपान करते हैं, अतः दो-तीन कहकर उन्हें पाता है अतः इन्हीं देवताओं को गिन गिन कर सरके। ४

इन्हीं के द्वारा वरुण ने इस यज्ञ का सोम लिया था, इन्हीं से यह इसको सोम-पान कराता है। जबतक इस अभिषेचनीय की यह उदवसानीय इष्टि बनी रहती है। ५

अब ये हवियाँ बनाता है— सविता का १२ या ८ कपालों का पुरोडाश। वह देव-प्रेरक है, उनोंसे वरुण ने अनुसंसर्पण किया था वैसे ही यह करता है, वहाँ एक कमल देता है। ६

अब सरस्वती का चरु बनाता है। यह वाणी ही है, इसीसे वरुण ने अनुसंसर्पण किया वैसे हो यह करता है, वहाँ एक कमल रखता है। ७

अब त्वष्टा का १० कपाल का पुरोडाश बनाता है। यह रूपों का ईश है, इसीसे उसके रूपों से वरुण ने संसर्पण किया था वैसे ही यह करता है, वहाँ १ कमल देता है। ८

पूषा का चरु बनाता, वह पशु हैं जिनसे वरुण के समान संसर्पण कर यह १ कमल देता है। ९

इन्द्र का ११ कपालों का पुरोडाश बनाता है, इन्द्रिय ही वीर्य इन्द्र है, इसी से वरुणवत संसर्पण कर एक कमल देता है। १०

बृहस्पति का चरु बनाता है, इसी ब्रह्म से वरुणवत् संसर्पण कर १ कमल देता है। ११

वरुण का जौ का चरु बनाता है, उसने जिस ओज से इस प्रजा को लिया, संसर्पण किया वैसे ही यह करता और १ कमल देता है। १२

उपसद दशम देवता हैं, वहाँ ५ कमल देता है, ऐसे १२ कमलों की माला बनाता है, वह दीक्षा है, उस दीक्षा से दीक्षित होता है। १३

१२ हा महीने वर्ष-सर्व के हैं उसीसे इसे दीक्षित करता है, कमल द्यौ के, वधक नक्षत्रों के, बिसञ्ज (कमल-ककड़ी) नक्षत्रों के रूप हैं; उनसे इसे इन लोकों पर दीक्षित करता है।१४

अब सोम-राजा को क्रय कर दो भाग कर ले जाते हैं; आधा चौकी पर और आधा ब्रह्मा के घर-रखकर आतिथ्य और उपसदों का कार्य करता है। १५

ये हवियाँ बनाता है- आग्नेय अष्टाकपाल पुरोडाश; सौम्य चरु विष्णु का त्रिकपाल पुरोडाश या चर और इष्टचतुकूल यज्ञ करता है। १६

परन्तु यह न करे। जो इन यज्ञपथ से चलता है वह गिरता है, और उपसत्पथ से जानेवाला या पथ से चलता जाता है अतः उपसत्पथ से ही ले जाये। १७

जो अग्नि का यज्ञ करता है वह उसके तेज के, सोम का याजी इसी के साथ संसर्पण करता है और विष्णु का यिाजी प्रत्यक्ष यज्ञ पाकर अपने में कर लेता है क्योंकि यज्ञ ही विष्णु है। १८

वह यह १७ वां अग्निष्टोम है जो प्रजापति-यज्ञ जिसे प्रत्यक्ष पाकर अपने में करता है। १९

उसकी दक्षिणा पहले गर्भ वाली १२ पष्ठौही गौएँ हैं। १२ ही महीने वर्ष के हैं जो प्रजापति-यज्ञ है जिसे पाकर अपने में करता है। २०

उनके १२ गर्भ जोड़ कर २४ हुए जो संवत्सर के पक्ष हैं जो प्रजापति-यज्ञ है उसे अपने में करता है। २१

उन्हें ब्रह्मा के लिए देता है क्योंकि वह यज्ञ को दक्षिण से बचाता है, हिरण्मयी माला उद्गाता के लिए रुक्म होता के लिए, हिरण्मय २ प्राकाश २ अध्वर्युओं के लिए, अश्व प्रस्तोता, वशा गौ मैत्रावरुण बैल ब्राह्मणाच्छंसी, २ वस्त्र नेष्टा-पोता, अन्यतर-युक्त यवाचित अच्छावाक, गौ अग्नीत् के लिए। २२

वे ये १२ या १३ दक्षिणा होती हैं, १२ या १३ ही संवत्सर के महीने हैं जो प्रजापति-यज्ञ है, उसे प्रत्यक्ष पाकर अपने में करता है। २३

यह अध्याय ४ में ब्राह्मण ५ और अध्याय ४ समाप्त हुआ॥

शतपथ ब्राह्मण काण्ड ५, अध्याय ५, ब्राह्मण १

पञ्च बिल सञ्ज्ञक चरु

अग्नि का ८ कपालों का पुरोडाश वेदि के पूर्वार्ध में, ऐन्द्र १२ कपालों का पुरोडाश वा सौम्य चरु दक्षिणार्ध में, वैश्वदेव-चरु पश्चिमार्ध में, मैत्रावरुणी खीर उत्तरार्ध में, बार्हस्पत्य चरु मध्य में रखता है क्योंकि यह ५ हवियाँ ५ स्थानों में रहती हैं अतः पूरे चरु का पञ्चबिल नाम है। १

इससे राजसूय-याजी यज्ञ करता है, इसे दिशा-ऋतु-स्तोम-छन्दों तक पहुंचाता है अतः इसका आभारी होता है। यदि वह इससे यज्ञ न करे या प्रमाद करे तो पतित हो जाये। २

वह जब आग्नेय अष्टा-कपाल पुरोडाश से यज्ञ करता है, जो इसे पूर्व दिशा-ऋतु-स्तोम-छन्दों में चढ़ाता है तो उसीसे इसे सफल कर देता है, संस्रव (हविशेष) को बार्हस्पत्य चरु (मध्य) में ले जाता है। ३

जब ऐन्द्र एकादश-कपाल पुरोडाश वा सौम्य चरु से यज्ञ करता है, जो इसे दक्षिण० (पूर्ववत्)। ४

जब वैश्वदेव चरु से यज्ञ करता है और जो इसे पश्चिम ० ,, । ५

जब मैत्रावरुणी पयस्या से यज्ञ करता है, जो इसे उत्तर ० ,, । जो संस्रवों को बार्हस्पत्य चरु में ले जाता है तो सभी ओर से इसमें अन्नाद्य धारण कराता है, अतः एव दिशा दिशा से राजा के लिए अन्नाद्य पहुँचाया जाता है। ६

अब जो बार्हस्पत्य चरु से यज्ञ करता है जो इसे ऊपर की दिशा में० ... सफल कर देता है। ७

दक्षिणाएँ — अग्नि के ८ कपालों के पुरोडाश की सोना है क्योंकि यह अग्नि का वीर्य है, आग्नीत् के लिए क्यों कि वह निदान से अग्नि है। ८

ऐन्द्र पुरोडाश की ऋषभ, क्योंकि वह ऐन्द्र है, सौम्य चरु की भूरा बैल, क्योंकि जो भूरा वह सोम का, ब्रह्मा के लिए, क्योंकि वह यज्ञ को दक्षिण से बचाता है। ९

वैश्वदेव चरु की बिन्दु वाला बैल, क्योंकि वह रूपों का भूमा (बाहुल्य) है, प्रजा ही विश्वेदेव, बाहुल्य प्रजा, उसे होता के लिए, क्योंकि वह बाहुल्य है। १०

पयस्या की दक्षिणा वशा गाय क्योंकि वह मैत्रावरुणी है; यदि वह न मिले तो जो कोई अप्रवीता हो, सभी वशाएँ अप्रवीता हैं, उसे २ अध्वर्युओं के लिए देता है, प्राणादान-अध्वर्यु मित्रावरुण हैं। ११

बार्हस्पत्य की दक्षिणा शितिपृष्ठ (सफेद-पीठ) बैल है। ऊपर बृहस्पति की दिशा और सूर्य का पथ है, उसे ब्रह्मा के लिए देता है क्योंकि बृहस्पति देवों का ब्रह्मा है, यह इसका है। वह इससे भी३ विष्ठ-याजी अन्नाद्य की कामना वाला यज्ञ करे अतः इस में सब ओर से अन्नाद्य धारण कराता है, वह निश्चय ही अन्नाद्य ही होता है। १२ यह अध्याय ५ का ब्राह्मण १ समाप्त हुआ।

ब्राह्मण २ १२ प्रयुग् हवि

वह राजा प्रयुजों की हवियों से यज्ञ करता है और ऋतुओं का सेवन-प्रयोग करता हुआ युक्त करता उनके पीछे चलता है, ले युक्त होकर इसे धारण करती हैं। १

वे हवियाँ १२ हैं, १२ ही महीने हैं। कहते हैं कि प्रति महीने यज्ञ करे परन्तु मनुष्य की आयु कौन जानता है अतः प्रति महीने न करे, शम्यापराव्याध में ही पहले ६ से, और फिर लौटकर शम्यापराव्याध में ही ६ से यज्ञ करे। २

किन्तु ऐसा न करे। इन ६ ही पूर्व हवियों को समान-बर्हि बनाता है, उनके देवताओं का रूप जैसे शिशिर में युक्त कर आगे बढ़कर जो गयीं तो वर्षा तक ६ ऋतुओं को युक्त करता है वे इन्हें ले जाती हैं। दक्षिणा २ पूर्वाग्निवाह (बैल) हैं। ३

६ ही उत्तर-हवियाँ बनाता है जो युक्त होकर वार्षिक यज्ञ तक ले जाती हैं इनकी २ बैल दक्षिणा है। ४

पहले कुरु-पाञ्चाल कहा करते थे— युक्त ऋतुएँ हमें ले जातीं या हम प्रयुक्त ऋतुओं के पीछे चलते हैं। क्योंकि इनके राजा राजसूय-याजी थे अतः वे ठीक कहते थे। ५

आग्नेय ८ कपालों का पुरोडाश, सौम्य चरु, सविता का १२ या ८ कपालों का पुरोडाश, बार्हस्पत्य चरु, त्वाष्ट्र दशकपाल, वैश्वानर १२ कपाल पुरोडाश ये ६ पूर्व हवियाँ हैं। ६ [अर्धप्रपाठक ६६]

६ ही उत्तर चरु हैं — सारस्वत-पौष्ण-मैत्र-क्षैत्रपत्य-वारुण-आदित्य। ७

अब श्येनी विचित्रगर्भा को अदिति के लिए पाता है। उसको यही आवृत् है कि जो अष्टापदी वशा की है, या यह अदिति है, इसी का यह गर्भ करता है, उसकी ऐसी ही श्येनी विचित्रगर्भा दक्षिणा है। ८

अब बिन्दु वाली विचित्रगर्भा को मरुतों के लिए पाता है, उनकी यही आवृत् है। प्रजा ही मरुत् हैं, उनका ही इसे यह गर्भ करता है, उसको ऐसी पृषती विचित्रगर्भा दक्षिणा है। ९

ये दो पशुबन्ध हैं, ये होने पर अन्यथावत् भी मिलते हैं। जिसे अदिति के लिए पाते उसे आदित्यों के लिए भी पाते हैं। सर्व ही आदित्य हैं, उनका ही यह गर्भ करता है। जिसे मरुतों के लिए, उसे विश्वेदेवों के लिए पाते हैं। वे ही सर्व हैं, उसी का इसे यह गर्भ करता है। १०

यह अध्याय ५ में ब्राह्मण २ समाप्त हुआ।

ब्राह्मण ३ केश-वपनीय अतिरात्र-धर्म

अभिषेचनीय से इष्टि के पश्चात् केश नहीं कटाता क्योंकि अभिषेकार्थ एकत्रित जल-रस वीर्य है उसके बाद पहले निकले केश यदि काटे तो कुटिल श्री का ही नाश कर दे। १

बाल १ वर्ष नहीं बनाता, वर्ष भर व्रतचर्या होती है तब व्रत-विसर्जनीयोपयोग नामक केश-वपनीय स्तोम होता है। २

उसके २१ प्रातःसवन, १७ माध्यन्दिन सवन, १५ तृतीय सवन उक्थ-षोडशी रात्रि के साथ होते हैं। ३

त्रिवृद् राथन्तर सन्धि होती है। यही एकविंश है जो यह तपता (सूर्य) है वह २१ को छोड़ कर १७, १७ से १५, १५ से इसी त्रिवृत् में प्रतिष्ठित होता है। ४

यही रथन्तर उसका पृष्ठ उसी प्रतिष्ठा में अतिरात्र बन जाता है। ५

वह निवृत्त ही हो जाता, अपने में ही उस श्री को नियुक्त करता है। उसकी यही व्रतचर्या जीते तक बनी रहती है छूटती नहीं। ६

आसन-गद्दी से उठ, जूते पहन, रथ आदि जो भी उसके यान हैं उन पर जाता है जो ऊपर ऊपर होता है, अन्य सब राजसूय-याजी के नीचे है अतः उसकी आजीवन ऐसा व्रतचर्या है, विपरीत नहीं। ७

अध्याय ५ में ब्राह्मण ३ पूर्ण हुआ।

—❀—

१८०१ यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा । उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि । घृतं घृतयोने पिब प्र प्र यज्ञपतिं तिर ॥ ३
२ इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदा । समूढमस्य पांसुरे ॥ ४
३ त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । इतो धर्माणि धारयन् ॥ ५
४ विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ६
५ तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् । ७
६ दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।
हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैरा प्र यच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ॥ ८

१८०१ जिसके विशाल ३(भूमि-अन्तरिक्ष-द्यौ) विक्रमों में सब भुवन रहते हैं वह सूर्य ! तू विक्रम कर, हमारे निवास के लिए विशाल स्थान कर, हे जल के भण्डार, जल सुखा, यज्ञपति को पार कर। ३
यह जगत् सूर्य से बना, उसने तीनों लोकों में प्रकाश दिया; एक अंश परमाणु-रूप में छिपा है। ४
पृथिवी-पालक अदम्य सूर्य ३ लोकों में ३ पद रखता है, अतः नियमों को धारण करता है। ५
मनुष्यो ! सूर्य के कर्मों को देखो, जिनसे वह इन्द्र (बिजली) का युक्त सखा नियमों को बाँधता है। ६
विद्वान् द्यौ में फैले चक्षु के समान विष्णु(सूर्य)के उस परम पद को सदा देखते (समझते) हैं। ७
[यह मन्त्र ऋ १-२२-२०, यजु ६-५, साम उ८-२-५ में भी है, विष्णु का अर्थ ईश्वर, यज्ञ भी है। यहाँ अथर्ववेद के विज्ञान काण्ड होने से सूर्य अर्थ किया है —वीरेन्द्र सरस्वती।]
हे सूर्य ! तू द्यौ-पृथिवी-बड़े अन्तरिक्ष से बहुत प्रकाश-धन से दोनों हाथ भर, दायें-बायें से दे। ८

सूक्त २७ । इडा [वाणी-बुद्धि-विद्या-भाषा-विद्युत्-अन्न-माता]

७ इडैवास्माँ अनु वस्तां व्रतेन यस्याः पदे पुनते देवयन्तः ।
घृतपदी शक्वरी सोमपृष्ठोप यज्ञमस्थित वैश्वदेवी ॥ १

इडा ही हमें व्रत से शोभित करे, जिसके पाने में मनुष्य देव बन कर पवित्र होते हैं, वह स्नेह-युक्त, शक्तिमती, ऐश्वर्य सींचने वाली, सब विद्वानों की हितकारिणी होकर श्रेष्ठतम कर्म में स्थित हो। १

सूक्त २८ । विश्वे देवाः

८ वेदः स्वस्तिर्द्रुघणः स्वस्तिः परशुर्वेदिः परशुर्नः स्वस्तिः ।
हविष्कृतो यज्ञिया यज्ञकामास्ते देवासो यज्ञमिमं जुषन्ताम् ॥ १

वेद-मुद्गर-फरसा-यज्ञवेदि-शस्त्र हमें कल्याण-कारी हों, हवि-निर्माता, यज्ञ की कामना वाले, पूज्य विद्वान् इस यज्ञ [श्रेष्ठतम कर्म-सङ्गठन] में प्रेम से सम्मिलित हों। १

सूक्त २९ । अग्नि-विष्णु

९ अग्नाविष्णू महि तद् वां महित्वं पाथो घृतस्य गुह्यस्य नाम ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमा चरण्यात् ॥ १
१८१० अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणौ ।
दमेदमे सुष्टुत्या वावृधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमुच्चरण्यात् ॥ २

हे अग्नि-सूर्य ! तुम्हारा यह बड़ा प्यारा नियम है कि तुम छिपे जल को सेवन करते हुए मिलते हो। घर घर शरीर शरीर में ७ रत्नों (किरणों-धातुओं)को देते हुए तुम्हारी जिह्वा यज्ञ-घी लेती है।

[अग्नि की ७ तरह की काली-कराली आदि जिह्वाएँ(लपटें), सूर्य की ७ रंग की किरणें, शरीर में रस-रक्त-मांस-मेद-अस्थि-मज्जा-शुक्र ७ धातुएँ रत्न हैं।] १

हे अग्नि-विष्णु, तुम्हारा तेज महान् प्रिय है, तुम जल के गुप्त-सूक्ष्म भागों को लेते हुए मिलते हो घर-घर में सुन्दर स्तुति के साथ बढ़ते हुए तुम्हारी जयशक्ति यज्ञ-घी (रस-सार)को पाती है। २

सूक्त ३०। विश्वेदेवा:

१८११ स्वाक्तं मे द्यावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अकरयम्। स्वाक्तं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाक्तं सविता करत्॥१

द्यौ-भूमि-सूर्य-ब्रह्मणस्पति-सविता (पिता-माता-सखा-आचार्य-ईश्वर) मुझे ज्ञान-अंजन दें।

सूक्त ३१। इंद्र

१२ इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य यावच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥ १

हे धनी-शूर इन्द्र [राजन्], तू यथासम्भव श्रेष्ठ बहुत रक्षाओं से हमें सदा जीवित रख,जो दुष्ट हमसे द्वेष करे वह नीचे गिरे, जिस दुष्ट से हम द्वेष करें वह प्राण छोड़ दे। १

वह मन्त्र कुछ भेद से ऋ ३-५३-२१ में है।

सूक्त ३२। इन्द्र

१३ उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम्। अगन्म बिभ्रतो नमो दीर्घमायुः कृणोतु मे॥ १

सूक्त ३३। विश्वेदेवा:

१४ सं मा सिञ्चन्तु मरुतः सम्पूषा सं बृहस्पतिः । १
सं मायमग्निः सिञ्चतु प्रजया च धनेन च दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥ ।

हम प्रिय-क्रियाशील-युवा [प्रबल]-आहुति से बढ़ने वाली [यज्ञ-जठर-अग्नि] में अन्न डालते जा रहें [उसे मन्द न होने दें]। वह मेरी आयु लम्बी करे। १

वायु-प्राण-पूषा[पोषक मन-सूर्य-भूमि]-बृहस्पति[आचार्य [यह अग्नि[ईश्वर यज्ञ-ठर-,रहुएश की आग]-अग्रणी नेता-विद्वान] मुझे प्रजा और धन से सींचें, और मेरी आयु लम्बी करें १

सूक्त ३४। अग्नि

१५ अग्ने जातान् प्रणुदा मे सपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व ।
अधस्पदं कृणुष्व ये पृतन्यवोऽनागसस्ते वयमदितये स्याम ॥ १

हे जातवेद अग्नि[शासक-विद्वान], तू हमारे उत्पन्न जीवित प्रसिद्ध और सम्भावित अप्रसिद्ध शत्रुओं को हटा, जो युद्धेच्छुक हों उन्हें पैरों तले गिरा दे, हम तेरे प्रति निरपराध रहकर अदिति [अदीन ईश्वर और मातृभूमि के लिए समर्पित हों। १

यह मन्त्र [पूर्वार्ध] कुछ भेद से यजुर्वेद १५-१ में है।

सूक्त ३५। जातवेदाः

१८१६ प्रान्यान्त्सपत्नान्त्सहसा सहस्व प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व।
इदं राष्ट्रं पिपृहि सौभगाय विश्व एनमनु मदन्तु देवाः ॥ १

१७ इमा यास्ते शतं हिराः सहस्रं धमनीरुत। तासां ते सर्वासामहमश्मना बिलमप्यधाम् ॥ २

१८ परं योनेरवरं ते कृणोमि मा त्वा प्रजाभि भून्मोत सूनुः।
अस्वं त्वाप्रजसङ्कृणोम्यश्मानं ते अपिधानङ्कृणोमि ॥ ३

हे जातवेद (उत्पन्न शत्रु-मित्र के ज्ञाता शासक)! तू अपने बल से प्रसिद्ध शत्रुओं को हटा और अप्रकट को दूर कर, समृद्धि के लिए इस राष्ट्र को पाल। सब विद्वान् तेरा अनुमोदन करें। १

ये जो तेरी सैकड़ों-हजारों शिरा-धमनियाँ (अङ्ग) हैं उन सबके बिल को मैं पत्थर (कठोरता) से बन्द करूँ। २

मैं तेरे घर के शत्रुको नीचा करूँ, पूजा-पुत्र तेरा तिरस्कार न करें, मैं तुझे बुद्धिमान्-अताडनीय बनाऊँ, तेरे कवच को पत्थर के समान दृढ़ करूँ। २

सूक्त ३६। मित्र

१९ अक्ष्यौ नौ मधुसङ्काशे अनीकं नौ समंजनम्। अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इन्नौ सहासति॥ १

दोनों मित्रों की आँखें मधुवत, मुख विकसित हों, मुझे हृदय में अन्दर कर, दोनों के मन साथ रहें। १

सूक्त ३७। दम्पती

२० अभि त्वामनुजातेन दधामि मम वाससा। यथासौ मम केवलो नान्यासाङ्कीर्तयाश्चन॥ १

(हे पति) मैं तुझे अपने आच्छादक बल से बाँधती हूं जिससे तू केवल मेरा हो, अन्यों का कीर्तन न करे। १

अनुवाक ४, सूक्त ३८ से ५१ तक

अनुवाकविषय— दिव्य-सुपर्णेश्वर-सोम-रुद्र-भेषज-पुत्रोत्पत्ति-रायस्पोष-दान-रक्षणादि पदार्थ विद्या

सूक्त ३८ आसुरी (पीली सरसों)

२१ इदं खनामि भेषजं मां पश्यमभिरोरुदम्। परायतो निवर्तनमायतः प्रतिनन्दनम् ॥ १

२२ येना निचक्र आसुरीन्द्रं देवेभ्यस्परि। तेना निकुर्वे त्वामहं यथा तेऽसानि सुप्रिया ॥ २

२३ प्रतीची सोममसि प्रतीच्युत सूर्यम्। प्रतीची विश्वान्देवान् तां त्वाच्छावदामसि ॥ ३

२४ अहं वदामि नेत्त्वं सभायामह त्वं वद। ममेदसस्त्वङ्केवलो नान्यासाङ्कीर्तयाश्चन ॥ ४

२५ यदि वासि तिरोजनं यदि वा नद्यस्तिरः। इयं ह मह्यं त्वामोषधिर्बद्ध्वेव न्यानयत् ॥ ५

मैं (पत्नी) अपनेको दर्शनीय-कर्त्री आकर्षक औषधि लेतीहूं जो दूरस्थको लौटाती, आये को हृष्ट करती है। १

आसुरी जिस गुण से राजा को दिव्य जनों से ऊँचा करती है उसी से मैं (पत्नी) तुझ (पति) को आकृष्ट करूँ जिससे उत्तम धर्मपत्नी हो जाऊँ। २

हे औषधि, तू चन्द्र-सूर्य-सब देवों के सामने रहती है अतः तुझे हम अच्छा कहते हैं। ३

(हे पतिदेव,) घर में मैं बोलूँ, आप नहीं, आप सभा में बोलें, आप केवल मेरे हों, अन्यों का नाम न लें। ४

चाहे तू दूर हो या नदीके पार छिपा हो, यह मेरेलिए औषधि अवश्य तुझे मानो बाँधकरले आयेगी। ५

सूक्त ३९ । सुपर्ण । वर्षा

१८२६ दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तमपां गर्भं वृषभमोषधीनाम् ।
अभीपतो वृष्ट्या तर्पयन्तमा नो गोष्ठे रयिष्ठां स्थापयाति ॥ १

दिव्य, जल-धारक, वर्षा-कारक, औषधि-उत्पादक, सब प्रकार से वर्षा से तृप्ति-कारक और रयि में स्थित मेघ को वह सूर्य हमारे गोष्ठ पर स्थापित करता है। १

सूक्त ४० । सरस्वान् [समुद्र

२७ यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे यस्य व्रत उप तिष्ठन्त आपः ।
यस्य व्रते पुष्टपतिर्निविष्टस्तं सरस्वन्तमवसे हवामहे ॥१

२८ आ प्रत्यञ्चं दाशुषे दाश्वंसं सरस्वन्तम्पुष्टपतिं रयिष्ठाम् ।
रायस्पोषं श्रवस्युं वसाना इह हुवेम सदनं रयीणाम् ॥२

जिसके नियम में सब प्राणी,जल, पुष्टों का रक्षक सूर्य चलताहै उस समुद्रको हम रक्षार्थ याद करें । १

यहाँ रहकर हम सामने गतिशील, दानी को सुखद,पुष्ट-पति, धन में स्थित, धन-संपोषक, अन्नप्रद, ऐश्वर्यों के भण्डार समुद्र का उपयोग करें । २

सूक्त ४१ । श्येन[वायु]

२९ अति धन्वान्यत्यपस्ततर्द श्येनो नृचक्षा अवसानदर्शः ।
तरन् विश्वान्यवरा रजांसीन्द्रेण सख्या शिव आ जगम्यात् ॥ १

३० श्येनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः ।
स नो नि यच्छाद्वसु यत्पराभृतमस्माकमस्तु पितृषु स्वधावत् ॥ २

मनुष्य-द्रष्टा, विराम-दर्शी वायु मरुस्थल पर भी जल-वर्षा करता है, तब नीचे के लोक पार करता हुआ वह अपने मित्र सूर्य के साथ हमें कल्याणकारी हो । १

वायु मनुष्य-द्रष्टा, दिव्य, अच्छा पालक, हजारों पैरों वाला सैकड़ों का कारण, अन्न-आयु-धारक है, वह हमें उस धन को दे जो पराक्रम से धारित होता है, वह हमारे पालकों में आत्मधारक बल दे। २

सूक्त ४२ । सोम-रुद्र । औषधि-वैद्य

३१ सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमा विवेश ।
बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतञ्चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत् ॥ १

३२ सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मद् विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।
अवस्यतं मुञ्चतं यन्नो असत् तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥ २

हे सोम-रुद्र, जो फैलने वाला रोग हमारे घर-शरीर-प्राण में प्रविष्ट है उसे और दुर्गति को दूर करो, हमारा किया अपराध हम से छुड़ाओ । १

हे सोम और रुद्र, तुम हमारे शरीरों में इन सब औषधियों को धारण कराओ । जो बँधा हुआ पाप और रोग है उससे हमारी रक्षा करो । हमारे किये पाप-रोगों को हम से छुड़ाओ । २

सूक्त ४३ । वाचः । वाणियाँ

१८२३ शिवास्त एका अशिवास्त एकाः सर्वा बिभर्षि सुमनस्यमानः ।
तिस्रो वाचो निहिता अन्तरस्मिन् तासामेका वि पपातानुघोषम् ॥ १

वे वाणियाँ कोई शुभ,कोई अशुभ हैं तू अच्छे मन वाला होकर सबको धारण करता है । ३ वाणियाँ इसमें अन्दर छिपी हैं (परा-पश्यन्ती-मध्यमा),उनमें से एक (वैखरी)ध्वनि के साथ निकलती है । १

सूक्त ४४ । इन्द्र-विष्णु [जीव-ईश्वर, सेनापति-सभापति, वायु-सूर्य]

३४ उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनयोः ।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथा त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम ॥ १

इन्द्र-विष्णु दोनों जीतते हैं, इन दोनों में से कोई नहीं हारता । जब दोनों स्पर्धा करते हैं तो हजारों शत्रुओं को शरीर -मन-प्राण तीनों से दूर कर देते हैं । १

सूक्त ४५. ईर्ष्या की भेषज

३५ जनाद्विश्वजनीनात् सिन्धुतस्पर्याभृतम्। दूरात्त्वा मन्य उद्भृतमीर्ष्याया नाम भेषजम् ॥१

३६ अग्नेरिवास्य दहतो दावस्य दहतः पृथक् । एतामेतस्येर्ष्यामुद्नाग्निमिव शमय ॥ २

सार्वजनिक स्थान और दूर समुद्र से लाये [हे सिन्धुफल],तुझे मैं ईर्ष्या की प्रसिद्ध दवा मानता हूं ।१
जैसे पानी से आग शान्त की जाती है वैसे दावानलवत् जलते इस को ईर्ष्या को तू शान्त कर । २

सूक्त ४६ । सिनीवाली [पत्नी,नगर-पालिका, लोकसभा]

३७ सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा। जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजा देवि दिदिड्ढि नः॥१

३८ या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी । तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥२

३९ या विश्पत्नीन्द्रमसि प्रतीची सहस्रस्तुकाभियन्ती देवी ।
विष्णोः पत्नि तुभ्यं राता हवींषि पतिं देवि राधसे चोदयस्व ॥ ३

हे अन्नवाली, बहुप्रशंसित, जो विद्वानों की स्वप्रेरित है तू दिया हव्य(कर)ले; हे देवी, सुप्रजा दे । १
जो उत्तम बाहों-अङ्गों-वाली-बहुसन्तान वाली है उस प्रजा-पालक, अन्नवती के लिए हवि(आदर)दो। २
जो प्रजा-रक्षक, सामने रहती है;हजारों से प्रशंसित, गतिशील, देवी सुखदा है , हे यज्ञ की रक्षक पत्नी और सभा, तुझे देय पदार्थ दिये जाते हैं, तू सम्पत्ति के लिए पति-राष्ट्रपति को आगे बढ़ा । ३

सूक्त ४७ । कुहू । अमावास्या, घरवाली पत्नी, कार्यकारिणी

४० कुहूं देवीं सुकृतं विद्मनापसमस्मिन् यज्ञे सुहवा जोहवीमि ।
सा नो रयिं विश्ववारं नि यच्छाद् ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥ १

४१ कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी हव्या नो अस्य हविषो जुषेत ।
शृणोतु यज्ञमुशती नो अद्य रायस्पोषं चिकितुषी दधातु ॥ २

उत्तम संयोजक मैं इस यज्ञ (सङ्गठन) में दिव्य, उत्तम कर्म वाली कर्तव्य-ज्ञात्री, कुहू गुप्त सभा को बुलाऊँ, वह हमारे विश्व-वरणीय ऐश्वर्य को दे और सैकड़ों दानों-प्रशंसनीय वीर दे(नियुक्त करे)। १
कुहू (पत्नी-सभा) विद्वानों की अमरता की रक्षक है, आदरणीया वह हमारा आदर पाये, सङ्गठन चाहती हुई वह हमें सदा सुने, सब जानने वाली होकर हमें धन और पुष्टि को दे । २

सूक्त ४८ । राका । पूर्णिमा, तद्वत् पत्नी, राज्य-सभा

१८७२ राकामहं सुहवा सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ।। १

४३ यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ।। २

संयोजक मैं सौभाग्यशालिनी राका को अच्छी स्तुति से बुलाता हूं ' वह सुने, स्वयं समझे सूची को न काटते हुए कार्यों पर विचार करे और सैकड़ों लाभप्रद प्रशंसनीय वीर नियुक्त करे। १
हे सौभाग्यशालिनी राका ! जो तेरी सम्मतियाँ हैं जिनसे दानी के लिए धन देती है उन से प्रसन्न होकर हमें हजारों के पोषक धन को देती हुई सदा मिलें। २

सूक्त ४९ । देवपत्न्यः । देवों की पत्नियाँ

४४ देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये ।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छन्तु ।। १

४५ उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्यग्नाय्यश्विनी राट् ।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ।।

प्राकृतिक शक्तियाँ और विद्वानों की पत्नियाँ हमारी बाल-रक्षा, अन्न-वितरण और युद्ध-विजय में विशेष रक्षा करें। जो स्थल-जल-सेना, प्रजा-पालन में नियुक्त हैं वे प्रशंसित देवियाँ हमें सुख दें। १
और देव-पत्नियाँ वाणी का अभ्यास करें। इन्द्राणी [बिजली, सेनाधीश-पत्नी]; अग्नायी [आग, मन्त्री-पत्नी], राट् अश्विनी [दीप्त प्राणोदान, हाइड्रोजन-आक्सीजन, सूर्य-चन्द्र शक्तियाँ, वैद्य-पत्नी] रोदसी [वायु, वायुसेनाधीश-पत्नी], वरुणानी [जलसेनाधीश-पत्नी], ये देवियाँ सुनें और स्त्रियों के समय में उनका हित चाहें। २

सूक्त ५० । इन्द्र आत्मा ।

४६ यथा वृक्षमशनिर्विश्वाहा हन्त्यप्रति । एवाहमद्य कितवानक्षैर्बध्यासमप्रति ।। १

४७. तुराणामतुराणां विशामवर्जुषीणाम् । समैतु विश्वतो भगो अन्तर्हस्तं कृतं मम ।। २

४८ ईडे अग्निं स्वावसुं नमोभिरिह प्रसक्तो वि चयत् कृतं नः ।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणं मरुतां स्तोममृध्याम् ।। ३

४९ वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरे भरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरीयः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ।। ४

५०. अजैषं त्वा संलिखितमजैषमुत संरुधम् । अवि वृको यथा मथदेवा मथ्नामि ते कृतम् ।। ५

५१ उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले ।
यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् तं रायः सृजति स्वधाभिः ।। ६

५२. गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे ।
वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ।।

५३. कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः । गोजिद्भूयासमश्वजिद्धनंजयो हिरण्यजित् ।। ८

१८५४.अक्षाः फलवतीं द्युवं दत्त गां क्षीरिणीमिव।सं मा कृतस्य धारया धनुः स्नाव्नेव नह्यत॥६

१८४६ जैसे पेड़ को बिजली सब दिन बेरोक हराती है वैसे मैं सदा विषयों को इन्द्रियों से हराऊँ । १

चंचलता-मन्दता (रजः-तम) न छोड़ने वाली इन्द्रियों को सब ओर से ऐश्वर्य मिले । मेरा कर्म मेरे हाथ में है । २

अपने में बसे ईश्वर और अपनों को धनदाता की मैं नमः से स्तुति करूँ, यहाँ सन्तुष्ट वह हमारा कर्म जाने । युद्ध में बलवान् रथों के समान साधनों द्वारा इन्द्रिय-सैनिकों का समूह वश में करूँ । ३

हे धनी इन्द्र (ईश्वर-राजा), हम तुझ सहायक के साथ घेरने वाले शत्रु को जीतें, तू प्रति युद्ध में हमारे अंश की रक्षा कर, हमारे लिए श्रेष्ठ पदार्थ सुगम कर, शत्रुओं का बल भङ्ग कर । ४

(हे शत्रु,)मैं पंजिका-लिखित और बाधक तुझे जीतूँ, जैसे भेड़िया भेड़ को वैसे मैं तुझे मार डालूँ। ५

और अति जयेच्छुक ही प्रहारक को जीतता है, जुआरी हार के समय ही किये को विचारता है । जो दिव्य गुणों का इच्छुक धन-सञ्चय नहीं करता उसको आत्म शक्तियों से ऐश्वर्य मिलता है । ६

[मन्त्र ६-७ कुछ भेद से ऋ में १०-४२-६, १० हैं ।]

हे बहुतों से बुलाये जाने वाले ! हम सब गौ-इन्द्रिय-वाणियों से दुर्गति-कुमति को हटायें और जो आदि से भूख मिटायें,राजाओं में प्रथम होकर अहिंसक-अहिंसित रहते हुए शक्तियों से धन जीतें । ७

कर्म मेरे दाहिने हाथ में और जीत बाएँ में स्थित है, मैं गो-अश्व-धन-सुवर्ण (इन्द्रिय-प्राण-मन-मोक्षानन्द) का विजयी होऊँ । ८

हे अक्षो(इन्द्रियो तथा व्यवहार-कुशल पुरुषो) ! तुम मुझे दूध वाली गौ के समान फल वाली द्यौ (विजयेच्छा-व्यवहार-कुशलता) दो । जैसे धनुष को डोरी से वैसे मुझे कर्म की धारा से बाँधो । ६

सूक्त ५१ । बृहस्पति और इन्द्र

५५ **बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।**
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥ १

आचार्य हमें पापी से पीछे-उत्तर-नीचे से बचाये और शासक आगे तथा मध्य से हमारा मित्र हो कर हम मित्रों के लिए उत्तम कार्य करे । १ । [यह कुछ भेद से ऋ १०-४२-११ में है ।]

अनुवाक ५ सूक्त ५२ से ५९ तक

अनुवाक-विषय— सम्यग्विज्ञान करणार्थोपदेश-स्वर्गादि-ईश्वरौषधादि पदार्थविद्या (द०)

सूक्त ५२ । अश्विनौ । ज्ञान

५६. संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः । संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छतम् ॥ १

५७ **सञ्जानामहे मनसा सञ्चिकित्वा मा युष्महि मनसा दैव्येन ।**
मा घोषा उत् स्थुर्बहुले विनिर्हते मेषुर्पप्तदिन्द्रस्याहन्यागते ॥ २

१८५६
हे अश्विओ (माता-पिता, अध्यापक-उपदेशक) ! तुम हमारे अपनों-परायों मे हम में संज्ञान दो १
हम मन से ज्ञान पाकर श्रेष्ठ मन से युक्त रहें, बड़े युद्ध के कारण ध्वनियाँ न हों, आये दिन।
सेनापति का पूत्तेप्यास्त्र न गिरे । २

सूक्त ५३। १-३ अग्नि ४-६ प्राणापान ७ सूर्य

१८५८ अमुत्रभूयादधि यद्यमस्य बृहस्पतेरभिशस्तेरमुञ्चः
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद्देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥ १
५९ सं क्रामतम्मा जहीतं शरीरम्प्राणापानौ ते सयुजाविह स्ताम् ।
शतञ्जीव शरदो वर्धमानोऽग्निष्टे गोपा अधिपा वसिष्ठः ।। २
६० आयुर्यत् ते अतिहितं पराचैरपानः प्राणः पुनरा ताविताम् ।
अग्निष्टदाहार्निर्ऋतेरुपस्थात् तदात्मनि पुनरा वेशयामि ते ।। ३
६१ मेमम्प्राणो हासीन्मो अपानो ऽवहाय परा गात् ।
सप्तर्षिभ्य एनम्परि ददामि त एनं स्वस्ति जरसे वहन्तु ।। ४
६२.प्रविशतम्प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम्। अयं जरिम्णः शेवधिररिष्ट इह वर्धताम्। ५
६३.आ ते प्राणं सुवामसि परा यक्ष्मं सुवामि ते। आयुर्नो विश्वतो दधदयमग्निर्वरेण्यः ।। ६
६४.उद्वयन्तमसस्परि रोहन्तो नाकमुत्तमम्।देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।। ७

१८५८ हे अग्नि (ईश्वर, नेता) ! तू परलोक में होनेवाले भय और नियामक बड़े स्वामी राजा के अपराध से छुड़ाता है। विद्वानों के वैद्य अश्वी (अध्यापकोपदेशक) शक्तियों से हमसे मृत्यु दूर करें । १
हे प्राण-अपान ! चलते रहो, शरीर न छोड़ो, (हे मनुष्य,) तेरे वे यहाँ संयुक्त रहें, बढ़ता हुआ तू सौ वर्ष जी, अग्नि तेरा सर्व-श्रेष्ठ रक्षक है । २
तेरी जो आयु उलटी गतियों से घट जाती है उसे वे अपान-प्राण फिर लायें, अग्नि उसे विपत्ति से बचाये, उन्हें मैं (वैद्य) तेरे शरीर में फिर स्थापित करता हूँ । ३
इसे प्राण न छोड़े, न अपान त्याग कर जाये, इसे ७ ऋषियों (५ ज्ञानेन्द्रिय-मन-बुद्धि) के लिए देता हूँ, वे इसे कल्याण के साथ बुढ़ापे तक ले जायें । ४
जैसे दो बैल गौशाला में बैसे हे प्राणापान, तुम यहाँ घुसो; यह बुढ़ापे का निधि जीव यहाँ नीरोग बढ़े । ५
मैं तेरे प्राण को बढ़ाता, रोग दूर करता हूँ, यह श्रेष्ठ अग्नि हमारी आयु सब प्रकार से बढ़ाये । ६
हम तमो गुण से ऊपर उठकर उत्तम मोक्ष पर चढ़ते हुए देवों के देव उत्तम ज्योति ईश्वर को पायें । ७

सूक्त ५४। शचीपति । वेद-वाणी के रक्षक आचार्य

६५ ऋचं साम यजामहे याभ्याङ्कर्माणि कुर्वते । एते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु यच्छतः ।। १
६६ ऋचं साम यदप्राक्षं हविरोजो यजुर्बलम्।एष मा तस्मान्मा हिंसीद्वेदः पृष्टः शचीपते।।२

१८६५ हम ऋक्-साम की सङ्गति करें जिनसे कर्म करते हैं, ये सदन में विराजें, विद्वानों में यज्ञको दें। १
हे आचार्य, ऋक्-साम-यजुः से हवि-ओज-बल को विचारूँ, अतः यह पृष्ट वेद(अथर्व)मेरी हिंसा न करें।२

सूक्त ५५, वसु । वायु-यात्रा

१८६७. ये ते पन्थानो ऽव दिवो येभिर्विश्वमैरयः। तेभिः सुम्नया धेहि नो वसो ।। १

हे बसाने वाले ! जो तेरे आकाश के पथ हैं जिनसे विश्व को चलाता है उनसे तू हमें सुख में रख। १

सूक्त ५६। औषधि विष-चिकित्सा

६८ तिरश्चिराजेरसितात् पृदाकोः परिसंभृतम्। तत्कङ्कपर्वणो विषमियं वीरुदनीनशत् ।।१

६९ इयं वीरुन्मधुजाता मधुश्चुन्मधुला मधूः। सा विह्रुतस्य भेषज्यथो मशकजम्भनी ।।२

७० यतो दष्टं यतो धीतं ततस्ते निर्ह्वयामसि। अर्भस्य तृप्रदंशिनो मशकस्यारसं विषम् ।।३

७१ अयं यो वक्रो विपरुर्व्यङ्गो मुखानि वक्रा वृजिना कृणोषि।
तानि त्वं ब्रह्मणस्पत इषीकामिव सं नमः ।। ४

७२. अरसस्य शर्कोटस्य नीचीनस्योपसर्पतः। विषं ह्यस्यादिष्यथो एनमजीजभम् ।। ५

७३.न ते बाह्वोर्बलमस्ति न शीर्षे नोत मध्यतः। अथ किं पापयामुया पुच्छे बिभर्ष्यर्भकम् ।६

७४.अदन्ति त्वा पिपीलिका वि वृश्चन्ति मयूर्यः। सर्वे भल ब्रवाथ शार्कोटमरसं विषम् ।। ७

७५.य उभाभ्यां प्रहरसि पुच्छेन चास्येन च। आस्ये न ते विषं किमु ते पुच्छधावसत् ।।८

तिरछी धारी वाले, काले, कङ्क-समान पोरुओं वाले, उड़न साँप के विष को यह जड़ी-बूटी नष्ट करे।१
यह जड़ी मधुरता से उत्पन्न, मिठास चुआने वाली मधुला (कपिल द्राक्षा), मधु (मुलहटी-मधुश्रा-शहद, चारों का योग) कुटिल साँप की औषधि और मच्छर-नाशक है। २
जहाँ काटा, रक्त पिया, वहाँ से विष निकाल दें, ऐसे तीव्र सँपेलुए का विष निर्बल हो जाता है। ३
हे वैद्य, यह जो सर्प-दष्ट टेढ़ा, विकृत-पोरुआ-अङ्ग होकर जिन मुखाङ्गों को टेढ़े-एंठे कर रहा है उन को सींक के समान सीधा-ठीक कर । ४
मैं इस निर्बल-नीचे पड़े-रेंगते-काटते कर्कोट साँप-बिच्छू का विष खण्डित करूँ और कुचल दूँ। ५
(हे बिच्छू,)तेरी बाहों-सिर-मध्य में बल नहीं है फिर क्यों उस पाप से पूँछ में थोड़ा विष रखता है ?६
तुझे चींटियाँ खातीं, मोरनियाँ काटती हैं हम ठीक बताते हैं कि शर्कोट-बिष निर्बल हो सकता है। ७
(हे बिच्छू,)जो तू पूछ-मुख दोनों से प्रहार करता है; किन्तु तेरे मुख में विष नहीं, तो पूछ में क्या है ?

सूक्त ५७। सरस्वती। विद्या

१८७६ यदाशसा वदतो मे विचुक्षुभे यद् याचमानस्य चरतो जनाँ अनु।
यदात्मनि तन्वो मे विरिष्टं सरस्वती तदा पृणद् घृतेन ।। १

७७ सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवृतन्नृतानि।
उभे इदस्योभे अस्य राजत उभे यतेते उभे अस्य पुष्यतः ।। २

जो आशा से बोलते हुए, जनों के पास माँगते हुए मुझे क्षोभ हुआ हो, जो मेरी आत्मा-शरीर में कष्ट पहुंचा हो उसको मेरी विद्या-बुद्धि-ईश्वर स्नेह से भर कर ठीक कर दे १

१८७७ शिरस्थ ७ प्राणों वाले शिशु आत्मा के लिए ७ प्राण और ७ शक्तियां (५ ज्ञानेन्द्रियां-मन-बुद्धि)जीवन देती हैं जैसे पिता के लिए पुत्र सत्य कर्म करते हैं । इसके दोनों प्राण-अपान प्रकाशित होते, यत्न और पोषण किया करते हैं । २

सूक्त ५८। इन्द्र-वरुण (राजा-न्यायाधीश)

१८७८ इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमम् पिबतन्मद्यं धृतव्रतौ ।
युवो रथो अध्वरो देववीतये प्रति स्वसरमुप यातु पीतये ॥१

७९ इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ।
इदं वामन्धः परि षिक्तमासद्यास्मिन् बर्हिषि मादयेथाम् ॥ २

हे इन्द्-वरुण ! तुम सुतप(अच्छे तपस्वी-पुत्रपालक-सोम पीने वाले), नियम-धारण करने कराने वाले हो, यह हर्षप्रद सोम पियो(ऐश्वर्य भोगो), तुम्हारा अहिंसक रथ दिव्य गुण पाने और तृप्ति के लिए प्रति दिन और प्रति घर आया करे । १

हे बलिष्ठ इन्द्र-वरुण ! तुम अत्यन्त मधुर-बलकारी ऐश्वर्य की वर्षा करो, यह निचोड़ा रस और (घी-दूध आदि से)पूर्ण युक्त अन्न है, इस आसन पर बैठकर हृष्ट होओ ।[यह अतिथि के लिए कहे]२

[ये मन्त्र कुछ भेद से ऋ ६-६८-१०, ११ में हैं ।]

सूक्त ५९। शपथ [शाप देने वाला नष्ट]

८०.यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात् ।वृक्ष इव विद्युता हत आमूलादनुशुष्यतु॥१

जो शाप न देने या देने वाले हमें शाप दे वह बिजली के मारे पेड़ की तरह जड़से नष्ट हो जाये । १

यह अनुवाक ५ का आचार्य वीरेन्द्र सरस्वती रचित

हिन्दी-अनुवाद समाप्त हुआ ।

प्रपाठक १७

अनुवाक ६ सूक्त ६०-७३

विषय- वैरत्यागोपदेश-स्वधर्मानुष्ठानप्रार्थनादि०, रोग-निवारण-सरस्वती-यज्ञ-मृत्यु-सत्यानृतादि-पदार्थविद्या (द०)

सूक्त ६०। गृहपति

८१ ऊर्जं बिभ्रद्वसुवनिः सुमेधा अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
गृहानैमि सुमना वन्दमानो रमध्वं मा बिभीत मत् ॥ १

८२.इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः ।पूर्णा वामेन तिष्ठन्तास्ते नो जानन्त्वायतः ॥२

८३.येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः । गृहानुप ह्वयामहे ते नो जानन्त्वायतः ॥ ३

८४ उपहूता भूरिधनाः सखायः स्वादुसम्मुदः । अक्षुध्या अतृष्यास्तगृहा मास्मद बिभीतन ॥४

८५ उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः । अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ॥ ५

८६ सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः ।अतृष्या अक्षुध्यास्त गृहा मास्मद् बिभीतन ।६

१८८७इहैव स्त मानुगात विश्वा रूपाणि पुष्यत।ऐष्यामि भद्रेणासह भूयांसो भवतामया॥७

१८८१ अन्न-बल-धारक, धनदाता मैं शान्त-मित्र-दृष्टि से उत्तम-बुद्धि-मन होकर वन्दना करता हुआ घर आऊँ। (हे परिजनो,)हृष्ट होओ, मुझ से मत डरो । १ (कुछ भेद से य २.४१)

ये घर सुखद, अन्न-दूध-युक्त, धन-पूर्ण रहें, वे हमें आते हुए जानें । २

परदेश गया जिन्हें स्मरण करता है, जिनमें बहुत प्रेम हो, वे घरवालों के पास में आगत हमें जानें । ३

बड़े धनी, स्वादु वस्तुओं में हृष्ट सखा निमन्त्रित हों, घरवालो, भूखे-प्यासे न रहो, हमसे न डरो । ४

यहाँ गो-बकरी-भेड़ें लायी जाएँ, और अन्न का रसीला भोजन भी हमारे घरों में लाया जाये । ५

हे [illegible]तो! तुम प्रिय सत्य-वचन,सौभाग्यशाली,अन्नयुक्त, हँसमुख रहो,प्यासे-भूखे न रहो,हमसे न डरो।६

तुम यहां रहो, पीछे न जाओ, सब धन पुष्ट करो, मैं कुशलसे आऊँगा,तब मेरे साथ बहुत होजाना। ७

सूक्त ६१ । अग्नि । तप

८८ यदग्ने तपसा तप उपतप्यामहे तपः । प्रियाः श्रुतस्य भूयास्मायुष्मन्तः सुमेधसः ॥ १

८९ अग्ने तपस् तप्यामहे उपतप्यामहे तपः । श्रुतानि शृण्वन्तो वयमायुष्मन्तः सुमेधसः ॥२

हे अग्नि(आचार्य), तप(द्वन्द्व-सहन)से जो तप (ब्रह्मचर्यादि) होता है हम वह तप तपें और वेद-ज्ञान के प्यारे, आयुष्मान् तथा उत्तम बुद्धिमान् बनें । १

हे आचार्य ! हम तप तपें, उपास्य का तप करें, वेदोपदेश सुनते हुए दीर्घायु-बुद्धिमान् हों । २

सूक्त ६२ । अग्नि । सेनापति

९० अयमग्निः सत्पतिर्वृद्धवृष्णो रथीव पत्तीनजयत् पुरोहितः ।
नाभा पृथिव्यां निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥ १

यह अग्निवत् सेनापति श्रेष्ठ-रक्षक, बड़ा बली सामने स्थित जयी हो जैसे रथी पैदलों पर । केन्द्र में पृथिवी पर स्थित प्रकाशमान वह आक्रामकों को पद-दलित कर दे । १

सूक्त ६[illegible] । अग्नि

९१ पृतनाजितं सहमानमग्निमुक्थैर्हवामहे परमात् सधस्थात् ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा क्षामद् देवोऽति दुरितात्यग्निः ॥ १

शत्रु-सेना को हराने वाले, समर्थ, तेजस्वी, सेनापति को प्रशंसा कर उत्कृष्ट स्थान से बुलायें। वह हमें सब दुःखों से छुड़ाये, तेजस्वी आचार्य विघ्न हटाकर हमें पार करे । १

सूक्त ६४ । आपः । अग्नि । ईश्वर

९२.इदं यत्कृष्णः शकुनिरभिनिष्पतन्नपीपतत्।आपो मा तस्मात्सर्वस्माद् दुरितात्पान्त्वंहसः॥१

९३.इदं यत्कृष्णः शकुनिरवामृक्षन्निर्ऋते ते मुखेन।अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यःप्रमुञ्चतु२

यह जो काला आकर्षक बली पाप सब ओर से गिराता है उस सब दुःखसे व्यापक ईश्वर मुझे बचाये । १

हे मृत्यु, यह जो काला आकर्षक, शक्तिशाली पाप तेरे मुख के साथ नीचे गिराता है उस पाप से मुझे गृह-पति अग्नि (ईश्वर-यज्ञाग्नि) मुक्त करे । २

सूक्त ६५ । अपामार्ग

९४. प्रतीचीनफलो हि त्वमपामार्ग रुरोहिथ । सर्वान्मिच्छपथाँ अधि वरीयो यावया इतः ॥ १

९५. यद् दुष्कृतं यच्छमलं यद्वा चेरिम पापया । त्वया तद्विश्वतोमुखापामार्गाप मृज्महे ।। २

९६ श्यावदता कुनखिना दण्डेन यत्सहासिम । अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ।। ३

हे अपामार्ग ! तू उलटे मुड़े फलवाला होकर उगता है, मुझसे सब शपथ(दोष)यहाँ से दूर कर । १

हे सब ओर मुखवाले अपामार्ग, जो दुष्कर्म, या दोष हमने पाप से किया हो उसे तेरे द्वारा हटादें । २

हे अपामार्ग, यदि हम काले दाँतवाले: दूषित नखवाले, विरूप रोगी के साथ रहें तो उससे उत्पन्न सब दोष तेरे द्वारा दूर करें । ३

सूक्त ६६ । ब्राह्मण । ब्रह्म-ज्ञान

१८९७ यद्यन्तरिक्षे यदि वात आस यदि वृक्षेषु यदि वोलपेषु ।

यदश्रवन् पशव उद्यमानं तद् ब्राह्मणं पुनरस्मानुपैतु ।। १

जो ब्रह्म-ज्ञान-अन्तरिक्ष-वायु-वृक्ष-वास में है, उदीयमान जिसे प्राणी सुनते हैं वह हमें फिर मिले । १

सूक्त ६७ । देवता आत्मा

९८पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणंच पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव १ ।।

मुझे इन्द्रिय-आत्मा-धन-ज्ञान पुनर्जन्म में मिले,चतुर अग्नियाँ (विद्वान्) यथास्थान यहीं फिर मिलें । १

सूक्त ६८ । सरस्वती

९९. सरस्वति व्रतेषु ते दिव्येषु देवि धामसु । जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्वनः ।। १

१९०० इदं ते हव्यं घृतवत् सरस्वतीदं पितॄणां हविरास्यं यत् ।

इमानि ते उदिता शंतमानि तेभिर्वयं मधुमन्तः स्याम ।। २

१ शिवा नः शंतमा भव सुमृडीका सरस्वति । मा ते युयोम संदृशः ।। ३

हे देवी सरस्वती ! अपने दिव्य व्रतों-धर्मों में दिया पदार्थ सेवन कर और हमें उत्तम प्रजा दे १

हे सरस्वती ! ये तेरे भोजन घीवाले हैं, पालकों का अन्न भक्ष्य है, ये तेरे वचन शान्ति-दायक हैं उनसे हृष्ट-मधुर-ज्ञानी बनें । २

हे सरस्वती ! तू हमें शान्तिप्रद-सुखदा बन । तेरी सम्यक् दृष्टि से हम वंचित न रहें । ३

सूक्त ६९ । वात आदि

२ शं नो वातो वातु शं नस्तपतु सूर्यः । अहानि शं

भवन्तु नः शं रात्री प्रति धीयतां शमुषा नो व्युच्छतु ।। १

हमें वायु कल्याणी चले, सूर्य कल्याण से तपे, दिन-रातें कल्याणी रहें, उषा सुख-शान्ति दे । १

सूक्त ७० । इन्द्र-अग्नि

३ यत् किं चासौ मनसा यच्च वाचा यज्ञैर्जुहोति हविषा यजुषा ।

तन्मृत्युना निर्ऋतिः संविदाना पुरा सत्यादाहुतिं हन्त्वस्य ।। १

४ यातुधाना निर्ऋतिरादु रक्षस्ते अस्य घ्नन्त्वनृतेन सत्यम् ।

इन्द्रेषिता देवा आज्यमस्य मथ्नन्तु मा तत्संपादि यदसौ जुहोति ।। २

१६०५. अजराधिराजौ श्येनौ संपातिनाविव। आज्यं पृतन्यतो हतां यो नः कश्चाभ्यघायति। ३
६. अपाञ्चौ त उभौ बाहू अपि नह्याम्यास्यम्। अग्नेर्देवस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः ॥ ४
७. अपि नह्यामि ते बाहू अपि नह्याम्यास्यम। अग्नेर्घोरस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः ॥ ५

वह (दुष्ट, शत्रु) जो कुछ मन-वाणी-यज्ञ-हवि-यजु(दान) से होम करता है उसे यह पाप मृत्यु से मिलकर सफलता से पहले ही नाश करे। १ [मन्त्र १-३ कुछ भेद से ऋ १०.१७९.१-३ हैं।]
पीडाकारी मृत्यु-पाप-राक्षस इसकी सफलता को असत्य से नाश कर दें, सेनापति के भेजे शूर इसके घी आदि को नष्ट करें, वह जो होम करे वह पूरा न हो। २
गतिशील दो अधिकारी बाज के समान, सेना से युद्धकर्ता उसका बल नष्ट करें जो आक्रमण करे। ३
हे दुष्ट, तेरी दोनों बाहें पीछे और मुख भी बाँध दूँ, जयी नेता के क्रोध से तेरा अन्न नाश करूँ। ४
मैं तेरी बाहें और मुख बाँध दूँ, घोर नेता के क्रोध से तेरा अन्न आदि नष्ट कर दें।

सूक्त ७१। अग्नि

८ परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि। धृषद्वर्णं दिवे दिवे हन्तारं भङ्गुरावतः ॥ १

हे बली नेता! हम दुर्गरूप, बुद्धिमान्, निर्भय, प्रतिदिन कपटी के नाशक तुझे केन्द्र बनाते हैं। १
[यह कुछ भेद से ऋ १०-८७-२२ में है।]

सूक्त ७२। इन्द्र

९ उत्तिष्ठताव पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम्। यदि श्रातं जुहोतन यद्यश्रातं ममत्तन ॥ १
१०. श्रातं हविरो ष्विन्द्र प्रयाहि जगाम सूरो अध्वनो वि मध्यम्।
परि त्वासते निधिभिः सखायः कुलपा न व्राजपतिं चरन्तम् ॥ २
११ श्रातं मन्य ऊधनि श्रातमग्नौ सुश्रृतं मन्ये तदृतं नवीयः।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य दध्नः पिबेन्द्र वज्रिन् पुरुकृज्जुषाणः ॥ ३

उठो, ईश्वर के ऋत्वनुकूल पदार्थ देखो, यदि पका ग्रहणीय हो तो लो, यदि नहीं, तो पकने दो। १
[ये ३ मन्त्र कुछ भेद से ऋ १०.१७९.१-३ में है।]
हे जीव! तू पका अन्न तब ले जब सूर्य दिन मध्य में हो; सखा निधियों के साथ तेरे सब ओर रहें जैसे कुल-रक्षक गृह-स्वामी के सब ओर रहते हैं। २
दूध गौ-स्तनों में फिर आग पर पका मानता हूं, हे वज्री-बहुकर्मा जीव, मध्यदिन-भोजन का दही पी। ३

सूक्त ७३। अश्विनौ-सविता-अघ्न्या-अग्नि

१२ समिद्धो अग्निर्वृषणा रथी दिवस तप्तो घर्मो दुह्यते वामिषे मधु।
वयं हि वां पुरुदमासो अश्विना हवामहे सधमादेषु कारवः ॥ १
१३ समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो वां घर्म आ गतम्।
दुह्यन्ते नूनं वृषणेह धेनवो दस्रा मदन्ति वेधसः ॥ २
१४ स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञो यो अश्विनोश्चमसो देवपानः।
तमु विश्वे अमृतासो जुषाणा गन्धर्वस्य प्रत्यास्ना रिहन्ति ॥ ३

१६१५ यदुस्रियास्वाहुतं घृतम्पयोऽयं स वामश्विना भाग आ गतम् ।
माध्वी धर्तारा विदथस्य सत्पती तप्तङ्घर्मं पिबतं रोचने दिवः ।। ४

१६ तप्तो वाङ्घर्मो नक्षतु स्वहोता प्र वामध्वर्युश्चरतु पयस्वान् ।
मधोर्दुग्धस्याश्विना तनाया वीतं पातं पयस उस्रियायाः ।। ५

१७ उप द्रव पयसा गोधुगोषमा घर्मे सिञ्च पय उस्रियायाः ।
वि नाकमख्यत् सविता वरेण्यो ऽनुप्रयाणमुषसो वि राजति ।। ६

१८ उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचत् ।। ७

१९ हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसा न्यागन् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ।। ८

२० जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्य शत्रूयतामा भरा भोजनानि ।। ९

२१ अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ।। १०

२२ सूयवसाद् भगवती हि भूया अधा वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ।। ११

हे अश्वी बली (स्त्री-पुरुषो), जब द्यौ का सूर्य-अग्नि दीप्त हों- घाम तपे तब तुम्हारे लिए अन्न में मधुर दूध दुहा जाता है। बहुत घरों वाले कार्यशील हम तुम्हें उत्सवों पर बुलायें । १

हे बली दर्शनीय अश्विओ, आग जली, आओ, दूध गरम है, निश्चय गौएँ दुही जातीं, ज्ञानी हृष्ट हैं।२

स्वाहाकार पवित्र यज्ञ विद्वानों में प्राणाधान का रक्षक साधन है,उसे अमर जीव सूर्य-मुख से पाते हैं। ३

हे स्त्री-पुरुषो, जो गौओं में घी-दूध है वह तुम्हारा भाग है, हे मधुर, यज्ञ-धारक सच्चे रक्षको ! सूर्य के प्रकाश में तपा दूध पिओ । ४

हे स्त्री-पुरुषो ! तपा दूध तुम्हें मिले, उसे दूधवाला धन-दाता यजमान और अध्वर्यु तुम को दे। तुम पुष्ट गौ का दुहा मधुर दूध लो और पियो । ५

हे गौ दुहने वाले ! यज्ञ में दूध के साथ आ, गौ का दूध सींच, वरणीय दोष-निवारक सवित। (ईश्वर-सूर्य) आनन्द देता हुआ उषा-गमन के पश्चात् विशेष दीप्त होता है । ६

मैं यह सुख से दुहाने वाली गौ बुलाता हूं और उत्तम हाथ का दोग्धा इसे दुहे, सूर्य हमें श्रेष्ठ अन्न देता है, प्रदीप्त ईश्वर ने यही बताया है। ७

हिंकारती रँभती, वसुओं और बसे जीवों की पालक, बछड़े को चाहती हुई मन से आती है, यह अहिंसनीय गौ अश्विओं (स्त्री-पुरुष,प्राण-अपान) के लिए दूध दे, वह बड़े सौभाग्य के लिए बढ़े । ८

[यह कुछ भेद से ऋ. १-१६४-२७ में है।]

१६२० दमनशील अतिथि घर में सेवित हो। हे विद्वान्! हमारे इस यज्ञ में आ, हे नेता! शत्रुता करने वालों के सब आक्रामकों को मार कर अन्न भर ले। ६

हे बली नेता! तेरे धन बड़े सौभाग्य के लिए उत्तम हों, पति-पत्नी-धर्म नियमित कर, शत्रुता करने वालों के बल परास्त कर। १०

हे न मारने योग्य गौ, तू उत्तम जौ आदि खाकर सौभाग्यशाली हो और हम ऐश्वर्यशाली हों, चारा खा, सर्वदा अच्छी तरह चरती हुई शुद्ध जल पिया कर। ११

अनुवाक ७ सूक्त ७४ से ८१ तक

विषय — व्रतादि० जाया-पुरुष-सन्तान-प्रार्थना, व्रत-प्राप्त्यर्थ-स्वर्ग-प्राप्त्यादि०, नमोनमो जायमानादि पदार्थविद्या (महर्षि दयानन्द)

सूक्त ७४। वैद्य, त्वष्टा, जातवेदाः। गण्डमाला-चिकित्सा

१६२३ अपचितां लोहिनीनां कृष्णा मातेति शुश्रुम। मुनेर्देवस्य मूलेन सर्वा विध्यामि ता अहम्॥१

२४ विध्याम्यासां प्रथमां विध्याम्युत मध्यमाम्। इदं जघन्यामासामा च्छिनद्मि स्तुकामिव॥२

२५ त्वाष्ट्रेणाहं वचसा वि त ईर्ष्याममीमदम्। अथो यो मन्युष्टे पते तमु ते शमयामसि॥३

२६ व्रतेन त्वं व्रतपते समक्तो विश्वाहा सुमना दीदिहीह।
तं त्वा वयं जातवेदः समिद्धं प्रजावन्त उप सदेम सर्वे॥ ४

लाल अपचितियों की निर्माता काली गण्डमाला है- यह सुनते हैं; मुनि-देव-मूल (अगस्त्य-नीपजामूल-दमनक-अर्क-पलाश-प्रियाल-मदन आदि) से मैं उन सब का नाश करूँ। १

इनमें प्रथम-मध्यम को नश्तर से छेद दूँ, इनमें नीचे वाली को फुन्सी के समान काट दूँ। २

मैं ईश्वर के वचन से तेरी ईर्ष्या दूर करूँ और तेरे पति का जो क्रोध है उसे हम शान्त करें। ३

हे नियम-पालक, तू नियम से युक्त होकर यहाँ सब दिन अच्छे मन वाला रह कर चमक, हे जातवेद यज्ञाग्नि, हम सब सन्तान वाले तुझ प्रदीप्त के पास पहुँचा करें। ४

सूक्त ७५। प्रजा गौ-पालन।

२७ प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः।
मा व स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु॥ १

२८ पदज्ञा स्थ रमतयः संहिता विश्वनाम्नीः उप मा देवीर्देवेभिरेत।
इदङ्गोष्ठमिदं सदो घृतेनास्मान्त्समुक्षत॥ २

सन्तान वाली, अच्छा अन्न खातीं, अच्छे जल-शुद्ध स्थान पर जल पीतीं तुम (गौओं-प्रजाओं) पर चोर-पापी शासन न करे, महावीर का शस्त्र तुम्हारी सब ओर से रक्षा करे। १

१६२८. तुम पद-स्थान जानने वाली, क्रीडा वाली, एकत्र, बहुत नाम वाली हो, हृष्ट गौ-प्रजाएँ मेरे पास विद्वानों के साथ आएँ, वे इस गोष्ठ (गोठे-वाचनालय)-सदन में हमें घी-स्नेह से युक्त करें। २

सूक्त ७६। वैद्य, इन्द्र, अपचिति-यक्ष्मा

२९ आ सुस्रसः सुस्रसो असतीभ्यो असत्तराः। सेहोररसतरा लवणाद् विक्लेदीयसीः ॥ १

३० या ग्रैव्या अपचितो ऽथो या उपपक्ष्याः। विजाम्नि या अपचितः स्वयंस्रसः ॥ २

३१ यः कीकसाः प्रशृणाति तलीद्यमवतिष्ठति। निर्हास्तं सर्वं जायान्यं यः कश्च ककुदि श्रितः॥ ३

३२ पक्षी जायान्यः पतति स आविशति पूरुषम्। तदक्षितस्य भेषजमुभयोः सुक्षतस्य च ॥ ४

३३ विद्म वै ते जायान्य जानं यतो जायान्य जायसे। कथं ह तत्र त्वं हनो यस्य कृण्मो हविर्गृहे॥ ५

३४ धृषत् पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम्।
माध्यन्दिने सवन आ वृषस्व रयिष्ठानो रयिमस्मासु धेहि ॥ ६

ये बहने वाले पदार्थ से अधिक बहने वाली, बुरी से बुरी, सूखे से सूखी, नमक से गलने वाली हैं। १

जो गरदन, बाहों की बगलों, गुह्य प्रदेश जांघों में अपचितियाँ हैं वे स्वयं बहने वाली हों। २

जो पसलियों, हँसुली के साथ लगे फेफड़े के छिद्रों और पीठ में जम जाता है उस सब अतिस्त्री-भोग से उत्पन्न राजयक्ष्मा को नष्ट करो। ३

पक्खों में उत्पन्न, जाया के अतिभोग से हुआ यक्ष्मा गिरता है वह पुरुष में घुस जाता है उस अक्षित और नहुत घाव वाले, दोनों की दवा है। ४

हे जाया से लाये क्षय! हम तेरी उत्पत्ति जानें जहाँ से पैदा होता है, तू वहाँ कैसे मार सकता है जिसके घर में (गूगल-चिरायता-गिलोय से) हवन करते हैं। ५

हे निर्भय-शूर जीव! प्राणों के युद्ध (क्षय) में घेरने वाले शत्रु को मारने वाला तू कलश में सोम (गिलोय आदि) पी, माध्यन्दिन सवन (युवावस्था) में बली हो, ऐश्वर्यशाली होकर हमें ऐश्वर्य दे। ३

[यह कुछ भेद से ऋ ६-४७-६ में है।]

सूक्त ७७। मरुतः। तपस्वी वीर

३५ सांतपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन। अस्माकोती रिशादसः ॥ १

३६ यो नो मर्तो मरुतो दुर्हणायुस् तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति।
द्रुहः पाशान् प्रति मुञ्चतां सस् तपिष्ठेन तपसा हन्तना तम् ॥ २

३७ संवत्सरीणा मरुतः स्वर्का उरुक्षयाः सगणा मानुषासः।
ते अस्मत्पाशान् प्र मुञ्चन्त्वेनसः सांतपना मत्सरा मादयिष्णवः ॥ ३

हे हमारी रक्षार्थ हिंसक-नाशक, उत्तम तपस्वी वीरो! यह भोजन है उसे स्वीकार करो। १

हे बसाने वाले सैनिको! जो दुष्ट-स्वभाव-युक्त हमारे चित्तों को मारना चाहता है वह विद्रोही-योग्य पाश-दण्ड पाये, उसे सन्तापकारी यन्त्रणा से नष्ट करो। २। [ऋ ७-५९-८ में भी कुछ भेद से।]

पूरे वर्ष के लिए नियुक्त, श्रेष्ठ, बड़े भवनों में निवासी, गणों के साथ, मननशील हृष्ट-हर्षक सैनिक हमारे पाप के बन्धनों को हम से छुड़ायें। ३

समाचार

उ०प्रदेशीय आ०प्र०सभा का निर्वाचन स्थगित होकर अब १५- ९ दिसम्बर को लखनऊ में होगा। वहीं १६-१२-९० रविवार को प्रातः ८ बजे लखनऊ तथा उ०प्रदेशीय विश्व वेदपरिषद् की बैठक होगी।

दिल्ली में २३ से २६ दिसम्बर तक अन्ताराष्ट्रिय सार्वदेशिक आर्य महासम्मेलन होगा।

विश्व वेदपरिषद् लखनऊ की मासिक वेद-सङ्गोष्ठी मार्गशीर्ष पूर्णिमा को प्रातः आर्यसमाज गणेशगंज में और सायं वेदसदन महानगर में हुई जिसमें ऋ में १६ बार आये 'इन्द्रायेन्दो परिस्रव' के अर्थों पर विचार किया गया।

आर्यसमाज बम्बई की मुलुण्ड शाखा के नये भवन का उद्घाटन २-४.११.९० को सम्पन्न हुआ।

केन्द्र में श्री चन्द्र शेखर प्रधान मन्त्री और ३३ उनके साथी राज्य तथा उप मन्त्री बनाये गये। श्री संजयसिंह के संचारमन्त्री होने पर बधाई! इन्दिरा कांग्रेस के समर्थन से ही श्री चन्द्रशेखर और प्रदेशीय मुख्यमन्त्री श्री मुलायमसिंह का पद बना रहा। अब अयोध्या में कार-सेवा पुनः ६ दि.से है।

२७-१२-९० को आर्यसमाज फुलेरा ने श्रीमती निर्मला मिश्रा को २५०१)पुरस्कार दिया, बधाई!

लखनऊ में २३-११-९० को मन्त्री स्व० सुधीन्द्र नाथ शास्त्री का पुण्य स्मृति दिवस मनाया गया।

दीपावली पर १८-१०-९० को ऋषि दयानन्द निर्वाण-दिवस हर जगह मनाया गया।

२५ नवम्बर ९० को आ० समाज शृङ्गारनगर लखनऊ के चतुर्थ आ० युवा सम्मेलन में श्री रामचरित पाण्डेय का अभिनन्दन ३००) और शाल देकर किया गया।

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती दिल्ली को १ ०१) धूड़मल पुरस्कार मिला, बधाई!

आर्यसमाज सान्ताक्रूज बम्बई ने अपने संस्थापक महाशय चमनलाल आर्य एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती लीलावती आर्या का १४-१०-९० को अभिनन्दन किया। १९९१ के वेद-वेदाङ्ग-पुरस्कार के लिए आर्यसमाज ने ३१-१२-९० तक अन्यों द्वारा नाम आमन्त्रित किये हैं।

श्रीमती मनोरमा अग्निहोत्री, लख. ने परिषद् की यजुर्वेदाचार्य परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की।

२९-१०-९० के अधिवेशन में विश्व वेदपरिषद् ने ३ प्रस्ताव पारित किये—

१- आरक्षण जन्म-जाति के आधार पर न होकर आर्थिक आधार पर हो, पर इसे रोकने के लिए आत्म-घात करना वेद-विरुद्ध और पाप है।

२- शासन अंग्रेजी हटाकर संस्कृत और वेद पढ़ना-पढ़ाना अनिवार्य करे।

३- राम-जन्मभूमि पर से मसजिद-मूर्तिपूजा दोनों हटाकर राम-वेद-वेदाङ्ग-विश्वविद्यालय बने।

अभिनन्दन – स्वामी विद्यानन्द सरस्वती का ४-११-९०को आर्य० बड़ाबाजार पानीपत द्वारा हुआ।

,, आचार्य सुदर्शनदेव का रोहतक का रनवा. ११००) वै०या० हिसार ने, ४००)गुरु-कुम्भीखेड़ा ने।

,, उषा शास्त्री का १० अक्टूबर को, महिला आर्यसमाज पटेलनगर दिल्ली द्वारा।

डा० सच्चिदानन्द शास्त्री ने हालैण्ड में १ मास ९ अक्टू०से ६ नवम्बर तक वेद-प्रचार किया।

डा० कपिलदेव द्विवेदी ज्ञानपुर वेद-प्रचारार्थ अमरीका गये हैं। ३ मास बाद दि० में लौटेंगे।

शोक है कि निम्नलिखित वेदज्ञों, परिषत्सदस्यों का देहावसान हो गया,प्रभु उन्हें शान्ति दे। सर्वश्री धर्मपाल विद्यालंकार, बदायूँ (१९-११-९०); स्वामी ओ३म्-प्रेमी चतुर्थाश्रमी होशंगाबाद, (६-६-९०), धर्मपत्नी श्री रामदुलारे शर्मा यजुर्वेदाचार्य, मन्त्री विश्ववेद परिषद्, [शर्मा जी ने इस अवसर पर परिषद् को ५००)दान देने की घोषणा की।] श्री सत्यप्रिय शास्त्री हिसार की माता (३१ अक्टू.), सोमलता शास्त्री (पत्नी शिवकुमार शास्त्री दिल्ली १८ अक्टू.), वेदानन्द १ अक्टू.।

श्रीमन् ! नमस्ते, आपका वर्ष -१२-९०को पूर्ण हो चुका है, कृपया वार्षिक शुल्क ३०)शीघ्र भेजिए। उसके मिलने पर ही अगला अंक भेजा जायेगा। अंकों को सँभाल कर रखिये, फिर न मिल सकेंगे। सभी सदस्य, विशेषत: आजीवन संरक्षक अथर्ववेदके प्रकाशन में कृपया आर्थिक सहायता करें।

अथर्व वेद, अष्टाध्यायी, शतपथ, निरुक्त,

अनुवादक— वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र सरस्वती शास्त्री, एम. ए. काव्यतीर्थ

साम संहितोपनिषद् ब्राह्मण १०), देवताध्याय १०), शतपथ काण्ड१-२, २०), वेदार्थपारिजातखण्डन २०) साम वंश ब्राह्मण१०), अष्टाध्यायी २०), शतपथ काण्ड ३-४, २०), निरुक्त ३०) अथर्ववेद १००) मगाइये।

—वीरेन्द्र सरस्वती, अध्यक्ष, श्रीजोमित्र शास्त्री मन्त्री, विश्ववेदपरिषद्. सी८१७ महानगर लखनऊ ६

विश्व वेदपरिषद्

२९-९-९० को श्री सत्यदेव भारद्वाज वेदालङ्कार, नैरोबी, अध्यक्ष हुए। शेष अधिकारी पूर्ववत् रहे।

वैदिक दैनन्दिनी माघ २०४७ विक्रम

तिथि कृ१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ ३० शु १ २ २ ३ ४ ५ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३१४ १५
वार मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु
नक्षत्र पु न प. श्ले म पू उ ह चि स्वा स्वा वि अनु ज्ये मू पू उ श्र ध श पू उ रे अ भ कृ रो मृ आ पु न पु
ता.ज१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३०

प्रेषक — मुद्रक आदर्श प्रेस,
सी ८१७ महानगर, लखनऊ ६
उ० प्र०, भारत, पिन २२६००६

सेवा में क्रमांक
श्री
स्थान
पत्रालय
पिन
जनपद
प्रदेश